खंड 2

राज्य और ज़िला प्रशासन

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 2 राज्य प्रशासन की सांविधानिक रूपरेखा*

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 राज्य सरकार की शक्तियाँ

2.3 राज्यपाल की भूमिका

2.4 राज्य का विधान–मंडल

2.4.1 विधायी कार्य-प्रणाली

2.4.2 प्रशासन पर विधायी नियंत्रण

2.5 राज्य का मंत्रिपरिषद्

2.6 मुख्यमंत्री की भूमिका

2.7 निष्कर्ष

2.8 शब्दावली

2.9 संदर्भ लेख

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आपः

- राज्य सरकार की कार्य-प्रणाली से संबंधित सांविधानिक प्रावधानों को समझ सकेंगे;
- राज्य प्रशासन में राज्यपाल की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे;
- अधिकारी वर्ग/नौकरशाही और मंत्रिपरिषद् के संबंध में मुख्यमंत्री की शक्तियों तथा कार्यों का वर्णन कर सकेंगे; और
- राज्य के विधान–मंडल की कार्य-प्रणाली, तथा प्रशासन पर उसके नियंत्रण की जाँच कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

संविधान के पहले अनुच्छेद में ही कहा गया है कि भारत राज्यों का एक संघ होगा। अमेरिकी संविधान में संघ शब्द का प्रयोग फेडरेशन (federation) के लिए किया गया है। लेकिन हमारे संविधान में, संघ (Union) अमरीकी संविधान द्वारा स्थापित संघ जैसा नहीं है। हमारे संविधान में संघ की अनेकों विशेषताएँ हैं, जैसे दोहरी शासन व्यवस्था या दोहरी सरकार, संघ एवं राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन,

*यह इकाई बीपीएई-102, भारतीय प्रशासन, खंड-3, इकाई-12 का अनुकूलित रूप है।

संविधान की सर्वोच्चता तथा संविधान की व्याख्या की अंतिम शक्ति न्यायालय के हाथों में होना। दूसरी ओर, बहुत-सी विशेषताएँ एकात्मक शासन की हैं, जैसे एकीकृत न्यायिक प्रणाली; चुनाव की एकीकृत मशीनरी; लेखा तथा लेखा परीक्षा; आपातकाल तथा कुछ मामलों में तो साधारण काल में भी राज्य सरकारों के ऊपर केन्द्रीय सरकार का अधीक्षण; इकहरी नागरिकता आदि। इन विशेषताओं के कारण, हमारे संविधान को अर्ध-संघीय राजनीतिक व्यवस्था कहा जाता है। केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच घनिष्ठ सहयोग की आवश्यकता के कारण ग्रेनविल ऑस्टिन ने हमारे संघ को 'सहकारी संघवाद' कहा है। हमारा उद्देश्य यहाँ भारतीय संघ के स्वरूप पर विस्तार से चर्चा करना नहीं है, बल्कि राज्य प्रशासन के अध्ययन को सही परिप्रेक्ष्य में समझना है। अतः हमारे लिए यह जान लेना काफी है कि हमारी शासन-व्यवस्था के तीन स्तर हैं – केन्द्र या संघ स्तर, राज्य स्तर तथा स्थानीय स्तर। केन्द्र तथा राज्य सरकारें अपने-अपने क्षेत्रों में, स्वतंत्र रूप से कार्य करती हैं। एक क्षेत्र आच्छादन करने वाले अर्थात् मिले-जुले उत्तरदायित्व का है; तथा केन्द्र के हाथों में कुछ अधीक्षण की शक्तियाँ सौंपी गई हैं।

इस इकाई में हम, संविधान में, राज्य सरकारों को दिए गए कार्यों तथा उन्हें सम्पन्न करने के लिए राज्य प्रशासन के गठन का अध्ययन करेंगे।

2.2 राज्य सरकार की शक्तियाँ

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि केन्द्र तथा राज्य सरकारें अपनी शक्तियाँ – सीधे संविधान से प्राप्त करती हैं। केन्द्र तथा राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का बँटवारा, संविधान में तीन प्रकार से किया गया है (अनुच्छेद 246)। संविधान की सातवीं अनुसूची में विषयों को तीन सूचियों में रखा गया है। प्रथम या केन्द्र सूची में दिए गए विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केवल केन्द्र को है। इसी प्रकार द्वितीय या राज्य सूची में दिए गए विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केवल राज्य को है। एक अन्य सूची (तृतीय सूची) भी है जिसे समवर्ती सूची कहा जाता है, जिसके अंतर्गत दिए गए विषयों पर केन्द्र तथा राज्य, दोनों सरकारों को कानून बनाने का अधिकार है। बची हुई शक्तियाँ केन्द्र के पास हैं। अब हम द्वितीय तथा तृतीय सूची, जिनमें वे विषय हैं जिन पर राज्य सरकार को अकेले या केन्द्र के साथ मिलकर कानून बनाने का अधिकार है, उनकी संक्षेप में चर्चा करेंगे।

i) **राज्य सूची**

राज्य सूची में 59 विषय हैं, (मूलरूप से अनुसूची VII में 66 विषय) जिन पर राज्य सरकार का एकमात्र अधिकार है। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण विषय हैं – सार्वजनिक व्यवस्था, पुलिस, कृषि, सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, स्थानीय शासन आदि। ये विषय जनता के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं, जिनका निपटान राज्य स्तर पर अधिक अच्छा हो सकता है। ये विषय साधारणतया राज्य के एकमात्र क्षेत्राधिकार में होते हैं, परन्तु निम्नलिखित परिस्थितियों में संसद इन विषयों पर कानून बना सकती है:

क) राष्ट्र-हित में, परिषद् अपने यहाँ उपस्थित तथा मतदान करने वाले 2/3 सदस्यों द्वारा पारित प्रस्ताव से संसद को राज्य के किसी विषय पर कानून बनाने का अधिकार दे सकती है। ऐसा अधिकार एक वर्ष की अवधि के लिए हो सकता है, परन्तु नए प्रस्ताव द्वारा इसे बढ़ाया जा सकता है;

ख) आपातकाल की स्थिति लागू होने पर, संसद राज्य के किसी विषय पर कानून बना सकती है;

ग) दो या अधिक राज्यों के कहने पर, संसद उन राज्यों के राज्य विषय पर कानून बना सकती है;

घ) संधियों या अंतर्राष्ट्रीय समझौतों एवं प्रथाओं को लागू करने के लिए संसद किसी भी विषय (राज्यों के विषय सहित) पर कानून बना सकती है; और

ङ) किसी राज्य में सांविधानिक मशीनरी के असफल हो जाने पर, जब किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया हो तो राष्ट्रपति यह घोषणा कर सकता है कि उस राज्य के विधान–मंडल की शक्तियों का प्रयोग संसद द्वारा होगा या उसकी कार्यपालिका के अधीन होगा।

ii) **समवर्ती सूची**

समवर्ती सूची में 52 विषय हैं (हालांकि अंतिम विषय 47 है) जिन पर केन्द्र तथा राज्य दोनों को कानून बनाने का अधिकार है। इनमें महत्वपूर्ण विषय आपराधिक कानून, आपराधिक प्रक्रिया, विवाह, शिक्षा, नागरिक प्रक्रिया, आर्थिक तथा सामाजिक नियोजन आदि हैं।

यद्यपि समवर्ती सूची में दिए गए किसी भी विषय पर केन्द्र तथा राज्य, दोनों को कानून बनाने का अधिकार है, परन्तु केन्द्र को प्रमुखता दी गई है। इसका अर्थ यह है कि किसी विषय पर केन्द्र तथा राज्य के कानून में टकराव या विरोध की स्थिति में, केन्द्र का कानून मान्य होगा। परन्तु यदि राज्य के कानून को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रखा गया हो और उस पर राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल गई हो तो विरोध या टकराव के होते हुए भी राज्य का कानून प्रबल हो सकता है। परन्तु संसद बाद में, कानून द्वारा राज्य के किसी ऐसे कानून को रद्द कर सकती है।

तीनों सूचियों में दिए गए विषयों की व्याख्या के बारे में कोई भी विवाद न्यायालयों द्वारा तय किया जाता है। इस प्रकार की व्याख्या करते समय, निम्नलिखित सिद्धान्तों का अनुसरण किया गया है:

क) तीनों सूचियों में यदि कोई विषय परस्परव्यापी हो तो संघ विधायिका को प्रमुखता दी जाती है;

ख) प्रत्येक प्रविष्टि को प्रत्येक शब्द के अनुसार सबसे अधिक विस्तृत महत्व दिया जाता है, परन्तु यह देखा जाता है कि इससे अन्य प्रविष्टि निरर्थक न बन जाए; तथा

ग) यह निश्चय करने के लिए कोई कानून किस प्रविष्टि के तहत है, उसके सारगर्भित अर्थ पर विचार किया जाता है।

2.3 राज्यपाल की भूमिका

हमारे संविधान में केन्द्र तथा राज्य दोनों स्तरों पर संसदीय शासन प्रणाली की व्यवस्था है। राज्यपाल राज्य का सांविधानिक अध्यक्ष है, तथा मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में मंत्रिमंडल की सलाह पर कार्य करता है। राष्ट्रपति उसकी नियुक्ति पाँच वर्ष के लिए

करते हैं, तथा वह उनकी इच्छा तक अपने पद पर रहती/रहता है। कार्यकाल की समाप्ति पर उसे पुनः उसी राज्य का या किसी दूसरे राज्य का राज्यपाल नियुक्त किया जा सकता है।

संविधान के अनुसार, राज्यपाल की बहुत-सी कार्यकारी, विधायी, न्यायिक तथा आपातकालीन शक्तियाँ हैं। उदाहरण के लिए, मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करता है तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति वह मुख्यमंत्री की सलाह पर करता है। वह अन्य बहुत-सी नियुक्तियाँ भी करता है, जैसे राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्य, एडवोकेट जनरल, राज्य चुनाव आयुक्त आदि की नियुक्तियाँ। वास्तव में, राज्य का समस्त कार्यकारी कार्य उसके नाम से किया जाता है।

राज्यपाल राज्य विधान–मंडल का अंग होता हैं, उसे विधान–मंडल को संबोधित करने, संदेश भेजने और विधान–मंडल के अधिवेशन बुलाने तथा उसे स्थगित करने और निम्न सदन को भंग करने के अधिकार प्राप्त हैं। किसी विधेयक को कानून बनने से पहले राज्यपाल की स्वीकृति मिलना आवश्यक है। वह विधान–मंडल द्वारा पारित विधेयक से अपनी स्वीकृति रोक सकता है तथा उसे उसके पास पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है। यदि विधान–मंडल विधेयक संशोधन या उसके बिना पुनः पारित करता है, तब राज्यपाल को अपनी स्वीकृति देनी पड़ती है। वह किसी विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रख सकता है। जब विधान–मंडल का अधिवेशन न हो रहा हो तो राज्यपाल आदेश जारी कर सकता है।

राज्यपाल को किसी व्यक्ति को उसके द्वारा किसी कानून के उल्लंघन के अपराध के लिए क्षमादान करने, तथा सज़ा को कम करने या स्थगित करने का अधिकार है; अथवा किसी अपराध के दोषी व्यक्ति को किसी भी कानून से संबंधित, किसी भी कानून के खिलाफ सज़ा देने, हटाने या मनाने की शक्ति है, जिसके लिए राज्य की कार्यपालिका शक्ति विस्तृत है। जहाँ तक राज्यपाल की आपातकालीन शक्तियों का संबंध है, जब कभी राज्यपाल को यह संतुष्टि हो जाए कि राज्य का प्रशासन संविधान के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है तो वह इसकी रिपोर्ट राष्ट्रपति को भेज सकता है। ऐसी रिपोर्ट मिलने पर राष्ट्रपति राज्य सरकार की शक्तियाँ अपने हाथों में ले सकता है, तथा राज्य विधान–मंडल की शक्तियों को संसद के लिए सुरक्षित कर सकता है (अनुच्छेद 356)।

राज्यपाल द्वारा स्व-विवेक का प्रयोग

यह पहले भी बताया जा चुका है कि राज्यपाल अपनी शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषद् की सलाह पर करता है। इसलिए जब तक विधान सभा के बहुमत का विश्वास प्राप्त स्थायी मंत्रिमंडल होता है, उसको अपनी शक्तियों के प्रयोग में स्वविवेक का प्रयोग नहीं करना पड़ता। परन्तु हमेशा ऐसा नहीं होता है। उस समय राज्यपाल अपने स्वविवेक का प्रयोग कर सकता है। इस स्वविवेक के प्रयोग ने ही राज्यपाल को देश का सबसे अधिक विवादास्पद सांविधानिक पद बना दिया है। मुख्य विवाद निम्न प्रकार के मामलों में पैदा हुआ हैः

i) मुख्यमंत्री की नियुक्ति

राज्यपाल मुख्यमंत्री की नियुक्ति करता है तथा उसकी सलाह पर मंत्रिपरिषद् की नियुक्ति करता है। जब किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो जाता है तो उसके नेता को मुख्यमंत्री नियुक्त करने तथा उसे सरकार बनाने के लिए

आमंत्रित करने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं होता। समस्या उस समय उत्पन्न होती है, जब किसी भी दल को विधान–मंडल में बहुमत प्राप्त नहीं होता। यहां राज्यपाल स्वविवेक का प्रयोग करता है।

ii) मंत्रिमंडल को खारिज करना

मुख्यमंत्री तथा उसका मंत्रिपरिषद् राज्यपाल की इच्छा रहने तक पद पर रहते हैं। जिसकी कोई छानबीन नहीं हो सकती। परन्तु राज्यपाल को अपने स्वविवेक का प्रयोग विवेकपूर्ण तरीके से करना होता है।

iii) विधान सभा भंग करना

ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था में हॉउस ऑफ कॉमन्स को भंग करने के मामले में सम्राट प्रधानमंत्री की सलाह से काम करता है। उसी प्रकार विधान सभा को भंग करने के मामले में राज्यपाल का मुख्यमंत्री की सलाह से पथ प्रदर्शन किया जाना।

iv) आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग

राज्यपालों पर यह भी आरोप लगाया जाता है कि संविधान के अनुच्छेद 356 के अंतर्गत आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग करने के लिए राज्यपालों ने राष्ट्रपति को सलाह देते समय स्वविवेक का प्रयोग न्यायपूर्ण तरीके से नहीं किया।

2.4 राज्य का विधान–मंडल

विधान–मंडल नीति-निर्माण का ढाँचा प्रदान करता है, तथा सरकार को नीतियों को लागू करने की शक्तियों से सुसज्जित करता है। राज्य स्तर पर, आवश्यक विधायी ढाँचा प्रदान करने का कार्य राज्य के विधान–मंडल द्वारा सम्पन्न किया जाता है। सिक्किम, गोवा, मिज़ोरम आदि के अतिरिक्त, हमारे संविधान में कहा गया है कि प्रत्येक राज्य में कम से कम एक सदन अर्थात् विधान सभा होगी, जिसमें प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से वयस्क मताधिकार के आधार पर, प्रत्यक्ष निर्वाचन में चुने हुए 60 से 500 सदस्य होंगे। इसके अतिरिक्त कोई भी राज्य दूसरा सदन अर्थात् विधान परिषद् की स्थापना भी कर सकता है। इसके लिए विधान सभा के विशेष बहुमत (अर्थात् उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से, जो कुल सदस्य संख्या के बहुमत से कम न हो) द्वारा पारित एक प्रस्ताव की आवश्यकता होती है जिसके पश्चात् संसद इस संदर्भ में अधिनियम बनाती है। इसी प्रक्रिया से विधान परिषद् का उन्मूलन भी किया जा सकता है।

विधान परिषद् के सदस्यों का चुनाव एकल हस्तांतरणीय मत प्रणाली द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के अनुसार अप्रत्यक्ष रूप में होता है। विधान सभा का कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है, यदि उससे पहले राज्यपाल द्वारा उसे भंग न किया जाए। इसकी कार्य अवधि राष्ट्रपति द्वारा लागू आपात स्थिति की समाप्ति के बाद छः महीने तक संसद द्वारा बढ़ाई जा सकती है। विधान परिषद् एक स्थाई सदन होता है जिसके 1/3 सदस्य हर दो वर्ष के पश्चात् अवकाश ग्रहण करते हैं।

2.4.1 विधायी कार्य-प्रणाली

i) वित्त विधेयक के संदर्भ में

क) वित्त विधेयक केवल विधान सभा में ही पेश किया जा सकता है, विधान परिषद् में नहीं।

ख) विधान परिषद् विधान सभा द्वारा पारित विधेयक को अस्वीकार या संशोधित नहीं कर सकती। यह केवल सुझाव या सिफ़ारिश कर सकती है, जिन्हें विधान सभा स्वीकार अथवा अस्वीकार भी कर सकती है। संशोधन के बिना या संशोधन करके विधान सभा द्वारा पारित विधेयक राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। यदि परिषद् 14 दिन तक विधेयक को वापिस नहीं करती तो उसे सीधे राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेजा जा सकता है। अतः इस प्रकार अंतिम रूप से विधान सभा की इच्छा सर्वोपरि होती है। विधान परिषद् केवल इसको स्वीकार करने में देर कर सकती है।

ii) वित्त विधेयक के अतिरिक्त अन्य विधेयक के संदर्भ में

क) ऐसा विधेयक किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है।

ख) यदि विधेयक विधान सभा द्वारा पारित किया गया है तो विधान परिषद् उसे अस्वीकार कर सकती है, संशोधित कर सकती है या तीन महीने तक उसे अपने पास रख सकती है। परन्तु यदि विधान सभा उसे संशोधनों के साथ या संशोधनों के बिना दोबारा स्वीकृति दे देती है तो फिर विधान परिषद् इसे केवल एक महीने तक रोककर इसकी स्वीकृति में देर कर सकती है।

ग) यदि कोई विधेयक परिषद् में पेश होता है, और विधान सभा उसे अस्वीकार कर देती है तो वह मामला समाप्त हो जाता है।

घ) अतः हर तरह से विधान सभा की सर्वोच्चता स्थापित होती है; अधिकांशतः वित्त विधेयकों के मामले में। दो सदनों के बीच विवाद का फैसला सदैव विधान सभा की इच्छानुसार होता है। केन्द्र के संसद में इसके विपरीत स्थिति है, क्योंकि वहां विवाद का फैसला दो सदनों की संयुक्त बैठक में होता है। शायद यह इस तथ्य की मान्यता के कारण है कि संघ विधायिका का ऊपरी सदन राज्यों का प्रतिनिधित्व करता है।

iii) राज्यपाल द्वारा वीटो का प्रयोग

जब कोई राज्य विधायिका द्वारा पारित विधेयक, राज्यपाल के सामने उसकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो वहः

क) अपनी स्वीकृति प्रदान कर सकता है, जिसके पश्चात् वह विधेयक कानून बन जाएगा।

ख) अपनी स्वीकृति रोक सकता है, इस स्थिति में विधेयक कानून नहीं बनता।

ग) वित्त-विधेयक को छोड़कर अन्य विधेयक को अपने संदेश के साथ वापिस भेज सकता है।

घ) राज्यपाल राष्ट्रपति के विचार के लिए विधेयक को सुरक्षित रख सकता है।

iv) राज्यपाल की अध्यादेश जारी करने की शक्ति

जब विधान–मंडल का अधिवेशन न हो तो राज्यपाल अध्यादेश जारी कर सकता हैं, यह अध्यादेश कानून के समान होता है। कोई भी अध्यादेश जिसे राज्यपाल ने जारी किया हो, उसे विधान–मंडल का अधिवेशन होने पर उसके समक्ष पेश किया जाना आवश्यक है, तथा अधिवेशन शुरू होने के छः सप्ताह के बाद इसका प्रभाव भी समाप्त हो जाएगा, यदि इससे पहले उसे अस्वीकृत नहीं किया गया है। राज्यपाल की अध्यादेश जारी करने की शक्ति उन सभी विषयों के बारे में हैं जो राज्य विधान–मंडल की विधायी शक्तियों में आते हैं, तथा राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति प्राप्त करने के बारे में उन्हीं सीमाओं के अंतर्गत है।

2.4.2 प्रशासन पर विधायी नियंत्रण

कार्यपालिका को आवश्यक विधायी समर्थन देने के अतिरिक्त, विधान–मंडल प्रशासन पर सार्वजनिक नियंत्रण के एक साधन के रूप में भी कार्य करता है। हमारे जैसे संसदीय प्रजातंत्र में, यह नियंत्रण निम्नलिखित रूप में किया जाता है:

i) विधान सभा प्रश्न

विधान सभा के सदस्यों को सरकार से कोई भी प्रश्न पूछने का अधिकार है। जब मंत्री उत्तर देता है, तब वे पूरक प्रश्न भी पूछ सकते हैं। यह उपाय सरकार को सदैव सावधान रखता है। जब कभी कोई कमज़ोरी नज़र आती है, तब सरकार वायदा करने तथा स्थिति को सुधारने का कार्य करने के लिए विवश हो जाती है।

ii) चर्चा

प्रश्न पूछने के अतिरिक्त, सदस्य महत्वपूर्ण विषयों पर विचार-विमर्श/चर्चा की मांग कर सकते हैं। सार्वजनिक महत्व के विषयों पर वे ध्यानाकर्षण प्रस्ताव तथा स्थगन प्रस्ताव भी प्रस्तुत कर सकते हैं। भले ही इन प्रस्तावों की अनुमति न दी जाए या स्वीकृति न हो, तब भी सरकार को बहुत-सी जानकारी देनी पड़ती है तथा कुछ न कुछ चर्चा होती है। इसके द्वारा भी सरकार को सतर्क रखा जाता है तथा उसे जन-प्रतिनिधियों को जवाब देना पड़ता है।

iii) बजट के माध्यम से वित्तीय नियंत्रण

विधान–मंडल की स्वीकृति के बिना न तो कोई धन एकत्र किया जा सकता है और न ही पैसा खर्च किया जा सकता है। इस प्रकार वित्तीय नियंत्रण रखकर विधान–मंडल सरकार के कार्यक्रमों एवं कार्यकलापों पर नियंत्रण रखती है। यह सच है कि विधान–मंडल में बहुमत होने के कारण सरकार अंत में वांछित धन की स्वीकृति विधान–मंडल से प्राप्त कर सकती है, परन्तु इस प्रक्रिया में काफी चर्चा होती हैं, इससे सरकार जनता की आवश्यकताओं से जुड़ी रहती है। यह चर्चा स्वीकृत कार्यक्रमों को लागू करने में प्रशासन की कमज़ोरियों को भी उजागर करती है।

iv) व्यय के बाद नियंत्रण

लेखा परीक्षा के माध्यम से राज्य विधान–मंडल सरकार द्वारा किए गए व्यय की छानबीन करता है। हमारे संविधान में एकीकृत लेखा तथा लेखा-परीक्षा प्रणाली

की व्यवस्था है। भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General of India-CAG) राज्य सरकारों के लेखाओं का परीक्षण कराता है; तथा राज्यपाल के माध्यम से अपनी रिपोर्ट विधान सभा को भेजता है। राज्य विधान–मंडल की लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) इस रिपोर्ट का अध्ययन करती है, इसकी जाँच करती है तथा अंत में विधान–मंडल को अपनी रिपोर्ट भेज देती है। ग़ैर-कानूनी, अनुचित या अविवेकपूर्ण व्यय के मामलों पर विस्तार से चर्चा करके, ये विधान–मंडल की जानकारी में लाए जाते हैं। इससे विधान–मंडल सरकार के कार्यों पर नज़र रख सकता है।

v) विधायी समितियों के माध्यम से नियंत्रण

ऊपर बताई गई लोक लेखा समिति के अतिरिक्त कई अन्य समितियाँ भी हैं, जैसे प्राक्कलन समिति, सार्वजनिक उपक्रम समिति, सरकारी आश्वासन पर समिति आदि। ये समितियाँ सरकार की कार्यशैली के विभिन्न पहलुओं की जाँच करती हैं तथा उपयोगी सुझाव देती हैं। ये सरकार की असफलताओं के लिए आलोचना करती हैं तथा इन असफलताओं को विधान–मंडल तथा जनता की जानकारी में लाती हैं। यह सरकार पर नियंत्रण स्थापित करने का अच्छा तरीका है क्योंकि विधान सभा इतनी बड़ी संस्था है कि सरकार के कार्यों का विस्तार में परीक्षण नहीं कर सकती।

vi) मंत्रीमंडलीय उत्तरदायित्व

वास्तव में, विधान–मंडल का सबसे अधिक प्रभावयुक्त कार्य, मंत्रिमंडलीय उत्तरदायित्व को लागू करना है। संसदीय शासन प्रणाली में राजनीतिक कार्यपालिका विधान–मंडल का अंग होती है तथा सदैव उसके प्रति उत्तरदायी होती है। अविश्वास प्रस्ताव पास करके, या इसके द्वारा प्रस्तुत बजट को अस्वीकार करके या किसी विशेष विधायी कदम को अस्वीकार करके सरकार को कभी भी अपदस्थ किया जा सकता है। जैसे कि राजनीतिक कार्यपालिका सदैव विधान–मंडल के प्रति उत्तरदायी होती है, इसीलिए प्रशासक इसके प्रति मंत्रियों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी बन जाते हैं।

इन नियंत्रणों के होते हुए भी प्रायः यह अनुभव किया जाता है कि प्रशासन पर्याप्त रूप से उत्तरदायी नहीं है। दूसरी ओर, यह भी कहा जाता है कि विधायी नियंत्रण, विशेष रूप से लेखापरीक्षा के द्वारा इतना कठोर और कड़ा है कि प्रशासकों का पहल करने का अवसर छिन जाता है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी: i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थानों का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) केन्द्र और राज्यों के बीच तीन प्रकार की शक्तियों के विभाजन की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) राज्यपाल की आपातकालीन शक्तियों पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

3) वित्त विधेयक को पारित करने के बारे में विधायी प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

4) प्रशासन पर विधान–मंडल किन तरीकों से नियंत्रण रखता है?

....

....

....

....

2.5 राज्य का मंत्रिपरिषद्

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग राज्य के सांविधानिक मुखिया अर्थात् राज्यपाल के नाम से किया जाता है। परन्तु राज्यपाल को सहायता तथा परामर्श देने के लिए मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एक मंत्रिपरिषद् होता है। कुछ स्वविवेक वाले कार्यों को छोड़कर राज्यपाल को मंत्रिमंडल की सलाह पर कार्य करना होता है। इसका अर्थ यह है कि वास्तव में कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग मंत्रिपरिषद् करता है।

मंत्रिपरिषद् के सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री की सलाह पर की जाती है, तथा उसकी इच्छा रहने तक वे अपने पद पर कार्य करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि मुख्यमंत्री की सलाह पर राज्यपाल किसी भी मंत्री को अपदस्थ कर सकता है।

संघ सरकार के प्रतिमान पर राज्य सरकारों में भी मंत्रियों की निम्नलिखित श्रेणियां हैं:

i) कैबिनेट मंत्री,

ii) राज्य मंत्री, तथा

iii) उप मंत्री।

भारत सरकार में, केवल कैबिनेट मंत्री ही मंत्रिमंडल की बैठकों में भाग लेते हैं। परन्तु अधिकांशतः राज्यों में, राज्य सरकार में, बड़ी संख्या में मंत्री मंत्रीमंडल की बैठकों में भाग लेते हैं, जिससे गंभीर मसलों पर परिचर्चा कठिन हो जाती है। राज्य सरकारों में केबिनेट समितियों की प्रणाली उतनी प्रचलित नहीं है, जितनी कि केन्द्रीय सरकार में लोकप्रिय है।

i) मंत्रिपरिषद् की शक्तियाँ और कार्य

मंत्रिपरिषद् राज्य सरकार का सर्वोच्च नीति-निर्धारक निकाय है। यह राज्य सरकार की विधायी तथा प्रशासनिक शक्तियों के अधीन सभी मामलों के संदर्भ में नीति बनाता है। मंत्रिपरिषद् नीति के कार्यान्वयन की समीक्षा भी करता है, तथा कार्यान्वयन के समय प्राप्त प्रतिक्रियाओं के परिप्रेक्ष्य में नीति में संशोधन भी कर सकता है। अधिकांशतः राज्यपाल को अपनी कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषद् की सलाह पर करना होता है। सभी कार्यपालिका शक्तियों का संचालन राज्यपाल के नाम पर किया जाता है। इसलिए निम्नलिखित सीमाओं के अतिरिक्त, मंत्रीपरिषद् की शक्तियों के ऊपर कोई सीमाएं नहीं हैं:

क) संविधान तथा संघ एवं राज्य विधान–मंडलों द्वारा पारित कानूनों द्वारा लगाई गई सीमाएँ।

ख) कम महत्वपूर्ण मसलों को बाहर रखने के लिए स्वयं लगाई गई सीमाएँ।

ii) राज्य स्तर पर विभागों में कार्य का विभाजन

मंत्रिमंडलीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अनुसार मंत्रिपरिषद् राज्य की विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है। परन्तु परिषद् के लिए सभी निर्णय सामूहिक रूप से लेना असंभव है। ब्रिटिश काल के शुरू में गवर्नर-इन-काउंसिल द्वारा राज्य का प्रशासन चलाया जाता था। उस समय अधिकतर निर्णय सामूहिक रूप से लिए जाते थे, क्योंकि लिए जाने वाले निर्णयों की संख्या अधिक नहीं थी। समय के बीतने पर, सरकारी कार्यकलापों का क्षेत्र बढ़ गया है, और इसलिए परिषद् के निर्णय के लिए आने वाले मामलों की संख्या भी बढ़ गई है। इसमें विभागों की प्रणाली का विकास हुआ, जिसमें कुछ निश्चित विषयों की ज़िम्मेदारी मंत्रियों को दे दी जाती थी तथा पूर्ण मंत्रीपरिषद् के सामने रखने के लिए कुछ ही महत्वपूर्ण विषय छोड़े जाते थे। हमारे संविधान के अनुसार राज्यपाल द्वारा कार्य को कुशलतापूर्वक चलाने के लिए नियम बनाए जाते हैं। [अनुच्छेद 166 (3)] । राज्य सरकारों ने कार्य आवंटन नियम बनाए हैं, जिनके अनुसार विभिन्न मंत्रियों में काम बांटा जाता है। कार्य का विभाजन, कार्यों के आधार पर अथवा स्थान अथवा सभी कारकों के संयोजन के आधार पर किया जाता है। प्रायः कार्य का बंटवारा किसी तार्किक आधार पर करने की अपेक्षा व्यक्तिगत कारकों के आधार पर किया जाता है। एक मंत्री को सौंपे गए विषयों से संबंधित अधिकतर कार्य उसके द्वारा ही निपटाए जाते हैं। परन्तु कार्य के नियमों के अनुसार कुछ विषयों को मंत्री निम्नलिखित के विचार के लिए सुरक्षित रखता है:

क) मुख्यमंत्री के विचार के लिए

इन्हें समन्वय संबंधी मामले कहा जाता है। इन मामलों में किसी विभाग का प्रभारी मंत्री अपनी सिफ़ारिशों के साथ फाइल को मुख्यमंत्री के आदेशों के लिए भेज

देता है। ऐसे मामलों की सूची कार्य नियमों में दी गई है। मुख्यमंत्री भी कुछ मामलों को या कुछ विषयों के मामलों को अपने आदेश के लिए आरक्षित रख सकता है।

ख) मंत्रिमंडल के समक्ष प्रस्तुति

ये व्यापक प्रभाव वाले महत्वपूर्ण नीतिगत मामले होते हैं। दो या अधिक मंत्रियों के बीच मतभेद के महत्वपूर्ण मामले भी मंत्रिमंडल के निर्णय के लिए उसके सामने लाए जाते हैं। ऐसे मामलों की सूची कार्य नियमों में दी गई है। इसके अतिरिक्त, मुख्यमंत्री किसी भी विभाग के किसी भी मामले को मंत्रिमंडल के सामने रखने के लिए कह सकता है। नमूने के रूप में कुछ मंत्रिमंडल के मामले नीचे दिए गए हैं:

– विधान–मंडल के सामने रखा जाने वाला वार्षिक वित्तीय विवरण तथा पूरक अनुदानों के लिए मांगें।

– राज्य के वित्त को प्रभावित करने वाले ऐसे प्रस्ताव जिन्हें वित्त मंत्री ने स्वीकृति न दी हो।

– राज्य लोक सेवा आयोग के क्षेत्राधिकार से महत्वपूर्ण मामलों को छूट।

– नए कर आदि लगाने के प्रस्ताव।

प्रभावी लोक प्रशासन के लिए मंत्रिपरिषद् का आकार और संरचना महत्त्वपूर्ण हैं। मंत्रालय और मंत्रिमंडल प्रशासन को सक्षमतापूर्वक और निष्पक्षतापूर्वक चलाने के लिए अस्तित्व में आए हैं। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, इसे सुगठित और समरूप होने की आवश्यकता है, और इसका आकार प्रशासनिक आवश्यकताओं द्वारा निर्धारित किया जाए। यह राज्य के क्षेत्र, उसकी जनसंख्या, आर्थिक विकास के स्तर और विशिष्ट समस्याओं जैसे विभिन्न कारकों पर निर्भर करेगा। हालांकि, बड़े राज्यों में मंत्रिपरिषद् का वर्तमान आकार अनुपातहीन प्रतीत होता है। इस संदर्भ में, 91वें संवैधानिक संशोधन द्वारा 1 जनवरी 2004 से मंत्रिपरिषद् के आकार को संबंधित राज्य विधान सभा की संख्या के अधिकतम 15 प्रतिशत तक प्रतिबंधित करते हुए लागू किया गया था, लेकिन समस्या अभी भी विद्यमान है। भारत के बड़े राज्यों में (उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश में 404 विधायक हैं), यहाँ तक कि इस प्रतिबंध से विशाल आकार के मंत्रालयों के गठन को भी नहीं रोका जा सका है। इसलिए, इस बात का अहसास हो रहा है कि राज्यों में मंत्रिपरिषद् के विशाल आकार को समानुपात में लाने के लिए इसके आकार को कम करने की तत्काल आवश्यकता है। इस संदर्भ में, द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने सिफारिश की है कि मंत्रिपरिषद् का आकार उनकी विधान सभा की सदस्य संख्या का 10% से 15% तक हो सकता है (Second Administration Reforms Commission, 2009, pp. 22-23 https://www.darpg.gov.in/sites/ default/files/sdadmin15.pdf)।

2.6 मुख्यमंत्री की भूमिका

राज्य सरकार के संबंध में, मुख्यमंत्री वे सभी कार्य सम्पन्न करता है जो प्रधानमंत्री केन्द्रीय सरकार के संदर्भ में करता है। यद्यपि राज्य की वास्तविक कार्यपालिका शक्ति मंत्रिपरिषद् के पास है, इस शक्ति के प्रयोग में मुख्यमंत्री की एक बहुत ही विशेष भूमिका होती है। वह बराबर वालों के बीच पहले नहीं, अपितु राज्य सरकार की कार्यपालिका के प्रधान चालक हैं।

मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है तथा वह राज्यपाल की इच्छा रहने तक पद पर रहता है। लेकिन जब विधान सभा में किसी एक दल का स्पष्ट बहुमत होता है, तो इन मामलों में राज्यपाल की भूमिका नाममात्र की होती है। उसे बहुमत दल के नेता को ही सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करना होता है, तथा जब तक उसे विधान सभा का विश्वास प्राप्त है, उसे राज्यपाल पदच्युत नहीं कर सकता। एकमात्र अपवाद शायद उस समय उत्पन्न हो सकता है, जब बहुमत दल विधान सभा में अपना नेता बदलता है। वास्तव में राज्यपाल को अस्थिरता के दौरान इन मामलों में विवेकाधिकार प्राप्त है, जब किसी भी दल को विधान सभा में बहुमत प्राप्त न हो।

i) मंत्रिपरिषद् के संबंध में मुख्यमंत्री की शक्तियाँ

मुख्यमंत्री मंत्रिपरिषद् का नेता होता है। वह मंत्रियों को विभाग सौंपता है तथा इन विभागों को जब चाहे परिवर्तित भी कर सकता है। वह मंत्रिपरिषद् की कार्य-प्रणाली में समन्वयकर्ता की भूमिका निभाता है। वह यह देखता है कि विभिन्न विभागों के निर्णय सुसंगत हैं। वह विधान सभा में मंत्रिपरिषद् का नेतृत्व करता है तथा उसका पक्ष पेश करता है। संक्षेप में, वह विधान सभा के प्रति मंत्रिपरिषद् के सामूहिक उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करता है। मुख्यमंत्री कैबिनेट के लिए कार्य-सूची तय करता है तथा काफी हद तक उसके निर्णयों को प्रभावित करता है। समन्वय की श्रेणी में आए महत्वपूर्ण मामलों में वह निर्णय लेता है, भले ही वे विभिन्न मंत्रियों को सौंपे गए विषय हों। इसके अतिरिक्त, राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री की सलाह पर मंत्रियों की नियुक्ति की जाती है तथा मंत्री राज्यपाल की इच्छा रहने तक पद पर बने रह सकते हैं। इन प्रावधानों के परिणामस्वरूप, वास्तव में मुख्यमंत्री की इच्छा रहने तक ही मंत्री पद पर रह सकता है। अपनी इच्छा से मंत्रियों को पदच्युत करने तथा उनके विभागों को परिवर्तित करने की शक्ति ने मंत्रियों के संबंध में और अंततः मंत्रिमंडल के संबंध में मुख्यमंत्री की शक्तियों को बहुत अधिक मज़बूत कर दिया है।

ii) राज्यपाल के संबंध में मुख्यमंत्री की शक्तियाँ

राज्यपाल के संबंध में मुख्यमंत्री की शक्तियों का उल्लेख संविधान में कहीं भी नहीं किया गया है। राज्य में राज्यपाल की नियुक्ति के संबंध में मुख्यमंत्री से विचार-विमर्श करने की परम्परा स्थापित करने का प्रयास किया गया था। इसका भी केन्द्रीय सरकार ने कई बार पालन नहीं किया है। दूसरी एकमात्र शक्ति जो अप्रत्यक्ष रूप से संविधान से प्राप्त की जा सकती है, वह यह है कि राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग राज्यपाल के नाम में किया जाता है। राज्यपाल की सार्वजनिक उपस्थिति तथा ऐसे समय पर उसके भाषण मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में मंत्रीपरिषद् द्वारा निर्मित या निर्धारित-नीतियों के अनुरूप होने चाहिए। इसी प्रकार, समारोह के अवसरों पर राज्यपाल के भाषण, तथा विधान सभा के समक्ष उसका वार्षिक भाषण भी मंत्रिपरिषद् द्वारा अनुमोदित होना चाहिए।

iii) विधान–मंडल के संबंध में मुख्यमंत्री की शक्तियाँ

औपचारिक रूप से मुख्यमंत्री सदन का नेता भी होता है। इस औपचारिक स्थिति के अतिरिक्त, मुख्यमंत्री सदन को वास्तविक विधायी नेतृत्व इस अर्थ में प्रदान करता है कि वह विधायी कार्यसूची तैयार करता है। विधायी मामले, मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में मंत्रिपरिषद् की स्वीकृति के पश्चात् ही विधान सभा के सामने लाए जाते हैं। यह सच है कि सदन के सामने निजी सदस्य/गैर-सरकारी विधेयक भी

सभा के समक्ष पेश कर सकते हैं। परन्तु प्रायः इसकी सफलता के अवसर सीमित होते हैं। इस तथ्य के अतिरिक्त कि उसके पीछे बहुमत दल का समर्थन नहीं होता, निजी सदस्यों के पास पूरी जानकारी भी नहीं होती, जो सरकार के पास उपलब्ध होती है। विधायी कार्यसूची तय करने के अतिरिक्त, मुख्यमंत्री विधान सभा को सरकार के क्रियाकलापों के विषय में प्रश्नों के उत्तर देकर, बयान देकर, तथा चर्चा में हस्तक्षेप करके जानकारी देता रहता है।

iv) कार्मिक के संबधं में मुख्यमंत्री की शक्तियाँ

राजनीतिक कार्यकारिणी का मुखिया होने के कारण मुख्यमंत्री राज्य के समस्त अधिकारी वर्ग को नियंत्रित करता है। इस कार्य में, उसकी सहायता सचिवालय करता है, जिसका अध्यक्ष मुख्य सचिव होता है। वह सचिवों, अपर/संयुक्त/उप–सचिवों, विभागों के अध्यक्षों, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के अध्यक्ष (चेयरमैन) तथा प्रबंध निदेशकों जैसी वरिष्ठ नियुक्तियों का अनुमोदन करता है। अपने मंत्रिमंडल के माध्यम से वह उनकी सेवा-शर्तों और अनुशासनात्मक मामलों को नियंत्रित करता है। वह उनका अच्छा कार्य-निष्पादन तथा मनोबल सुनिश्चित करने के लिए नेतृत्व प्रदान करता है। उसी के साथ वह प्रशासनिक माध्यमों तथा दल के कार्यकर्ताओं के माध्यम से, पीड़ित लोगों की शिकायतों तथा दौरों के समय वास्तविक अवलोकन के माध्यम आदि से उनके कार्य-निष्पादन पर निगरानी करता है।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणीः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थानों का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।.

1) मंत्रिपरिषद् की शक्तियाँ और कार्य कौन-कौन से हैं?

....

....

....

....

....

....

2) मंत्रिपरिषद् के संबंध में मुख्यमंत्री की शक्तियों की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2.7 निष्कर्ष

हमारे संविधान को विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न नामों से पुकारा है। कुछ इसे संघीय मानते हैं तो अन्य इसे एकात्मक पक्ष वाला संघ या संघात्मक पक्ष वाला संविधान कहते हैं। इन व्याख्याओं की ओर जाए बिना यह कहा जा सकता है कि हमारे संविधान में यद्यपि शक्तियों का विभाजन केन्द्र और राज्यों के बीच किया गया है, परन्तु बहुत बड़ा क्षेत्र ऐसा है, जहाँ दोनों के कार्य परस्पर व्यापी हैं। राज्य विधान–मंडल को राज्य सूची में दिए गए सभी विषयों पर एकमात्र अधिकार है (संविधान की सातवीं अनुसूची), जबकि संघ सूची में दिए विषयों पर केन्द्रीय संसद का एकल क्षेत्राधिकार है। समवर्ती सूची में दिए गए विषयों पर केन्द्र तथा राज्य, दोनों की विधायिका कानून बना सकती हैं, परन्तु दोनों में विरोध की स्थिति में केन्द्रीय कानून को मान्यता दी जाती है। सामान्यतः केन्द्र तथा राज्य के बीच कार्यपालिका शक्तियों का विभाजन केन्द्र तथा राज्य सूची में दी गई विधायी शक्तियों के विभाजन के आधार पर होता है। लेकिन कुछ अपवादों को छोड़कर, समवर्ती सूची के संदर्भ में, कार्यपालिका शक्तियाँ राज्य सरकारों में निहित हैं। केन्द्र तथा राज्य, दोनों स्तरों पर हमने संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया है, जिसमें राज्यपाल राज्य का सांविधानिक मुखिया है, और वास्तव में कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में मंत्रीपरिषद् द्वारा राज्यपाल के नाम में किया जाता है ।

इस प्रकार, इस इकाई में, हमने राज्य प्रशासन की सांविधानिक संरचना पर चर्चा की है। राज्य सूची तथा समवर्ती सूची के संदर्भ में राज्य सरकार की शक्तियों को स्पष्ट किया गया है। हमने राज्यपाल तथा मंत्रिपरिषद् की भूमिका की भी चर्चा की। मुख्यमंत्री राज्य की वास्तविक कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग करता है। इस इकाई में उसकी शक्तियों का स्पष्ट विवरण दिया गया है। इकाई में राज्य के विधान–मंडल की भूमिका का भी वर्णन किया गया है, और केन्द्र तथा राज्यों के बीच उभरते संबंधों पर भी प्रकाश डाला गया है।

2.8 शब्दावली

परम्परा : एक स्वीकृत नियम।

क्षमा : दंड की मात्रा कम करना, उसमें और कोई परिवर्तन लाए बिना, जैसे कि एक वर्ष के कारावास की सज़ा एक महीने तक की सज़ा हो सकती है।

प्रतिकूलता : परस्पर विरोध।

प्राणदंड स्थगन : क्षमा अथवा स्थगन।

स्थगन : कार्यान्वयन में अस्थायी रहना ।

2.9 संदर्भ लेख

Arora, R.K. & Goyal, R. (2013). *Indian Public Administration: Institutions and Issues.* New Delhi, India: New Age International Publishers.

Basu, D.D. (2019). *Introduction to the Constitution of India* (24th ed.). New Delhi, India: Lexis Nexis.

Government of India. (2009). *Second Administrative Reforms Commission (15th Report), State and District Administration*. Retrieved from https://www.darpg.gov.in/sites/default/files/sdadmin15.pdf

Maheshwari, S.R. (2000). *State Governments in India*. New Delhi, India: The Macmillan Company of India Limited.

Pandey, L.B. (1984). *The State Executives*. Delhi, India: Amar Prakashan.

Pylee, M.V. (2016). *India's Constitution*. New Delhi, India: S Chand & Company.

The Constitution of India. Retrieved from https://www.india.gov.in/my government/constitution-india/constitution-india-full-text

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - संघ सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची के अंतर्गत केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों का बंटवारा।

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - राज्यपाल की इस बात पर संतुष्टि कि राज्य में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि राज्य का प्रशासन संविधान के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है।
   - वह इस तथ्य की रिपोर्ट राष्ट्रपति को भेज सकता है।
   - इस प्रकार की रिपोर्ट मिलने पर राष्ट्रपति राज्य सरकार की शक्तियाँ अपने हाथों में ले सकता है।
   - वे राज्य विधान–मंडल की शक्तियाँ संसद को सौंप सकते हैं।

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - वित्त विधेयक केवल विधान सभा में ही पेश किया जा सकता है, विधान परिषद् में नहीं।
   - विधान सभा द्वारा पारित वित्त विधेयक को परिषद् रद्द या संशोधित नहीं कर सकती।
   - यह केवल सिफ़ारिशें दे सकती हैं, जिन्हें मानना अथवा न मानना विधान सभा के ऊपर निर्भर करता है।
   - विधान सभा द्वारा पारित, संशोधनों सहित या उनके बिना, विधेयक राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है।
   - अंत में, विधान सभा की इच्छा ही मान्य होती है।

- विधान परिषद् अधिक से अधिक इसकी स्वीकृति में देरी कर सकती है।

4) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- विधान सभा प्रश्न,
- चर्चा,
- बजट द्वारा वित्तीय नियंत्रण,
- व्यय के बाद नियंत्रण,
- विधायी समितियों के माध्यम से नियंत्रण, तथा
- मंत्रिमंडलीय उत्तरदायित्व।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- मंत्रिपरिषद् राज्य सरकार का सर्वोच्च नीति-निर्धारक निकाय है।
- यह राज्य सरकार के विधायी तथा प्रशासनिक अधिकार क्षेत्र के सभी विषयों से संबंधित नीति-निर्धारण करता है।
- यह स्वयं अपने द्वारा निर्मित नीति के क्रियान्वयन का पुनरीक्षण भी करता है, तथा क्रियान्वयन के समय प्राप्त प्रतिक्रियाओं या जानकारी और अनुभव के आधार पर किसी भी नीति में संशोधन भी कर सकता है।
- परिषद् की शक्तियों पर निम्नलिखित के अतिरिक्त और कोई सीमाएँ नहीं हैं:
  - संविधान तथा केन्द्र एवं राज्य के विधान–मंडलों द्वारा पारित कानूनों द्वारा लगाई गई सीमाएँ।
  - कम महत्व के विषयों को विचार के लिए न शामिल करने के उद्देश्य से स्वयं लगाई गई सीमाएँ।

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए :

- भाग 2.6 देखिए।

इकाई 3 राज्य सचिवालय : संगठन एवं कार्य*

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 सचिवालय का अर्थ

3.3 राज्य सचिवालय की स्थिति तथा भूमिका

3.4 विशिष्ट सचिवालय विभाग की संरचना

3.5 राज्य सचिवालय में विभागीकरण का पैटर्न

3.6 सचिवालय विभाग एवं कार्यकारी विभाग मे अंतर : असतत प्रक्रियाएँ अथवा अबाध क्रम

3.7 मुख्य सचिव

3.7.1 मुख्य सचिव का पद

3.7.2 मुख्य सचिव के कार्य

3.8 निष्कर्ष

3.9 शब्दावली

3.10 संदर्भ लेख

3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आपः

- राज्य सचिवालय का अर्थ, महत्व तथा भूमिका समझ सकेंगे;
- सचिवालय विभाग की खड़ी (vertical) संरचना तथा राज्य सचिवालय में विभागीकरण के पैटर्न की व्याख्या कर सकेंगे;
- सचिवालय विभाग तथा कार्यकारी विभाग के बीच अंतर तथा उनके आपसी संबधों का वर्णन कर सकेंगे; और
- राज्य सचिवालय व्यवस्था में मुख्य सचिव के महत्व तथा भूमिका की चर्चा कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

सरकार की कार्य-पद्धति को कार्योन्मुखी-मंत्रालयों की सहायता से प्रभावी बनाया जाता है। केन्द्र तथा राज्य स्तर पर सचिवालय की सहायता के बिना कोई भी मंत्रालय सुचारू रूप से नहीं चल सकता है। सचिवालय नीति-निर्माण में और विधायी कार्यों के

*यह इकाई बी.पी.ए.ई.-102, भारतीय प्रशासन, खंड-3, इकाई-13 का अनुकूलित रूप है।

निष्पादन में सरकार की सहायता करता है । यह इकाई राज्य सचिवालय की संरचना तथा कार्यों पर चर्चा को संभव करेगी। यह राज्य सचिवालय में विभागीकरण का पैटर्न तथा सचिवालय विभाग एवं कार्यकारी विभाग में अंतर की स्पष्ट व्याख्या करती है। इसके अतिरिक्त, मुख्य सचिव की स्थिति तथा कार्यों की भी विवेचना की गई है।

3.2 सचिवालय का अर्थ

राज्य स्तर पर सरकार के तीन अवयव/अंग होते हैं: (i) मंत्री; (ii) सचिव; और (iii) कार्यकारी या कार्यकारी अध्यक्ष। यद्यपि कार्यकारी अध्यक्ष को अन्य नामों से जाना जाता है, परन्तु अधिकतर उसे निदेशक कहा जाता है। मंत्री और सचिव मिलकर सचिवालय का गठन करते हैं, जबकि कार्यकारी अध्यक्ष का कार्यालय निदेशालय के नाम से जाना जाता है।

शाब्दिक रूप से ''सचिवालय'' का अर्थ है सचिव का कार्यालय। इसका उद्‌भव उस समय हुआ, जब भारत में, वास्तव में, सचिवों द्वारा संचालित सरकार थी। स्वतंत्रता के पश्चात् सत्ता के अधिकार जनता द्वारा चुने गए मंत्रियों के हाथों में आ गए, तथा इस प्रकार मंत्रालय सत्ता का स्थान बन गया। इस बदली हुई राजनीतिक स्थिति में, सचिवालय शब्द मंत्री के कार्यालय का पर्यायवाची बन गया। परन्तु चूँकि सचिव मंत्री का प्रमुख सलाहकार होता है, इसलिए उसे मंत्री के इर्द-गिर्द ही रहने की आवश्यकता होती है। वास्तव में, सचिवालय उन भवनों के समूह का नाम है जिनमें मंत्रियों तथा सचिवों के कार्यालय हैं। सचिवालय शब्द, यह देखा गया है, उन विभागों के परिसर के लिए प्रयोग किया जाता है, जिनके राजनीतिक अध्यक्ष मंत्री; तथा प्रशासनिक अध्यक्ष सचिव होते हैं।

3.3 राज्य सचिवालय की स्थिति तथा भूमिका

राज्य प्रशासन से संबंधित प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट का निम्नलिखित उदाहरण राज्य सचिवालय की स्थिति तथा भूमिका का बहुत उचित वर्णन करता है।

राज्य सचिवालय, राज्य प्रशासन के सर्वोच्च स्तर के रूप में मुख्यतया राज्य सरकार को नीति-निर्माण तथा विधायी कार्यों के निर्वाह में सहायता करने के लिए है। राज्य सचिवालय के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं:

i) मंत्रियों को नीति-निर्माण और समय-समय पर उनमें संशोधन करने एवं उनकी विधायी ज़िम्मेदारियों को पूरा करने में सहायता करना;

ii) नियम तथा विनियम और विधान का प्रारूप तैयार करना;

iii) नीतियों और कार्यक्रमों का समन्वय, उनके कार्यान्वयन का पर्यवेक्षण और नियंत्रण एवं परिणामों का पुनरावलोकन;

iv) बजट-निर्माण तथा व्यय का नियंत्रण;

v) भारत सरकार तथा अन्य सरकारों के साथ संपर्क बनाए रखना; तथा

vi) प्रशासनिक मशीनरी के कुशल तथा सुचारू संचालन को देखना, तथा कार्मिक एवं संगठनात्मक क्षमता को विकसित करने के उपायों की शुरूआत करना।

सचिवालय पद्धति की स्थापना के पीछे प्रशासनिक दर्शन यह है कि नीति-निर्माण को नीति कार्यान्वयन से अलग रखना चाहिए। इस प्रकार व्यवस्था के अनेक लाभों का दावा किया जाता हैः

i) कार्यान्वयन कार्य में न उलझकर उससे मुक्त रहने से नीति-निर्माण करने वाले दूरदर्शी हो जाते हैं और अलग-अलग विभागों में संकीर्ण तथा अनुभागीय हितों की अपेक्षा सरकार के समग्र उद्देश्यों के बारे में सोचने में समर्थ होते हैं।

ii) नीति-निर्माण को पर्याप्त समय तथा ध्यान मिलता है, यदि नीति-निर्माण तथा उसका कार्यान्वयन दोनों विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि नीति-निर्माण एक गहन कार्य है, जिसके द्वारा भविष्य में किए जाने वाले कार्यों का निर्धारण किया जाता है। परन्तु इसे नीति-कार्यान्वयन की अपेक्षा कम आवश्यक नहीं समझना चाहिए, जिसमें दैनिक प्रशासन की दिनचर्या सम्मिलित होती है।

iii) सचिवालय मंत्री के निष्पक्ष सलाहकर के रूप में कार्य करता है। यह याद रखना आवश्यक है कि सचिव सरकार का सचिव होता है, न कि सम्बद्ध मंत्री का, इससे कार्यकारी विभागों से आने वाले प्रस्तावों का निष्पक्ष परीक्षण निश्चित होता है। इससे प्रस्तावों की अधिक संतुलित छानबीन संभव होती है।

iv) नीति-निर्माण को रोज़मर्रा के प्रशासन से अलग रखना चाहिए; तथा रोज़मर्रा का कार्यान्वयन एक अलग अभिकरण या एजेंसी के पास होना चाहिए जिसके पास कार्यान्वयन से संबधित निर्णय लेने की स्वतंत्रता हो। इससे प्राधिकार का प्रत्यायोजन सुनिश्चित होता है।

यहाँ सचिवालय की भूमिका के मुख्य आयामों का कुछ विस्तार से चित्रण करना उचित होगा। इनमें से सर्वप्रथम नीति-निर्माण में सचिवालय की भूमिका है। यह सरकारी नीतियों के बनाने में मंत्रियों की सहायता करता है। इसके कई पहलू हैं। *पहला,* सचिव मंत्री को नीति-निर्माण के लिए आवश्यक आँकड़े तथा सूचना प्रदान करता है। *दूसरा,* कभी-कभी सचिव उन कार्यक्रमों की विस्तृत रूपरेखा या सार विषय सामग्री के साथ प्रदान करते हैं, जिनके आधार पर मंत्री सत्ता में आते हैं। *तीसरा,* सचिवालय मंत्रियों को उनके विधायी कार्यों में सहायता करते हैं। विधान–मंडल में मंत्री द्वारा पेश किए जाने वाले विधेयकों के प्रारूप सचिवों द्वारा तैयार किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, विधान–मंडल में मंत्री द्वारा पेश किए जाने वाले प्रश्नों के उत्तर देने के लिए मंत्री को आवश्यक सूचना की आवश्यकता होती है, और यह सूचना सचिव द्वारा मंत्री को प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त, सचिव विधायी समितियों द्वारा वांछित सूचना भी इकट्ठी करता है।

चौथा, सचिवालय एक संगठित स्मरण शक्ति के रूप में कार्य करता है। इसका तात्पर्य यह है कि उभरती हुई समस्याओं का परीक्षण पूर्व उदाहरणों के संदर्भ में किया जाना आवश्यक है। सचिवालय में रखे गए रिकार्ड तथा फाइलें संगठित स्मरण शक्ति के रूप में कार्य करती हैं, तथा विभिन्न मामलों को निपटाने में निरंतरता तथा एकरूपता सुनिश्चित करती हैं। *पाँचवां,* सचिवालय एक सरकार से दूसरी सरकार के बीच, और सरकार तथा वित्त आयोग जैसी संस्थाओं के बीच भी संचार का माध्यम होता है। अंत में, सचिवालय नीति के कार्यान्वयन से संबंद्धित पूरी जानकारी रखता है तथा क्षेत्रीय एजेंसियों के द्वारा नीति कार्यान्वयन का मूल्यांकन करता है।

3.4 विशिष्ट सचिवालय विभाग की संरचना

प्रत्येक विशिष्ट सचिवालय विभाग में दो तरह के सोपानक्रम/पदानुक्रम होते हैं, एक अधिकारियों का तथा दूसरा कार्यालय के नाम से जाना जाता है।

अधिकारी

अधिकारियों के पदानुक्रम में परम्परागत रूप से तीन स्तर होते थे। इसके अंतर्गत, सामान्यतया सचिव, प्रशासनिक विभाग का अध्यक्ष होता है और उसके अधीन उप-सचिव तथा अवर/सहायक सचिव होगा। परन्तु विभिन्न सचिवालय विभागों के कार्यों में वृद्धि के साथ, अधिकारियों की श्रेणियों के स्तरों की संख्या में भी वृद्धि हो रही है। इसके परिणामस्वरूम, कुछ राज्यों में सचिव और उप-सचिव के बीच अपर सचिव और/अथवा संयुक्त सचिव के पद भी सृजित किए गए हैं।

कार्यालय

भारत में सचिवालय प्रणाली की एकमात्र विशेषता, इसके दो घटक भागों के बीच अंतर है – "कुछ वरिष्ठ अधिकारियों का 'ट्रांज़िटरी केडर' तथा 'स्थायी कार्यालय'"। ट्रांज़िटरी केडर से तात्पर्य, प्रत्येक विभाग में कुछ अधिकारी निश्चित अवधि के लिए कार्यकाल पदों पर रहते हैं, तथा अवधि पूरी होने के पश्चात् वहाँ से चले जाते हैं। इसी कार्यालय में कार्य करने वाले स्थाई कार्मिक भी होते हैं, जो सचिवालय विभाग को निरंतरता का अति आवश्यक तत्व प्रदान करते हैं। अधिकारियों से भिन्न, कार्यालय सचिवालय प्रणाली में स्थाई तत्व का गठन करता है। कार्यालय के गठन में अधीक्षक (या अनुभाग अधिकारी), सहायक, क्लर्क, तथा कंप्यूटर ऑपरेटर आते हैं। कार्यालय वह प्रांरभिक तैयारी करता है, जिसके आधार पर अधिकारी विभिन्न मामलों पर विचार कर निर्णय लेते हैं। इस प्रकार कार्यालय अधिकारियों को वह सामग्री प्रदान करता है, जो निर्णयन का आधार बनती है।

विभाग की संरचना में निम्नलिखित शामिल होते हैं:

विभाग-सचिव

स्कंध (विंग)- अपर सचिव/संयुक्त सचिव

प्रभाग- उप-सचिव

शाखा - अवर सचिव

अनुभाग- अनुभाग अधिकारी

अनुभाग सबसे निचली संगठनात्मक इकाई होता है, जो एक अनुभाग अधिकारी के प्रभार में होता है। अनुभाग के अन्य अधिकारी – सहायक, क्लर्क तथा कंप्यूटर ऑपरेटर आदि होते हैं। अनुभाग को कार्यालय कहा जाता है। दो अनुभाग मिलकर शाखा का गठन करते हैं, जो अवर सचिव के प्रभार में होती है। इसी प्रकार एक प्रभाग में साधारणतया दो शाखाएँ होती हैं, जिसका प्रमुख उप-सचिव होता है। यदि विभाग का कार्य इतना अधिक है कि सचिव अकेले उसे सम्पन्न नहीं कर सकता, तो एक या उससे अधिक स्कंधों का निर्माण किया जाता है। प्रत्येक स्कंध संयुक्त सचिव के प्रभार में होता है। संगठनात्मक सोपानक्रम में सबसे ऊपर शीर्ष पर सचिव होता है, जो पूरे विभाग का प्रभारी होता है।

3.5 राज्य सचिवालय में विभागीकरण का पैटर्न

प्रत्येक सचिव साधारणयता एक से अधिक विभागों का प्रभारी होता है, इसीलिए सचिवालय विभागों की संख्या सचिवों की तुलना में अधिक होगी। प्रत्येक राज्य में सचिवालय विभागों की संख्या, स्वाभाविक रूप से, अलग-अलग होती है। यह आवश्यक नहीं कि किसी राज्य में सचिवालय विभागों की संख्या, उस राज्य की जनसंख्या के आकार के आधार से संबंधित हो। उदाहरण के लिए, वर्ष 2020 में, मिज़ोरम जैसे छोटे आकार के राज्य में 48 सचिवालय विभाग थे, जबकि गुजरात में जो आकार में बहुत बड़ा है, वहाँ सचिवालय विभागों की संख्या 25 थी। इसी प्रकार वर्ष 2020 में हरियाणा में 53 विभाग थे (Government of Haryana, Departments, https://haryana.gov.in/departments/)। इस संबंध में, हरियाणा में चयनित विभागों के विभागीकरण का एक विशिष्ट उदाहरण निम्नलिखित हैः

- गृह विभाग
- कृषि और कल्याण विभाग, हरियाणा
- उच्च शिक्षा विभाग, हरियाणा
- इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी विभाग
- वित्त विभाग, हरियाणा
- खाद्य, नागरिक आपूर्ति और उपभोक्ता मामले विभाग, हरियाणा
- हरियाणा पुलिस विभाग
- लोक निर्माण विभाग
- टाउन एंड कंट्री प्लानिंग विभाग
- महिला एवं बाल विकास विभाग
- विकास और पंचायत विभाग, हरियाणा
- आर्थिक और सांख्यिकी विश्लेषण विभाग, हरियाणा
- खाद्य एवं औषधी प्रशासन, हरियाणा
- हरियाणा राज्य कानूनी सेवा प्राधिकरण।

अधिकांशतः राज्यों में अधिकतर विभागों का सृजन कुछ कारकों के आधार पर हुआ जैसे कि कार्य का परिमाण, विशिष्ट मदों के साथ जुड़े महत्त्व, राजनैतिक शीघ्रता आदि। अंशतः, विभागों की संख्या में वृद्धि किसी राज्य में किन्हीं विशेष समस्याओं के उत्पन्न होने से हो सकती है। सचिवालय विभागों में कार्य आबंटन की काफी आलोचना की जाती है। विभागों में कार्य आबंटन असंतुलित है, क्योंकि कुछ विभागों पर कार्य का बोझ दूसरों की तुलना में अधिक होता है।

अधिकांश राज्यों में बड़ी संख्या में विभाग, कार्य की मात्रा, कुछ विषयों से जुड़े महत्त्व, राजनीतिक औचित्य आदि के आधार पर बनाए गए हैं। आंशिक रूप से, विभागों की संख्या में वृद्धि एक विशेष समस्या से उत्पन्न हो सकती है, जिसका सामना राज्यों को करना पड़ सकता है। इस संदर्भ में, द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने पाया कि प्रशासन के सभी स्तरों पर सुशासन के लिए एक छोटा और सुगठित सचिवालय,

जिसमें सभी संबद्ध कार्यकलापों और कार्यों को एक विभाग में रखा जाता है, जिसमें अधिक उत्तरदायित्व और कार्यकारी कार्य जो नीति–निर्माण और अनुवीक्षण से संबद्ध नहीं होते वे स्थानीय शासन को दिए जाने आवश्यक हैं। इस प्रकार, राज्य सरकारों में सचिवालय विभागों की संख्या को युक्तिसंगत बनाने की तत्काल आवश्यकता है (Second Administration Reforms Commission, 2009, https://www.darpg.gov.in/sites/default/files/sdadmin15.pdf, p. 28)।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी: i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थानों का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) स्वतंत्रता के पश्चात् ''सचिवालय'' शब्द का महत्व स्वतंत्रता से पहले के समय की तुलना में किस तरह से बदल गया है?

....

....

....

....

....

2) एक सचिवालय की विधायी भूमिका क्या होती है?

....

....

....

....

....

3) राज्य सचिवालय में विभागीकरण के विशिष्ट पैटर्न पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

3.6 सचिवालय विभाग एवं कार्यकारी विभाग में अंतर : असतत प्रक्रियाएँ अथवा अबाध क्रम

सचिवालय विभाग कार्यकारी विभाग से विशिष्ट होना चाहिए। सचिवालय का कार्य राजनीतिक कार्यपालक को नीति विकल्पों के चयन तक पहुँचने में सलाह देना एवं सहायता करना होता है। कार्यकारी विभागों या निदेशालयों के अध्यक्ष जिन्हें मुख्य रूप से निदेशक के नाम से जाना जाता है (यद्यपि उनके लिए अन्य नामकरण भी प्रयोग में लाए जाते हैं) वह राजनीतिक कार्यपालक द्वारा बनाई गई नीतियों को कार्यान्वित करने

के लिए ज़िम्मेदार होते हैं। इस प्रकार सचिव नीति-निर्माण में सहायता करते हैं, जबकि निदेशक की भूमिका नीति क्रियान्वित करने में निहित होती है।

प्रत्येक सचिवालय विभाग पर अनेक कार्यकारी विभागों का कार्यभार होता है। इनकी संख्या में काफी हद तक भिन्नता होती है क्योंकि कुछ विभागों के अधीन दूसरे विभागों की तुलना में काफी अधिक संख्या में प्रमुख कार्यकारी होते हैं। एक सचिवालय विभाग के अधीन छः से सात कार्यकारी विभाग होते हैं। फिर भी, यह सावधानीपूर्वक नोट करना चाहिए कि प्रत्येक सचिवालय विभाग के अधीन कार्यकारी विभाग नहीं होते। कुछ सचिवालय विभागों का कार्य केवल सलाह देने तथा नियंत्रण करने का होता है, इसलिए उनको रिपोर्ट करने वाले कार्यकारी विभाग उनके साथ जुड़े नहीं होते। इसके उदाहरण हैं – विधि एवं वित्त विभाग।

संगठनात्मक दृष्टि से, सचिवालय एवं कार्यकारी विभाग सरकार की कार्य प्रणाली में शामिल नीति-निर्माण एवं नीति कार्यान्वयन की प्रक्रियाओं से सबंधित कार्य करते हैं, दोनों को मंत्रिपरिषद् के व्यक्तित्व के विस्तार के रूप में देखा जा सकता है। प्रथम नीति-निर्माण करने वाला निकाय है, तथा दूसरा नीति कार्यान्वित करने वाला निष्पादनकारी अंग है।

सचिवालय विभाग का मुखिया सामान्यतः एक सामान्य प्रशासक होता है (जो भारतीय प्रशासनिक सेवा से होता है), तथा कार्यकारी विभाग का मुखिया एक विशेषज्ञ होता है। विशेषज्ञ (कार्यकारी विभाग का अध्यक्ष) सामान्य प्रशासक (सचिव या सचिवालय विभागाध्यक्ष) के पर्यवेक्षण में काम करता है। यह कुछ उदाहरणों से स्पष्ट किया जा सकता है। कृषि निदेशक, जो एक विशेषज्ञ है, जिसमें वह शिक्षित है तथा कृषि विज्ञान में औपचारिक उपाधि रखता है। वह सचिव, कृषि (भारतीय प्रशासनिक सेवा का एक सामान्य प्रशासक) के पर्यवेक्षण में कार्य करेगा। सचिव, कृषि, सचिवालय स्तर पर कृषि विभाग का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि कृषि निदेशक कृषि विभाग का कार्यकारी स्तर पर प्रतिनिधित्व करता है। निदेशक, कृषि विभाग का कार्यकारी प्रमुख होता है। इसी तरह सचिवालय में गृह विभाग में पुलिस महानिदेशक विभाग का कार्यकारी प्रमुख होता है। इसी प्रकार का संबंध शिक्षा सचिव तथा शिक्षा निदेशक, उद्योग सचिव और उद्योग निदेशक, समाज कल्याण सचिव एवं समाज कल्याण निदेशक के बीच होता है।

हमने सचिवालय विभाग तथा निदेशालय की भूमिकाओं के बीच यह कहकर भेद किया है कि पहले का संबध नीति-निर्धारण से है और दूसरे का नीति कार्यान्वयन (या नीति के लागू करने या नीति के प्रशासन) से है। इसलिए यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या नीति-निर्माण और प्रशासन दो असतत प्रक्रियाएँ हैं? उत्तर है कि अवधारणा के रूप में दोनों असतत हैं। इन दोनों को स्पष्ट रूप से अलग-अलग तथ्यों के रूप में पहचानना तथा उनकी परिभाषा देना संभव है। परन्तु व्यवहार के स्तर पर दोनों घनिष्ठ रूप से एक-दूसरे से जुड़े हुए है। यहाँ तक कि दोनों में भेद करना कठिन होता जाता है। अतः यह कहना कठिन है कि नीति का कहाँ अंत होता है, और प्रशासन का कहाँ प्रारंभ होता है।

नीति-निर्माण का संबंध राजनीतिक विकल्पों से है, जिसमें व्यापक मूल्यों के प्रश्न होते हैं, जबकि प्रशासन का संबध नीति संबंधी विशेष निर्णयों से उत्पन्न कार्यक्रमों के कार्यान्वयन से होता है। अतः प्रशासन में कार्यान्वयन के लिए संगठनात्मक सरंचना का निर्माण, संगठनों में कार्मिकों की भर्ती, समन्वय करना, निदेशन, नियंत्रण तथा कार्मिकों को अभिप्रेरित करना आता है।

यह विचार कि दोनों एक-दूसरे से अलग है, परम्परावादी है, जिसकी नींव वुडरो विल्सन द्वारा 1887 में लिखे लेख "द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन" पर रखी हुई है। उसके अनुसार राजनीति विधान–मंडल तथा अन्य नीति-निर्माण करने वाले समूहों (उदाहरणार्थ, राजनीतिक दल, मंत्रिमंडल आदि) का कार्य है। प्रशासन प्रशासकों का क्षेत्र है, जो कानून द्वारा निर्धारित नीति को लागू करते हैं। विभेद का परिप्रेक्ष्य 1880 के लगभग संयुक्त राज्य अमेरिका में सिविल सेवा सुधार आंदोलन था, जिसका उद्देश्य सिविल सेवा मे राजनीतिक हस्तक्षेप को समाप्त करना था। यह तर्क दिया गया कि प्रशासनिक कुशलता के हित में सिविल सेवा में भर्ती योग्यता के आधार पर होनी चाहिए न कि दलगत राजनीति के आधार पर। दूसरे शब्दों में, राजनीति को प्रशासन से बाहर रखना चाहिए। मैक्स वैबर ने भी प्रशासन से नीति को अलग रखने के विचार का यह कहकर समर्थन किया कि राजनीतिज्ञों के गुण लोकसेवकों के गुणों से बिल्कुल विपरीत होते हैं। निष्पक्ष रहना या निर्णय लेना, निर्धारित नीतियों के लिए व्यक्तिगत उत्तरदायित्व लेना तथा राजनीतिक भूमिका की परिवर्तनशील प्रकृति को स्वीकार करना राजनीति का सार है। जबकि प्रशासन का सार है– राजनीतिक सत्ता के आदेश को वफादारी से कार्यान्वित करना, भले ही प्रशासक को वह आदेश ग़लत लगे। प्रशासक राजनीतिक रूप से तटस्थ होता है। वह केवल वही कार्य करता है, जिसे उसे करने के लिए कहा जाता है और कोई व्यक्तिगत उत्तरदायित्व नहीं लेता।

फिर भी, सरकारी क्रियाकलापों की जटिलताओं के कारण आज प्रशासकों को नीति-निर्माण या राजनीतिक निर्णयों के कार्यों में शामिल होना पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप, व्यवहार में नीति और प्रशासन को अलग करने वाली सीमा रेखा खींचना या यह कहना कि कहाँ नीति समाप्त होती है, और प्रशासन प्रांरभ होता है, कठिन है। यह निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट हो जाएगा।

प्रशासनिक विशेषज्ञता के स्रोत

ऐसे कई स्रोत हैं जिनसे आधुनिक प्रशासकों ने 'विशेषज्ञता' प्राप्त की है, जिसकी नीति-निर्धारण के लिए राजनीतिज्ञों को आवश्यकता होती है, चूँकि प्रशासक (एक जीवन-वृत्ति लोक सेवक होते हैं) कार्यालय में लम्बी अवधि तक बने रहते हैं, जबकि राजनीतिज्ञ चुनावों के साथ आते-जाते रहते हैं। अतः प्रशासकों को समस्याओं के प्रति निरतंर ध्यान देने के अवसर मिलते हैं। दिन-रात इन्हीं समस्याओं को सुलझाने के अनुभव से उन्हें बहुत महत्वपूर्ण व्यावहारिक ज्ञान की प्राप्ति होती है। यह ज्ञान रिकार्ड में सुरक्षित रखा जाता है, जिसे लोक सेवकों की नई पीढ़ी को प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से प्रदान किया जाता है। कार्यालय में निरंतरता के साथ-साथ यह व्यावहारिक ज्ञान तथा अनुभव का एकाधिकार उन्हें नीति-निर्माण में राजनीतिज्ञों के ऊपर निर्णायक महत्व प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, प्रशासकों के पास नीति के विशेष क्षेत्रों से संबंधित बुद्धिमत्ता, तथ्य, आँकड़े तथा सूचना होती है। राजनीतिज्ञों को नीति-निर्माण के लिए इन आँकड़ों की आवश्यकता होती है। प्रशासनिक विशेषज्ञता प्रमुख रूप से इस सच्चाई में भी है कि आजकल सरकारें बड़े पैमाने पर व्यावसायिक विशेषज्ञों (डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री इत्यादि) की भर्ती करती हैं। उनके पास वह तकनीकी ज्ञान होता है, जो नीति-निर्माण में एक महत्वपूर्ण तत्व है। योग्यता प्रणाली के आने से भी प्रशासनिक विशेषज्ञता का निर्माण करने में मदद मिली है, जिसने अधिक प्रतिभाशाली लोगों को सिविल सेवाओं की ओर आकर्षित किया है तथा सिविल सेवाओं पर राजनीतिज्ञों की पकड़ ढीली पड़ गई।

नीति-निर्माण में प्रशासकों की भूमिका

सरकार के कार्यों में वृद्धि तथा प्रशासन की बढ़ती जटिलता के साथ-साथ सिविल सेवा में विशेषज्ञता के बढ़ने से नीति-निर्माण के कार्य में राजनीतिज्ञों की प्रशासकों पर निर्भरता बढ़ती जा रही है। इसका आभास हमें निम्नलिखित से मिलता हैः

i) नीति-निर्माण की क्रिया अधिकारी वर्ग द्वारा दिए गए तथ्यों, अंकों, सूचना तथा आँकड़ों के आधार पर की जाती है। दूसरे शब्दों में, राजनीतिज्ञ अपनी बनाई गई नीति की विश्वसनीयता को बढ़ाने के लिए प्रशासकों द्वारा प्रदान की गई आँकड़ों की सहायता पर निर्भर करते हैं।

ii) लोक सेवक अपने लम्बे प्रशासनिक अनुभव के आधार पर विचाराधीन विभिन्न नीतियों के चयन में प्रशासनिक, तकनीकी तथा आर्थिक व्यावहारिकता के विषय में राजनीतिज्ञों को सलाह देते हैं।

iii) लोक सेवक विधेयकों के प्रारूप तैयार करते हैं, जो मंत्रिमंडल द्वारा स्वीकृत होने के पश्चात् विधान–मंडल के सामने विचारार्थ पेश किए जाते हैं। अन्य शब्दों मे, प्रशासक लोक नीति-निर्धारण की प्रक्रिया शुरू करते हैं, जो अंत में विधान–मंडल द्वारा बनाए गए कानून का रूप धारण करती है।

iv) प्रशासक प्रशासनिक विवेक का प्रयोग करके नीति-निर्माण करते हैं। जब एक नीति के ढाँचे के अंदर, प्रशासक को विभिन्न वैकल्पिक उपायों के बीच चुनाव करने के लिए कहा जाता है तो उसे प्रशासनिक स्वविवेक का प्रयोग करने को कहते हैं। इस अर्थ में प्रशासकों को पूरक कानून-निर्माता भी कहा जाता है, क्योकि यहाँ नीति की वास्तविक विषय सारणी पूर्ण रूप से अधिकारी वर्ग द्वारा निर्धारण का विषय बन जाती है। प्रशासक वास्तव में, यह निर्णय करता है कि किसी मामले में राष्ट्र की सत्ता का प्रयोग कैसे होगा। आधुनिक समय में, बनाए जाने वाले विधानों की संख्या में निरंतर वृद्धि के कारण प्रशासनिक विवेक में बहुत अधिक बढ़ोतरी हुई है। वर्तमान परिस्थितियों में विधान–मंडल कानून के प्रमुख ढाँचे तक स्वयं को सीमित रखता है, तथा उसके विवरण प्रशासनिक एजेंसियों द्वारा भरे जाने के लिए छोड़ देता है।

कानूनों की बढ़ती विभिन्नता तथा जटिलता के कारण विधान–मंडल की क्षमता और भी सीमित हो गई है। निश्चित विधेयकों के विस्तार में जाने के लिए विधायकों के पास न तो तकनीकी ज्ञान होता है और न ही प्रशिक्षण। इसके कारण प्रशासनिक विवेक और भी आवश्यक हो जाता है, और किसी तरह यदि विधान–मंडल प्रत्येक कानून के विवरण तक जाने की सोचता है तो यह विधायकों के अन्य महत्वपूर्ण कार्यों एवं कर्त्तव्यों की कीमत पर होगा और इसलिए यह एक अवांछनीय बात होगी। इससे तथा इस आश्वासनों या विश्वास ने कि प्रशासन को अपने प्रति उत्तरदायी रखने के आवश्यक साधन उसके पास हैं, विधान–मंडल को अपने द्वारा बनाए जाने वाले कानूनों की अधिक गहराई में न जाने में प्रोत्साहित किया है। एक अन्य कारण से भी कानूनों का विस्तृत रूप तैयार करना संभव नहीं है। अंतिम रूप में, नीति को क्षेत्र में लागू किया जाना होता है, जहाँ नीति-निष्पादन के समय प्रशासक के सामने अनेक चौंकाने वाली परिस्थितियाँ आती हैं। विधान बनाते समय एक कानून बनाने वाली एजेंसी के लिए उन विभिन्न परिस्थितियों का जो क्षेत्र में उत्पन्न हो सकती है, स्पष्ट अनुमान लगाना संभव नहीं है। पुनः, इस कारण से, नीति-निर्माता अपने बनाए गए विधेयक में केवल प्रमुख रूपरेखा ही प्रदान कर पाते हैं।

3.7 मुख्य सचिव

प्रत्येक राज्य में एक मुख्य सचिव होता है। यह राज्य प्रशासन का महत्त्वपूर्ण किंगपिन अधिकारी होता है, जिसका नियंत्रण सभी सचिवालय विभागों तक फैला हुआ है।

3.7.1 मुख्य सचिव का पद

वह केवल समपदस्थ अधिकारियों में प्रथम ही नहीं है, बल्कि वास्तव में वह सचिवों का प्रमुख है। मुख्य सचिव की पूर्व-प्रतिष्ठित स्थिति स्पष्ट रूप से राज्य के प्रशासनिक ढाँचे में उसकी विभिन्न भूमिकाओं में परिलक्षित होती है।

मुख्य सचिव मुख्यमंत्री का प्रधान सलाहकार, तथा राज्य मंत्रिमंडल का सचिव होता है। वह सामान्य प्रशासन विभाग का प्रमुख होता है, जिसका राजनीतिक प्रमुख स्वयं मुख्यमंत्री होता है। मुख्य सचिव, राज्य में लोक सेवाओं का भी प्रमुख होता है। वह राज्य सरकार तथा केन्द्रीय एवं अन्य राज्य सरकारों के बीच संचार का प्रमुख माध्यम है। मुख्य सचिव राज्य सरकार का मुख्य प्रवक्ता तथा जनसंपर्क अधिकारी होता है, तथा राज्य की प्रशासनिक प्रणाली को नेतृत्व प्रदान करने के लिए देखा जाता है।

मुख्य सचिव का कार्यालय राज्यों में पाई जाने वाली अनोखी संस्था है। उसके बराबर महत्व वाली संस्था पूरे राष्ट्र के प्रशासन में नही है। उदाहरण के लिए, केन्द्रीय सरकार में मुख्य सचिव के जैसा कार्यालय नहीं है। राज्य सरकार के संदर्भ में वह जो कार्य करता है, उनको केन्द्रीय स्तर पर लगभग समान स्तर वाले तीन उच्चस्तरीय अधिकारियों (अर्थात् कैबिनेट सचिव, गृह सचिव तथा वित्त सचिव) द्वारा सम्पन्न किया जाता है। यह मुख्य सचिव के कर्तव्यों तथा शक्तियों के व्यापक क्षेत्र का स्पष्ट परिचायक है।

मुख्य सचिव के पद से जुडी स्थिति की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसे सावधि प्रणाली से बाहर रखा गया है। मुख्य सचिव आमतौर पर मुख्य सचिव के रूप में सेवानिवृत्त होता है या फिर इस पद से हटकर केन्द्रीय सरकार में और अधिक महत्त्वपूर्ण पद पर जाता है।

मुख्य सचिव की स्थिति पर विचार करते हुए एक और तथ्य पर भी ध्यान देना आवश्यक है। यह आवश्यक नहीं कि इस कार्यालय का प्रभारी राज्य का वरिष्ठतम लोक सेवक हो। यह स्थिति किसी भी दर पर 1973 तक थी जब, उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश में मुख्य सचिव राजस्व बोर्ड के सदस्यों से श्रेणी तथा वरिष्ठता में कनिष्ठ थे। परन्तु 1973 से मुख्य सचिव के कार्यालय का मानकीकरण कर दिया गया और उसके बाद से सचिव का रैंक भारत सरकार के सचिव के बराबर है, तथा उसके बराबर ही वेतन प्राप्त करता है।

एक राज्य में राष्ट्रपति शासन मुख्य सचिव के कार्यालय को किस प्रकार प्रभावित करता है? जहाँ राष्ट्रपति शासन के दौरान, केन्द्र सलाहकारों की नियुक्ति नहीं करता वहाँ मुख्य सचिव मुख्यमंत्री की शक्तियों से युक्त होता है। परन्तु जब केन्द्रीय सलाहकारों की नियुक्ति हो जाती है, तो मुख्य सचिव को अपनी प्रशासनिक क्षमता में ही कार्य करना होता है क्योंकि सलाहकार वरिष्ठ सिविल सेवकों के पदों (राज्य के मुख्य सचिव से वरिष्ठ पदों) से आने के कारण मुख्य सचिव से वरिष्ठ होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप एक पदानुक्रम परवर्ती बन जाता है।

3.7.2 मुख्य सचिव के कार्य

मुख्य सचिव के प्रमुख कार्य नीचे सूचीबद्ध किए गए हैंः

- वह मुख्यमंत्री का प्रमुख सलाहकार होता है, जिसके कारण वह अन्य कार्यों के साथ मंत्रियों द्वारा पेश किए गए प्रस्तावों पर विस्तृत प्रशासनिक टिप्पणियाँ तैयार करता है तथा उन्हें कार्रवाई की समन्वय योजना के रूप में समन्वित करता है।

- मुख्य सचिव मंत्रिमंडल का सचिव होता है। वह मंत्रिमंडल की बैठकों की कार्यसूची तैयार करता है, बैठकों की व्यवस्था करता है, इन बैठकों के रिकार्ड रखता है, मंत्रिमंडल के निर्णयों पर कार्रवाई सुनिश्चित करता है तथा मंत्रिमंडल समितियों की सहायता करता है।

- मुख्य सचिव राज्य सिविल सेवाओं का प्रमुख होता है। इस क्षमता में, वह लोक सेवकों की तैनाती और स्थानांतरण पर निर्णय लेता है।

- मंत्रिपरिषद् के सलाहकार तथा प्रशासनिक मशीनरी के प्रमुख के रूप में अद्वितीय स्थिति के कारण मुख्य सचिव राज्य सचिवालय विभागों का समन्वयक प्रमुख होता है। वह विभिन्न विभागों के बीच सहयोग तथा समन्वय को सुरक्षित करने के लिए कदम उठाता है। इस उद्देश्य के लिए, वह सचिवालय तथा अन्य स्तरों पर बहुत सी बैठकें आयोजित करता है और उनमें उपस्थित रहता है। यह बैठकें विभिन्न एजेंसियों का सहयोग प्राप्त करने तथा प्रभावी समन्वय हासिल करने के लिए एक शक्तिशाली यंत्र के रूप में कार्य करती हैं।

- सचिवों के प्रमुख के रूप में मुख्य सचिव कई समितियों की अध्यक्षता करता है और बहुत सी अन्य समितियों का सदस्य होता है। इसके अतिरिक्त, वह उन सभी मामलों की देखभाल करने वाला होता है, जो अन्य सचिवों के अधिकार क्षेत्र में नहीं आते। इस अर्थ में मुख्य सचिव एक शेष लिगेटी/रिक्थी है।

- मुख्य सचिव उस आंचलिक परिषद् का नियमित आवर्तन (रोटेशन) से उपाध्यक्ष होता है, जिस विशेष राज्य का वह सदस्य है।

- वह स्थान आबंटन के मसलों सहित सचिवालय भवनों पर नियंत्रण रखता है। इसके अतिरिक्त, वह केन्द्रीय रिकार्ड शाखा, सचिवालय लाइब्रेरी, संरक्षण और निगरानी तथा स्टाफ सुरक्षा पर भी नियंत्रण रखता है। मंत्रियों से सम्बद्ध स्टाफ पर भी उसका नियंत्रण होता है।

- संकट के समय, मुख्य सचिव राज्य के तंत्रिका केन्द्र के रूप में कार्य करता है। वह राहत कार्यो में तेज़ी लाने के लिए सम्बद्ध एजेंसिजों को मार्गदर्शन तथा नेतृत्व प्रदान करता है। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि सूखा, बाढ़, साम्प्रदायिक दंगों आदि के समय राहत देने से जुड़ी सभी संबद्ध एजेंसियों तथा अधिकारियों के लिए वह सरकार का प्रतिनिधि होता है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि बहुत से कार्मिक मामले तथा अन्य बहुत से सूक्ष्म तथा महत्वहीन प्रशासनिक विवरण, मुख्य सचिव का बहुत समय ले लेते हैं। प्रशासनिक सुधार आयोग को मुख्य सचिव के ऊपर छोटे-छोटे मसलों के बोझ के विषय में दी गई महाराष्ट्र पुनर्गठन आयोग (1962-68) की निम्नलिखित टिप्पणी से सहमत होना पड़ा। यह दुर्भाग्यपूर्ण लगता है कि राज्य के सर्वोच्च अधिकारी को

नियुक्तियों, पदोन्नतियों, स्थनांतरणों एवं छुट्टियों आदि के राजपत्रित अधिसूचना पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं, और यह भी कि उसे प्रोटोकॉल, पासपोर्ट आदि पर समय खर्च करना पड़ता है। इस स्थिति को सुधारने के लिए प्रशासनिक सुधार आयोग ने सिफारिश की थी कि यह अधिकारी नियमित कार्य न करे तथा उसे उचित स्टॉफ सहायता भी प्रदान की जाए। केवल इसी से निर्णयों का तेज़ी के साथ कार्यान्वयन तथा राज्य सरकार के नीतियों व कार्यक्रमों में प्रभावी समन्वय सुनिश्चित होगा।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थानों का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) सचिवालय तथा कार्यकारी विभागों के मुख्य अंतर की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

2) प्रशासकों की नीति-निर्माण संबंधी भूमिका का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

3) मुख्य सचिव के मुख्य कार्य क्या हैं?

....

....

....

....

....

....

3.8 निष्कर्ष

सचिवालय शब्द से तात्पर्य विभागों के परिसर से है जिनके अध्यक्ष, राजनीतिक स्तर पर मंत्री होते हैं तथा प्रशासनिक स्तर पर सचिव होते हैं। सचिव मंत्रियों को नीति-निर्माण तथा उनकी विधायी कर्त्तव्यों में सहायता प्रदान करते हैं। संगठनात्मक तथा

कार्यात्मक दृष्टि से कार्यकारी विभागों के अध्यक्ष एक अलग और विशिष्ट प्रशासनिक इकाइयाँ हैं, जो सचिवालय विभागों के अधीनस्थ होती हैं। अधिकतर मामलों में, कार्यकारी विभागों को निदेशालय का नाम दिया जाता है क्योंकि उनके अध्यक्ष अधिकतर निदेशक के रूप में जाने जाते हैं। निदेशालय नीति को कार्यान्वित करते हैं। प्रत्येक सचिवालय विभाग आमतौर पर बहुत से निदेशालयों का प्रभारी होता है।

नीति तथा प्रशासन यद्यपि अवधारणा के रूप में एक दूसरे से भिन्न श्रेणियाँ हैं, जो आंतरिक रूप से परस्पर जुड़ी हुई हैं। ये एक अबाध क्रम है। यह कहना कठिन है कि कहाँ नीति का अंत और प्रशासन का प्रारंभ होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि प्रशासक पूरक नीति-निर्माताओं के रूप में कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त निति-निर्माण के क्षेत्र में, बहुत बड़ी भूमिका निभाते हैं।

राज्य के प्रशासनिक गठन के प्रमुख के रूप में, मुख्य सचिव महत्वपूर्ण नेतृत्व तथा समन्वय संबंधी कार्य सम्पन्न करता है। यह अधिकारी राज्य सचिवालय का तंत्रिका केन्द्र है। इस इकाई ने राज्य प्रशासन के इन सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला है।

3.9 शब्दावली

शेष रिक्थी के रूप में मुख्य सचिव : जो मामले किसी अन्य सचिवों के अधिकार क्षेत्र में नहीं आते हैं, उन्हें मुख्य सचिव के पास भेज दिया जाता है।

सूत्र तथा स्टाफ : इससे अभिप्राय : प्रधानतः नीति के कार्यान्वयन में, और मुख्य रूप से मुख्य कार्यकारी को सलाह देने तथा सहायता देने वाले अभिकरणों एवं व्यक्तियों के बीच विभाजन से है। जहाँ तक सूत्र अभिकरण कार्यपालन या कार्यान्वयन संबंधी है। स्टाफ अभिकरण, मुख्य कार्यकारी को सहायता करते हैं, सूत्र अभिकरण नीति लागू करने में मदद करते हैं। मोटे तौर पर, निदेशालय एक सूत्र अभिकरण है तथा सचिवालय एक स्टाफ अभिकरण है।

विभाग : शाब्दिक अर्थ में विभाग का अर्थ है, एक बड़े सम्पूर्ण भाग का एक हिस्सा। कभी-कभी इसका प्रयोग प्रशासनिक संरचना से अलग किसी चीज के हिस्से के लिए भी होता है। परन्तु वर्तमान संदर्भ में, विभाग की अवधारणा का अर्थ सबसे बड़े खंडों से है जो मुख्य कार्यकारी के अधीन होते हैं। इस प्रकार वे मुख्य कार्यकारी के नीचे सर्वोच्च तथा सबसे बड़े संगठनात्मक निकाय हैं।

3.10 संदर्भ लेख

Arora, R.K. & Goyal, R. (2013). *Indian Public Administration: Institutions and Issues.* New Delhi, India: New Age International Publishers.

Avasthi, A. (1980). *Central Administration*. New Delhi, India: McGraw Hill.

Government of Haryana. *Departments*. Retrieved from https://haryana.gov.in/departments/

Government of India. (2009). Second Administrative Reforms Commission (15^{th} Report), *State and District Administration*. Retrieved from https://www.darpg.gov.in/sites/default/files/sdadmin15.pdf

Maheshwari, S.R. (2001). *Indian Administration*. New Delhi, India: Orient Blackswan Private Limited.

Maheshwari, S.R. (1979). *State Governments in India*. Delhi, India: Macmillan.

The Constitution of India. Retrieved from https://www.india.gov.in/my-government/constitution-india/constitution-india-full-text

3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में निम्नखिलित शामिल होना चाहिएः
   - भारत में स्वतंत्रता से पहले सचिवालय का उद्भव हुआ, जब इसे सचिव का कार्यालय कहा जाता था।
   - स्वतंत्रता के बाद मंत्रालय के हाथों में सत्ता आ गई, तथा जनता के द्वारा चुने गए मंत्रियों को महत्व दिया जाने लगा।
   - बदली हुई राजनीतिक स्थिति में, यहाँ सचिव मंत्री का प्रधान सलाहकार होता है और दोनों साथ-साथ काम करते हैं, तथा सचिवालय विभागों के समूह का नाम है, जिनके राजनीतिक अध्यक्ष मंत्री तथा प्रशासनिक अध्यक्ष सचिव होते हैं।
2) आपके उत्तर में निम्निलिखित शामिल होना चाहिएः
   - सचिवालय विधान–मंडल में पेश किए जाने वाले विधेयकों के प्रारूप तैयार करने में मंत्रियों की सहायता करता है।
   - विधान–मंडल में प्रश्नों के उत्तर देने के लिए सूचना प्रदान करता है।
   - विधायी समितियों द्वारा वांछित सूचना एकत्र करता है।
3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - भाग 3.5 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर मे निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - नीति-निर्माण सचिवालय विभाग का कार्य है, जबकि नीति को लागू करना कार्यकारी विभाग का कार्य है।

- सचिवालय विभाग का अध्यक्ष एक सामान्य प्रशासक होता है, और कार्यकारी विभाग का अध्यक्ष विशेषज्ञ होता है।
- सचिवालय विभाग के अध्यक्ष के पर्यवेक्षण के अधीन विशेषज्ञ या कार्यकारी अध्यक्ष का कामकाज।

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- प्रशासक मसौदा विधायन तैयार करते हैं।
- वे आँकड़े प्रदान करते हैं।
- वे राजनीतिज्ञों को सलाह देते हैं।
- वे प्रशासनिक स्वविवेक का प्रयोग करके नीति बनाते हैं।

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- भाग 3.7 (3.7.2) देखिए।

इकाई 4 सचिवालय और निदेशालय के बीच संबंध के पैटर्न*

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 निदेशालय : अर्थ एवं संगठन

4.3 कार्यकारी एजेंसियों के प्रकार

4.4 राजस्व बोर्ड

4.5 सचिवालय-निदेशालय के बीच संबंध को आकार देने वाले कारक

4.6 सचिवालय और निदेशालयों के समर्थन का आधार

4.7 सचिवालय और निदेशालयों के बीच संबंधों के उभरते पैटर्न

4.7.1 यथास्थितिवादी दृष्टिकोण (The Status-quo Approach)

4.7.2 दूरी को कम करने वाला दृष्टिकोण (The Bridging the gulf Approach)

4.7.3 निर्विलय का दृष्टिकोण (The De-amalgamation Approach)

4.8 निष्कर्ष

4.9 शब्दावली

4.10 संदर्भ लेख

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आपः

- निदेशालय का अर्थ, महत्व तथा भूमिका की चर्चा कर सकेंगे;
- राज्य तथा उप-राज्य स्तर पर निदेशालयों के महत्व की व्याख्या कर सकेंगे;
- राज्य स्तर की राजस्व एजेंसी के रूप में राजस्व बोर्ड की स्थिति तथा महत्व को उजागर कर सकेंगे;
- सचिवालय-निदेशालयों के बीच संबंध को स्वरूप देने वाले कारकों का वर्णन कर सकेंगे, तथा इनकी शक्तियों और कमज़ोरियों को पहचान सकेंगे; और
- सचिवालय-निदेशालय के बीच संबंधों के वैकल्पिक प्रारूप बनाने के लिए प्रयोग में लाए जा सकने वाले संभव दृष्टिकोणों की जाँच कर सकेंगे।

*यह इकाई बी.पी.ए.ई.-102, भारतीय प्रशासन, खंड-3, इकाई-14 का अनुकूलित रूप है।

4.1 प्रस्तावना

यह इकाई, राज्य स्तर पर काम कर रही विभिन्न प्रकार की एजेंसियों पर चर्चा करती है। यहाँ पर, राज्य स्तर की दो एजेंसियों (अर्थात् निदेशालयों तथा राजस्व बोर्ड) की चर्चा की गई है, और निदेशालय-सचिवालय संबंध पर भी विचार किया गया है। इकाई अनिवार्य रूप से, निम्नलिखित क्षेत्रीय स्तर पर शब्दों/अवधारणाओं/संस्थाओं/कारकों को उजागर करती है:

निदेशालय

निदेशालय राज्य स्तर पर कार्यकारी का कार्यालय है। ये राज्य सचिवालय द्वारा निर्मित नीतियों को कार्यान्वित करते हैं। "निदेशालय" तथा "कार्यकारी" शब्द कई बार एक दूसरे के लिए उपयोग में लाए जाते हैं। यद्यपि निदेशालय एक प्रकार का कार्यालय कार्यकारी है। इस बात पर, इस इकाई में बाद में विचार किया जाएगा। निदेशालय जैसा कि हम बाद में देखेंगे, दो भागों में बाँटे जाते हैं– सम्बद्ध कार्यालय और अधीनस्थ कार्यालय। इस वर्गीकरण से नीति-कार्यान्वयन में इन दोनों की भूमिका की शैक्षिक समझ आसान हो जाती है।

क्षेत्रीय प्रशासन

निदेशालयों का संबंध नीति को लागू करने से है, और नीति कार्यान्वयन आवश्यक रूप से क्षेत्र (अर्थात् जिला, खंड तथा गाँव) स्तर पर होता है, इसलिए निदेशालयों द्वारा क्षेत्रीय क्रियाकलापों को समन्वित करने तथा निरीक्षण करने के लिए बीच के स्तर पर प्रशासनिक एजेंसियों के निर्माण की आवश्यकता उत्पन्न हुई। राज्य मुख्यालय (निदेशालय) तथा जिले के बीच के स्तर पर यही मध्यवर्ती स्तर पर प्रशासनिक गठन क्षेत्रीय प्रशासन कहलाता है। क्षेत्रीय स्तर की एजेंसियों (और जिला स्तर तथा उसके निचले स्तर पर) को राज्य की उप-क्षेत्रीय एजेंसियाँ कहा जा सकता है। ऐसा इसलिए कहा जाता है क्योंकि वे राज्य मुख्यालय के निचले स्तरों पर कार्य करती हैं। प्रत्येक क्षेत्र में कुछ जिले शामिल होते हैं। इस प्रकार एक क्षेत्र राज्य से निचली तथा जिला स्तर से ऊपर की क्षेत्रीय इकाई है। नियमानुसार, यद्यपि हमेशा ऐसा नहीं होता, राज्य मुख्यालय के कार्यकारी विभागों के प्रादेशिक संगठन होते हैं। इन एजेंसियों के नाम अलग-अलग विभागों में अलग-अलग होते हैं।

राज्य मुख्यालय स्तर पर, राजस्व प्रशासन के कार्य एक सरकारी विभाग को न सौंप कर राजस्व बोर्ड रूपी एक स्वायत्त एजेंसी को सौंपा जाता है।

मण्डलीय आयुक्त

मण्डलीय आयुक्त कार्यालय, राज्यों के राजस्व कार्यों के संबंध में क्षेत्रीय एजेंसी है। राज्य मुख्यालय पर राजस्व प्रशासन का कार्य कुछ राज्यों में, एक सरकारी विभाग को नहीं बल्कि एक स्वायत्त एजेंसी को सौंपा जाता है, जिसे राजस्व बोर्ड कहा जाता है। इसलिए मण्डलीय आयुक्त, राजस्व मंडल के क्षेत्रीय स्तर का प्रतिनिधि है।

राजस्व बोर्ड

राजस्व बोर्ड एक बहुत महत्वपूर्ण प्रशासनिक खोज है। इस संस्था का निर्माण बहुत समय पहले 1786 में किया गया था । इसका उद्देश्य राज्य सरकार को राजस्व प्रशासन के क्षेत्र में अधिक विस्तृत कार्य से छुटकारा दिलाना था। तब से, भारत में कुछ राज्यों में राजस्व बोर्डों की स्थापना की गई। जहाँ ये बोर्ड स्थापित नहीं किए

गए, वहाँ उनके समकक्ष संगठन के रूप में वित्त आयुक्त अथवा राजस्व ट्रिब्यूनल की स्थापना की गई थी।

जैसा कि आप पहले ही पढ़ चुकें हैं, नीति-निर्धारक के रूप में सचिवालय तथा नीति को कार्यान्वित करने वाली एजेंसी के रूप में निदेशालय, सरकारी मशीनरी के दो पहिए हैं। जब तक उन दोनों में निश्चित सीमा तक समन्वय तथा सहयोग स्थापित नहीं होता, तब तक इस मशीन की कार्यक्षमता में बाधा रहेगी।

सैद्धान्तिक रूप में, दोनों की अपनी-अपनी निश्चित शक्तियाँ, क्षेत्राधिकार तथा भूमिकाएँ हैं, परन्तु व्यवहार में बहुत से कारक इन सीमाओं को धूमिल कर देते हैं, जिससे दोनों के बीच मनमुटाव तथा आपसी वैमनस्य या कड़वाहट पैदा होती है और अंत में इससे सरकार का कार्य-निष्पादन प्रभावित होता है।

सचिवालय और निदेशालय के बीच संबंधों का प्रश्न महत्वपूर्ण है, परन्तु इसका महत्व उस परिस्थिति में और भी अधिक हो जाता है जब यह संबंध अपने मूल रास्ते से हट जाता है जैसा कि भारत में हुआ है, और वास्तव में जैसा किसी भी गतिशील परिस्थिति में होगा। दोनों के बीच संबंधों में कुछ मनमुटाव की सी प्रवृत्ति क्यों है? क्या सचिवालय और ग़ैर-सचिवालय संगठनों के बीच संबंधों के पुनर्निर्माण के लिए कुछ वैकल्पिक प्रारूप सुझाए जा सकते हैं? इस इकाई में, इन प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास किया गया है।

4.2 निदेशालय : अर्थ एवं संगठन

जैसे कि पिछली इकाई में बताया गया है कि राज्य सरकार की नीतियों और उद्देश्यों को निर्धारित करना सचिवालय का कार्य है जबकि लक्ष्यों को प्राप्त करने तथा नीतियों को कार्यान्वित करने का दायित्व कार्यकारी विभागों के प्रमुखों का है। नियमानुसार, कार्यकारी एजेंसी सचिवालय के बाहर होती है तथा एक भिन्न संगठनात्मक सत्ता होती है। एक कार्यकारी एजेंसी को पहचानने के लिए सामान्यतः निदेशालय का नाम दिया जाता है। अधिकतर मामलों में, कार्यकारी एजेंसियों के प्रमुखों को निदेशकों के नाम से जाना जाता है, जैसे कृषि निदेशक, पशुपालन निदेशक, शिक्षा निदेशक, समाज कल्याण निदेशक, सार्वजनिक स्वास्थ्य निदेशक, नगर नियोजन निदेशक आदि।

लेकिन कार्यकारी विभागों के प्रमुखों के लिए अन्य नामों का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे पुलिस विभाग के कार्यकारी प्रमुख को पुलिस महानिरीक्षक/महानिदेशक, जेल विभाग के प्रमुख को जेल महानिरीक्षक, सहकारी विभाग के प्रमुख को सहकारी विभाग का रजिस्ट्रार, सिंचाई विभाग में मुख्य अभियन्ता (सिंचाई), छपाई तथा लेखन सामग्री विभाग के प्रमुख को नियंत्रक आदि कहा जाता है। अन्य शब्दों में, यद्यपि अधिकतर विभागों में कार्यकारी विभागों के प्रमुखों को निदेशक कहा जाता है, कुछ विभागों में वे अन्य नामों से भी जाने जाते हैं।

राज्य तथा उप-क्षेत्रीय स्तर पर निदेशालयों का गठन

राज्य स्तर के अतिरिक्त, कार्यकारी एजेंसियाँ उप-क्षेत्रीय स्तर पर भी कार्य करती हैं। यह काफी स्वाभाविक है, क्योंकि जहाँ नीति एक केन्द्र (राज्य मुख्यालय में सचिवालय तथा निदेशालय आते हैं) पर बनती है; और इसका कार्यान्वयन क्षेत्र में होता है। इसलिए निदेशालयों को निम्नतम स्तर या ग्राम स्तर तक पहुँचने या जाने का प्रयास करना चाहिए। जब यह किया जाता है तो क्षेत्रीय स्तर पर छोटे निदेशालय उत्पन्न होते हैं। राज्य स्तर का कार्यकारी विभाग, क्षेत्रों में अपने कार्यालय स्थापित करता है। साधारण शब्दों में, क्षेत्र राज्य स्तर से नीचे तथा जिला स्तर से ऊपर की एक क्षेत्रीय

या भौगोलिक इकाई है। जब यह प्रक्रिया और नीचे की ओर जाती है तो जिला, खंड तथा गाँव के स्तर पर निदेशालय की क्षेत्रीय इकाइयाँ उभरती हैं।

राज्य स्तर पर, प्रमुख साधारणतया (पूर्ण) निदेशक होता है, जिसकी सहायता के लिए अन्य कमतर निदेशक– अपर निदेशक, वरिष्ठ संयुक्त निदेशक, संयुक्त निदेशक, उप निदेशक, सहायक निदेशक तथा अन्य अधिकारियों का समूह होता है। मुख्यालय में काम के अधिक या कम होने के आधार पर, पद सोपान की श्रृंखला भी कम या अधिक हो सकती है। कार्यकारी विभाग के क्षेत्रीय संगठन का प्रमुख एक निदेशक से निचली श्रेणी का अधिकारी होता है। इस मामले में, एक संयुक्त निदेशक प्रमुख होता है। और यहाँ तक कि इससे निचले स्तर का वरिष्ठ संयुक्त निदेशक या इससे निचले स्तर का अधिकारी भी हो सकता है। यह भी काम के बोझ तथा अन्य कारकों पर निर्भर करेगा। कार्यकारी विभागों के बहुत से जिला स्तरीय कार्यालयों के प्रमुख उप निदेशक अथवा फिर सहायक निदेशक होते हैं। यहाँ भी जिला स्तरीय संगठन की प्रमुखता करने वाले पदाधिकारी की श्रेणी तय करने में बहुत से कारक शमिल होते हैं।

जिला से निचले स्तर पर (खंड स्तर पर) प्रत्येक विकास विभाग का प्रतिनिधित्व एक विस्तार अधिकारी करता है। यह अधिकारी, खंड विकास अधिकारी के अधीन काम कर रही विस्तार टीम का भाग होता है। उदाहरण के लिए, प्रत्येक खंड में एक कृषि विस्तार अधिकारी होगा, जो राज्य स्तरीय निदेशालय का यहाँ प्रतिनिधित्व करता है। गाँव स्तर पर, जैसा कि सब जानते हैं, एक बहुउद्देश्यीय कर्मचारी होता है, जो ग्राम सेवक के नाम से जाना जाता/जाती है।

4.3 कार्यकारी एजेंसियों के प्रकार

सरकार के कार्यों में तेजी से बढ़ोत्तरी होने के साथ-साथ कार्यकारी एजेंसियों की संख्या तथा विभिन्नता में भी वृद्धि हुई है। संबद्ध कार्यालय तथा अधीनस्थ कार्यालय सबसे अधिक प्रसिद्ध दो कार्यकारी एजेंसियाँ हैं। परन्तु देश में बहुत बड़े सार्वजनिक क्षेत्र की स्थापना के साथ अन्य प्रकार की कार्यकारी एजेंसियों की भी स्थापना हुई है। केवल यह स्मरण रखना चाहिए कि आज बड़े पैमाने पर विभिन्न प्रकार के सरकारी कार्यों को सम्पन्न करने के लिए विभिन्न प्रकार के संगठनात्मक ढाँचों का विकास किया गया है।

सम्बद्ध तथा अधीनस्थ कार्यालयों की भूमिका

अब संक्षेप में, यह चर्चा करेंगे कि सम्बद्ध तथा अधीनस्थ कार्यालय आखिर हैं क्या? क्योंकि ऊपर हमने कहा कि ये दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यकारी एजेंसियाँ हैं। कार्यालय प्रक्रिया पुस्तिका में इनका वर्णन इस प्रकार किया गया है:

''जहाँ सरकारी नीतियों को लागू करने के लिए एजेंसी के निर्देशन के विकेन्द्रीकरण तथा क्षेत्रीय एजेंसियों की स्थापना की आवश्यकता होती है, वहाँ एक मंत्रालय के अधीन स्थापित अनुपूरक या सहायक कार्यालयों को सम्बद्ध तथा अधीनस्थ कार्यालय कहा जाता है। सम्बद्ध कार्यालय अपने मंत्रालय द्वारा निर्धारित नीतियों के कार्यान्वयन में कार्यकारी निर्देशन प्रदान करने के लिए उत्तरदायी होते हैं। वे तकनीकी सूचना या आँकडों के भंडार के रूप में भी कार्य करते हैं तथा मंत्रालय के समक्ष आए तकनीकी प्रश्नों के उत्तर देने में मंत्रालय को सलाह देते हैं। अधीनस्थ कार्यालय क्षेत्र संस्थापन की तरह कार्य करते हैं। सरकार के निर्णयों के विस्तृत कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी

एजेंसियों की तरह कार्य करते हैं। सामान्यतः वे एक सम्बद्ध कार्यालय के निर्देशन में कार्य करते हैं...।''

अतः सारांश में सम्बद्ध कार्यालयों के दो कार्य हैं। प्रथम, वे अपने मंत्रालय को तकनीकी आधार सामग्री तथा सलाह प्रदान करते हैं। (मंत्रालय नीति-निर्माण करता है, परन्तु ये तकनीकी आधार सामग्री तथा सलाह पर आधारित होना चाहिए)। यह सम्बद्ध कार्यालय ही होता है जो मंत्रालय को यह सहायता करता है। सम्बद्ध कार्यालय का दूसरा कार्य, सरकार की नीतियों को कार्यान्वित करने के लिए उत्तरदायी एजेंसियों को कार्यकारी निर्देशन प्रदान करना है।

सम्बद्ध कार्यालय के विपरीत, अधीनस्थ कार्यालय एक क्षेत्रीय संस्थापन के रूप में कार्य करता है अथवा यह सरकार के कार्यक्रमों एवं नीतियों के विस्तृत कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी एजेंसी के रूप में कार्य करता है। नियमानुसार, यह संबद्ध कार्यालय के अधीन कार्य करता है।

4.4 राजस्व बोर्ड

जैसा कि नाम से ही पता चलता है कि राजस्व बोर्ड राज्य स्तर पर वह एजेंसी है जो राज्य में राजस्व प्रशासन से संबधित है। यद्यपि इसका गठन राज्य स्तर पर किया जाता है, परन्तु यह राज्य सरकार की मशीनरी का अंग नहीं होता है। इस कथन का उदे्श्य इस सच्चाई को रेखांकित करना है कि सरकारी विभागों से अलग जिनकी परिभाषा ही सरकारी मशीनरी के अंग के रूप में की जाती है, राजस्व बोर्ड एक संविधि द्वारा स्थापित स्वायत्त एजेंसी हैं। इस सच्चाई तथा तथ्य के कारण राजस्व बोर्ड, सरकार से अलग तथा भिन्न बोर्ड के रूप में कार्य करता है (Board of Revenue, https://bareilly.nic.in/board-of-revenues/)।

जिले के ऊपर के स्तर की एजेंसी के रूप में बोर्ड

राजस्व बोर्ड को स्थापित करने का औचित्य इस बात में निहित है कि इससे राज्य सरकार को राजस्व प्रशासन के क्षेत्र में काम की बारीकियों या ब्यौरेवार काम से छुटकारा मिल जाता है। यद्यपि यह राज्य मुख्यालय स्तर पर कार्य करता है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह राज्य सरकार से अलग नहीं हैं (चूँकि यह सांविधानिक निकाय है, इसकी अपनी अलग कानूनी पहचान है)। इसके साथ ही यह जिलाधीशों के ऊपर पर्यवेक्षक का कार्य भी करता है। इन सबके कारण इसे जिले के ऊपर के स्तर की एजेंसी के रूप में वर्गीकृत करना उचित है।

जिले से ऊपर के स्तर पर राजस्व प्रशासन का पैटर्न

देश में जिले से ऊपर के स्तर पर राजस्व प्रशासन का स्वरूप एक जैसा नहीं है। इस संबंध में, खास तौर पर दो बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है। *प्रथम,* कुछ राज्यों में दो प्रशासनिक एजेंसियाँ हैं (एक राज्य स्तर पर तथा दूसरी क्षेत्रीय स्तर पर), तथा कुछ राज्यों में केवल एक ही प्रशासनिक एजेंसी है। *द्वितीय,* राजस्व बोर्ड प्रत्येक राज्य में नहीं है। इनमें राजस्व बोर्ड के स्थान पर वित्तीय आयुक्त अथवा राजस्व विभाग होता है। इस प्रकार जिले से ऊपर के स्तर पर राजस्व प्रशासन के भिन्न स्वरूप देखे जा सकते हैं। ये इस प्रकार हैं:

पहला स्वरूप

इसके अन्तर्गत केवल बीच का एक ही स्तर है, अर्थात् राजस्व बोर्ड जिसका क्षेत्रीय अथवा प्रभाग स्तर पर कोई राजस्व संगठन (जिसे मंडल आयुक्त के रूप में जाना जाता है) नहीं है।

दूसरा स्वरूप

इस स्वरूप में, दो मध्यवर्ती एजेंसियाँ, राजस्व बोर्ड तथा मंडल आयुक्त हैं।

तीसरा स्वरूप

इस स्वरूप के अन्तर्गत भी दो मध्यवर्ती एजेंसियाँ हैं। परन्तु यहाँ राजस्व बोर्ड न होकर उसके समकक्ष वित्तीय आयुक्त होता है। अतः इस स्वरूप के अन्तर्गत, मुख्यालय स्तर पर वित्तीय आयुक्त है तथा क्षेत्रीय स्तर पर मंडल आयुक्त है।

चौथा स्वरूप

इस स्वरूप के अन्तर्गत भी दो मध्यवर्ती स्तर की एजेंसियाँ हैं। परन्तु तीसरे स्वरूप की ही तरह यहाँ भी राजस्व बोर्ड नहीं है, बल्कि इसके समान ही एक अन्य एजेंसी-राजस्व न्यायाधिकरण है। यहाँ दो मध्य स्तर की कड़ियाँ इस प्रकार हैः (i) राजस्व न्यायाधिकरण, और (ii) मंडल आयुक्त। इस स्वरूप का प्रचलन महाराष्ट्र तथा गुजरात में है।

पाँचवा स्वरूप

ऐसा स्वरूप आंध्र प्रदेश में प्रचलित है (अब राज्य आंध्र प्रदेश और तेलंगाना में द्विभाजित है)। यहाँ राजस्व बोर्ड को 1977 में समाप्त कर दिया गया था और तभी से यह कार्य आयुक्तों द्वारा किया जा रहा है, जो विभागों के स्वतंत्र अध्यक्ष हैं। भू-प्रशासन के मुख्य आयुक्त राजस्व प्रशासन, सर्वेक्षण, निपटान और भूमि रिकॉर्ड और शहरी भूमि सीमा विभागों से संबंधित राजस्व प्रशासन के लिए मुख्य नियंत्रण प्राधिकारी हैं। मुख्य आयुक्त राजस्व विभाग के सभी पदाधिकारियों पर वैधानिक कार्यों और सामान्य अधीक्षण का प्रयोग करता है। भू-प्रशासन का मुख्य आयुक्त, सरकार और राजस्व प्रशासन के बीच एक कड़ी है; वह ज़िला कलेक्टर की निग़रानी और मार्गदर्शन करता है; और नीतिगत मामलों में राज्य सरकार को सलाह देता है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणीः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) कार्यकारी एजेंसियों के भिन्न-भिन्न प्रकारों को उजागर कीजिए।

....

....

....

....

....

2) उप-राज्य स्तर पर निदेशालय क्यों होने चाहिए?

....

....

....

....

....

3) राजस्व बोर्ड की स्थिति पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

4.5 सचिवालय-निदेशालय के बीच संबंध को आकार देने वाले कारक

सचिवालय और निदेशालय सरकारी मशीनरी के दो पहिए हैं। जब तक वे समन्वय और सहयोग का कोई उपाय प्राप्त नहीं कर लेते हैं, तब तक अच्छे परिणाम देने की मशीनरी की क्षमता बाधित होती है। राज्य स्तर पर, सचिवालय-निदेशालय के बीच संबंधों को आकार देने में दो प्रकार के कारकों ने प्रभावशाली भूमिका निभाई है। इनमें से एक का संबंध सचिवालय की व्यावहारिक कार्य-प्रणाली से है; और दूसरे का संबंध सचिवालय के अंदर आए उस विस्तार से है जो उसकी भूमिका, कार्मिकों और प्रशासनिक इकाइयों की बढ़ती हुई संख्या से संबंधित है। वास्तव में ये दोनों कारक एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं, परन्तु इस विषय को आसानी से समझने के उद्देश्य से इन दोनों पर अलग-अलग चर्चा की जा रही है। यहाँ यह ध्यान देना चाहिए कि यही वे कारक हैं, जिनके कारण ऐसी परिस्थितियाँ बनती हैं जो सचिवालय-निदेशालय के बीच संबंधों में तनाव बढ़ाती हैं।

सचिवालय की कार्य-विधि के भिन्न-भिन्न पहलू

सचिवालय संस्था की काफी आलोचना की गई है। अवधारणा के रूप में शायद किसी को सचिवालय में दोष न मिले, क्योंकि अवधारणा के स्तर पर इसका अर्थ है नीति-निर्माण तथा नीति-कार्यान्वयन करने वाली एजेंसियों के बीच श्रम विभाजन और विशेषीकरण को बढ़ावा देना है, जो कार्य-विभाजन का ही फल है। पुनः अवधारणा के स्तर पर, सचिवालय की धारणा नीति-निर्माण के स्तर से नीति-कार्यान्वयन स्तर तक आवश्यक अधिकार सौंपने (प्रत्यायोजन) को बढ़ावा देती है। इसका निहितार्थ यह हुआ कि यह केन्द्रीयकरण तथा संकेन्द्रण को हतोत्साहित करता है।

परन्तु व्यवहार में सचिवालय पद्वति के लाभ पूर्ण रूप से साकार नहीं हुए हैं। सिद्धान्त और व्यवहार में बहुत बड़ा अंतर है। सचिवालय के कार्य करने के ढंग तथा इसके रोबीले व्यवहार ने सचिवालय-निदेशालय के बीच संबंधों में तनाव पैदा कर दिया है तथा सचिवालय पद्धति से सामान्यतः मिलने वाले लाभ न मिलकर इसका उल्टा प्रभाव पड़ा है।

सचिवालय के विरुद्व आलोचना के उन ठोस तर्कों का निम्नलिखित उल्लेख किया गया है, जो इसके और कार्यकारी विभागों के बीच संबंधों को प्रभावित करते हैं:

i) सचिवालय की प्रवृत्ति विस्तारवादी है। इसका अर्थ है कि इसने वे कार्य भी अपने पास ले लिए हैं, जो इसके अधिकार क्षेत्र में नहीं हैं। यह स्वयं को केवल नीति निर्धारण तक ही सीमित नहीं रखता, अपितु कार्यकारी प्रकृति के मामलों या विषयों में भी अपने को संलग्न रखता है। यह वास्तव में कार्यकारी एजेंसियों के क्षेत्र में अतिक्रमण (हस्तक्षेप) हैं, जिसने विभागों की सत्ता को काफी कमज़ोर कर दिया है।

ii) सचिवालय कार्यकारी एजेंसियों को पर्याप्त अधिकार प्रदान करने में संकोच करता है। इसके फलस्वरूप, नीतियों के कार्यान्वयन में देरी होती है। इसके अतिरिक्त, सचिवालय के साथ बार-बार विचार-विमर्श करने तथा उसकी स्वीकृति लेने की आवश्यकता से कार्यकारी एजेंसियों के पहल करने की योग्यता अथवा अवसर को भी जकड़ दिया जाता है।

iii) कार्यकारी विभागाध्यक्षों द्वारा भेजे गए प्रस्तावों की जाँच सचिवालय में लिपिक स्तर से प्रारंभ होती है। यह प्रक्रिया विलम्बकारी है। इसके अतिरिक्त, विभाग के अध्यक्षों के प्राधिकार को भी नजरअंदाज करता है। जैसा कि भली भांति विदित है कि विभागाध्यक्षों के प्रस्ताव जिला तथा प्रादेशिक स्तर के अधिकारियों द्वारा भेजे गए प्रस्तावों के आधार पर बने होते हैं, तथा संबद्व कार्यालय में विस्तृत जाँच किए जाने के पश्चात् ही उन्हें सचिवालय के पास भेजा जाता है। इसलिए यदि इन प्रस्तावों की फिर से जाँच की जाती है तो इससे अनावश्यक रूप से उसी प्रक्रिया को दुहराया जाता है, जिससे और भी देरी होती है।

iv) इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह हैं कि कार्यकारी विभाग के विशेषज्ञों तथा तकनीकी स्टाफ के कार्यों की सचिवालय स्तर पर काम करने वाले सामान्य प्रशासकों द्वारा देखरेख, निरीक्षण तथा मूल्यांकन का विचार आधुनिक तकनीकी युग में पुराना है। संबद्व कार्यालयों से आने वाले प्रस्तावों तथा योजनाओं की जाँच सचिवालय द्वारा हो यह और भी अमान्य है। इसका तर्क यह है कि सामान्य प्रशासक जो विशेषज्ञ नहीं होते, इस प्रक्रिया में कोई योगदान नहीं दे सकते।

ऊपर बताई गई परिस्थितियों ने, तथा इस कारण भी कि सरकारी व्यवस्था में सचिवालय ही असली सत्ता के रूप में पहचाना जाता है (वास्तव में इसी को 'सरकार' कहा जाता है), सचिवालय के प्रभाव तथा सत्ता को अनावश्यक ही बढ़ा दिया हैं तथा सचिवालय एवं कार्यकारी विभागों के बीच तनावों की वृद्धि की है। सचिवालय के महत्व में इस कारण और भी वृद्धि हुई है कि यह केवल नीति के प्रश्नों में ही नहीं (जो कि इसका वैध क्षेत्र है) अपितु कार्यान्वयन के क्षेत्र में भी तल्लीन रहता है। इस प्रकार इसने कार्यकारी क्षेत्र में अधिक्रमण द्वारा अपना कार्यक्षेत्र बढ़ा लिया है। स्पष्ट है कि यह कार्यकारी विभागों की कीमत पर हुआ है, और इससे केवल सचिवालय तथा कार्यकारी एजेंसियों के बीच संबंधों में और तनाव बढ़ता है। इस संबंध में एक अन्य स्थिति पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि सचिवालय अधिकारियों का राजनीतिक कार्यपालिका के साथ संपर्क बना रहता है। यह कहने का कोई लाभ नहीं है कि अपने ही तरीके से सचिवालय तथा संबद्व कार्यालयों के बीच विद्यमान तनाव बढ़ाने में इसका हाथ होता है। हम उन कारकों पर चर्चा करेंगे जो सचिवालय की भूमिका के विस्तार; और कार्मिकों तथा कई प्रशासनिक इकाइयों की वृद्धि में उत्तरदायी रहे हैं।

फिर भी यह अंशतः वह विस्तार है जो सचिवालय-निदेशालय तनाव के मूल में है। इन कारकों का विवरण नीचे दिया गया है।

सचिवालय के विस्तार के लिए उत्तरदायी कारक

इसमें सबसे प्रमुख सरकार की संसदीय प्रणाली है। विधायी उत्तरदायित्व के सिद्धान्त, जिनके अन्तर्गत मंत्री अन्य बातों के साथ सदन में अपने विभाग से संबंधित प्रश्नों का उत्तर देने के लिए बाध्य है, इसके कारण सचिवालय में कार्यों का केन्द्रीयकरण हुआ है। इसके अतिरिक्त, मंत्रियों के ऊपर नियुक्तियों, स्थानांतरण, पदोन्नतियों तथा इसी प्रकार के अन्य मामलों को लेकर उनके निर्वाचकों का दबाव पड़ता है। स्पष्ट रूप से ये मामले कार्यकारी प्रकृति के हैं। अपने निर्वाचन क्षेत्र को विकसित करने की मंत्री की इच्छा (इसलिए, नियुक्तियों आदि की माँगों के प्रति अनुक्रिया करना) के परिणामस्वरूप मंत्री कार्यकारी विषयों में हस्तक्षेप करता है। इस प्रकार सचिवालय जो कि नीति-निर्माण करने वाला है। नीति कार्यान्वयन में शामिल हो जाता है।

सचिवालय के कार्यों में सतत और आधिकारिक वृद्धि का दूसरा कारक, अर्थव्यवस्था को योजना तथा राज्य के हस्तक्षेप द्वारा विकसित करने की सरकारी नीति; तथा राज्य के कल्याणकारी कार्यों में वृद्धि रही है। अर्थव्यवस्था को निर्देशन देने, तथा प्रशासित करने के प्रयास सरकारी कामकाज की मात्रा में और वृद्धि करते हैं। इस परिस्थिति से सचिवालय के महत्व तथा प्रभाव में वृद्धि हुई है क्योंकि दूरगामी प्रभाव वाले निर्णयों तथा महत्वपूर्ण काम अब सचिवालय के पास आ गए हैं।

इनके दो कारक हैं। *प्रथम,* यह कि सामान्य सचिवों को दूरदर्शी तथा अनेक प्रकार से अनुभवी माना जाता है जो उसे अपनी सेवाकाल में अनेक वर्षों तक विभिन्न पदों पर आसीन होने के कारण प्राप्त हुआ है। इसके विपरीत, विभाग के अध्यक्ष को संकीर्ण या संकुचित दृष्टि वाला तथा अति सैद्धांतिक दृष्टिकोण वाला माना जाता है। *द्वितीय,* सचिवालय में अनुसचिवीय वर्ग का स्टाफ संबद्ध कार्यालय के स्टाफ की तुलना में अधिक ऊँची योग्यता का माना जाता है, जिसके परिणामस्वरूप सचिवालय के पास अधिक काम आता है। *तृतीय,* जैसा कि ऊपर लिखा गया है, सचिवालय में विस्तार का काफी महत्वपूर्ण कारण उसके द्वारा अनेक कार्यकारी कार्यों का अपने हाथ में लेना है जो सही अर्थों में उसके अधिकार-क्षेत्र में नहीं आते। *अंत में,* कुछ विस्तार का कारण किसी भी स्थिति में नौकरशाही के फैलने की प्रवृत्ति है। इस प्रकार सचिवालय अनावश्यक कार्यों से लदा हुआ है तथा आवश्यकता से अधिक कार्मिकों वाला संगठन बन गया है, जिसे संभालना कठिन होता जा रहा है।

4.6 सचिवालय और निदेशालयों के समर्थन का आधार

अब तक की चर्चा ने हमें सचिवालय एवं निदेशालय के बीच संबंधों पर विचार करने का परिप्रेक्ष्य प्रदान किया है, जिसके अंतर्गत इनके बीच के संबंधों के प्रश्न पर विचार किया जा सकता है। इन संबंधों से जुड़े मुद्दे और भी स्पष्ट रूप से सामने आएंगे, यदि सचिवालय तथा निदेशालय के पक्ष में दिए गए तर्कों को हम सारांश रूप में समझ लें, जो निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।

सचिवालय के पक्ष में तर्क

- सचिवालय, लोक प्रशासन व्यवस्था में एक आवश्यक संस्था है। कार्य की सचिवालय प्रणाली ने अपनी सभी कमियों के बावजूद, प्रशासन को संतुलन, स्थिरता तथा निरंतरता प्रदान की है तथा एक मंत्रालय की सारी मशीनरी के लिए केन्द्र के रूप में कार्य किया है। इससे मंत्रालय स्तर पर अंतर्मंत्रालय समन्वय तथा मंत्रियों का संसद के प्रति उत्तरदायित्व आसान हो गया है।

- सचिवालय प्रणाली, नीति निर्धारण को नीति के कार्यान्वयन से अलग करने में सहायता करती है। यह अच्छी बात है कि यदि सचिवालय दीर्घकालीन नीति के मुद्दों पर अपना ध्यान केन्द्रित करे तथा नीतियों को कार्यान्वित करने की कार्यकारी एजेंसियों को स्वतन्त्रता दी जाए। इससे कार्य-विभाजन, विशेषीकरण और इससे भी बढ़कर प्राधिकार के प्रत्यायोजन को बढ़ावा मिलता है।

- चूंकि सचिवालय का कार्य केवल नीति-निर्धारण पर ध्यान केन्द्रित करना होता है, इससे दिन-प्रतिदिन के प्रशासन से संबंधित विस्तृत मसलों में उलझनों से उसे छुटकारा मिल जाता है। इस प्रकार सचिवालय को अग्रगामी बनने में सहायता मिलती है और वह समस्त तथा योगात्मक राष्ट्रीय उद्देश्यों के संदर्भ में योजना बना सकता है।

- सामान्य सचिव, जो व्यवस्था की मुख्य धुरी होता है, अविशेषज्ञ मंत्री को सलाह देने के लिए सर्वथा अनुकूल होता है। सचिव, एक ओर तो विभाग के विशेषज्ञ प्रमुख के बढ़ते हुए जोश को काबू या नियंत्रण में रखता है तथा दूसरी ओर उसके द्वारा भेजे गए प्रस्तावों को पूरी सरकार के व्यापक दृष्टिकोण से परीक्षण करके मंत्री को निष्पक्ष सलाह देता है।

- सचिवालय, क्षेत्र में कार्यक्रमों के कार्यान्वयन का वास्तविक मूल्यांकन सुनिश्चित करता है। यह कार्य-कार्यकारी एजेंसियों को नहीं सौंपा जा सकता, कार्यकारी एजेंसियाँ ही तो नीतियों को लागू करती हैं और उन्हें उनकी अपने कार्य निष्पादन के विषय में जज करने के लिए नहीं कहना चाहिए। इस कार्य के लिए सचिवालय सर्वाधिक अनुकूल है।

- व्यापक तोर पर, सचिवालय वह संस्था हैं, जिसकी उपयोगिता तथा योग्यता सिद्ध हो चुकी है। समय की कसौटी पर यह खरा उतरा है तथा इसने सफलता के साथ कार्य किया है। अवधि प्रणाली तथा स्थाई कार्यालय के एक साथ होने से जो प्रणाली के एक भाग की तरह विकसित हुए उन्होंने इसे शक्ति, सजीवता तथा गतिशीलता प्रदान की। सचिवालय प्रणाली का कोई व्यवहार्य विकल्प दिखाई नहीं देता।

निदेशालयों के पक्ष में तर्क

- सचिवालय से भिन्न, निदेशालयों में वे विशेषज्ञ होते हैं जिन्हें अपने-अपने विशेष क्षेत्र में दक्षता प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त, इन विशेषज्ञों ने कई वर्षों में क्षेत्रीय स्थितियों की गहरी जानकारी भी प्राप्त कर ली है। इन तथ्यों के आधार पर यह तर्क दिया जाता है कि निदेशक या विभागाध्यक्ष मंत्री को सलाह देने की अच्छी स्थिति में होता है। इससे नीति-निर्माण की प्रक्रिया में, निदेशक के अनुभव का पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

- जैसे कि कार्यात्मक सोपान क्रम में विशेषज्ञों को बढ़ावा मिलता है, उन्हें महत्वपूर्ण प्रशासनिक अनुभव प्राप्त होता है। इसके साथ-साथ विशेषज्ञ अपने प्रशिक्षण के कारण नीति संबंधी मुद्दों के तकनीकी पहलुओं से भली भाँति परिचित होते हैं। अतः विशेषज्ञ विभागों के प्रमुख को, सामान्य ज्ञान वाले सचिवों की तुलना में, नीति के मामलों में सलाह देने में अधिक अच्छे रूप में सामग्री प्रदान कर सकते हैं। अन्य शब्दों में, तर्क यह है कि विभागाध्यक्षों के पास महत्वपूर्ण तकनीकी जानकारी तथा प्रशासनिक अनुभव दोनों होते हैं, जबकि सचिवों के पास तकनीकी ज्ञान की कमी होती है।

- विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में तेज़ी से प्रगति के कारण, सरकार के तकनीकी तथा वैज्ञानिक प्रकृति के कार्यों की मात्रा एवं जटिलता भी बढ़ रही है। इसके कारण, सरकार में प्रशासनिक क्रियाकलापों के विशेषीकृत क्षेत्र भी विकसित हुए हैं। इस स्थिति पर प्रतिक्रिया करने के लिए विभागों के विशेषज्ञ अध्यक्ष विशेष रूप से अनुकूल हैं।

- सरकार में विशेषीकरण तथा व्यावसायीकरण के युग में, आज प्रशासनिक विभागों में विशेषज्ञ प्रमुख, सामान्यज्ञ सचिवों की अपेक्षा अधिक अनुकूल हैं। यह तर्क दिया जाता है कि वस्तुतः आज कोई ऐसा व्यावसायिक क्षेत्र नहीं है, जिसका सरकार में प्रतिनिधित्व या अस्तित्व न हो। जैसे विशुद्ध विज्ञान, चिकित्सा, पशु चिकित्सा, इंजीनियरिंग, कृषि विज्ञान, वास्तुकला तथा लेखाकर्म इस प्रकृति के कुछ उदाहरण हैं।

4.7 सचिवालय और निदेशालयों के बीच संबंधों के उभरते पैटर्न

सचिवालय एवं गैर-सचिवालय संगठनों के बीच संबंधों का उचित स्वरूप क्या हो सकता है? उचित स्वरूप विकसित करने के प्रश्न पर मुख्यतः तीन विचारधाराएँ देखी जा सकती हैं। प्रत्येक का दृष्टिकोण अलग है। इनमें से कोई भी निर्णयात्मक उत्तर नहीं देता है क्योंकि इनमें से प्रत्येक के पक्ष और विपक्ष में तर्क दिए जा सकते हैं। इन तीन विचारधाराओं या दृष्टिकोणों को उनके प्रमुख रूझान के आधार पर, निम्न प्रकार से उल्लिखित किया जा सकता हैः

- यथास्थितिवादी दृष्टिकोण,
- दूरी को कम करने वाला दृष्टिकोण, तथा
- निर्विलय का दृष्टिकोण।

4.7.1 यथास्थितिवादी दृष्टिकोण (The Status-quo Approach)

यह दृष्टिकोण पुरानी विभाजन प्रणाली का पक्ष लेता है, जिसके अनुसार हमारी प्रशासनिक व्यवस्था में सचिवालय तथा निदेशालय की अपनी-अपनी निश्चित भूमिकाएँ हैं, तथा वे वैसी ही रहनी चाहिए। यह दृष्टिकोण स्टाफ तथा लाइन या सूत्र एजेंसियों के विभेदीकरण की पुरानी अवधारणा पर टिका हुआ है, जिसके अनुसार सचिवालय स्टाफ एजेंसी तथा सम्बद्ध विभाग (निदेशालय) लाइन एजेंसी का कार्य करते है। यथास्थितिवादी दृष्टिकोण नीति व प्रशासन के बीच विभेद की पुरानी अवधारणा को भी

स्वीकार करता है। इस दृष्टिकोण के मानने वाले लोगों का मानना है कि सचिवालय एवं निदेशालय के बीच संबंध निम्न सिद्धान्तों पर आधारित होने चाहिएः

i) नीति-निर्धारण सचिवालय का तथा नीति-कार्यान्वयन निदेशालयों का उत्तरदायित्व होना चाहिए।

ii) सेवा शर्तों के निर्धारित नियमों के अधीन, विभाग के अध्यक्ष का अपने अधीन सभी कार्मिकों के ऊपर पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए।

iii) सचिवालय विभाग को सामान्य सेवाएँ प्रदान करनी चाहिए तथा निदेशालय (निदेशालयों) के संबंध में गृह व्यवस्था सम्पन्न करनी चाहिए (उदाहरण के लिए, कार्यालय के लिए स्थान आबंटन करना)।

4.7.2 दूरी को कम करने वाला दृष्टिकोण (The Bridging the gulf Approach)

यथास्थितिवादी दृष्टिकोण के पक्ष लेने वालों के विपरीत, सचिवालय तथा गैर-सचिवालय संगठनों के बीच की दूरी को कम करने वाला एक अन्य दृष्टिकोण है। इसके प्रतिपादक या मानने वाले दूरी को कम करने के बहुत से उपायों का सुझाव देते हैं। इनमें निम्नलिखित शामिल हैं : (i) कार्यकारी विभागों के अध्यक्षों को सचिवालय का पदेन स्तर प्रदान करना; (ii) एक ऐसी व्यवस्था को बनाना, जिसमें सचिव कार्यकारी विभाग के अध्यक्ष का पद भी साथ-साथ संभाले; (iii) कार्यकारी विभाग को उसके सचिवालय अनुरूप विभाग के साथ विलय करना; तथा (iv) एक ऐसा उपाय, जो तीसरे उपाय से भिन्न हो अर्थात् जिसमें विलय तो हो परन्तु सचिवालय विभाग को उसके अनुरूप कार्यकारी विभाग के साथ रखा जाए न कि उसके विपरीत।

निदेशालय का सचिवालय के साथ विलय

सचिवालय तथा ग़ैर-सचिवालय संगठनों के बीच भेद को पूरी तरह समाप्त कर देने वाली व्यवस्था को स्पष्ट करने के लिए एकीकरण तथा विलय शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस प्रणाली के अंतर्गत कार्यकारी एजेंसी के अध्यक्ष के पद को सचिवालय के तदनुरूप विभाग के साथ मिला दिया जाता है।

विलय का पक्ष इस आधार पर लिया जाता है कि सचिवालय का कार्यकारी विभाग के क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप करना भारतीय प्रणाली व्यवस्था का एक स्थापित सत्य है। ऐसा इसलिए, क्योंकि भारत में राजनीतिक कार्यकारी नीतिगत कार्यों के प्रति पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाते। वास्तव में वह दिन-प्रतिदिन के कार्यों (जैसे नियुक्तियाँ, पदोन्नति तथा स्थानांतरण आदि) में बहुत अधिक व्यस्त रहते हैं। इसके परिणामस्वरूप, सचिवालय ऐसे कार्यकारी मामलों में संलग्न हो जाता है, जो वास्तव में निदेशालय को करने होते हैं। चूँकि अंततः सचिवालय की भूमिका राजनीति के प्रत्यक्ष ज्ञान की भूमिका द्वारा नियंत्रित होती है। इसलिए यह तर्क दिया जाता है कि चूँकि दो एजेंसियों की भूमिका परस्पर व्याप्त है, इसलिए संविलयन तर्कसंगत भी है और वांछनीय भी।

निरंतर विलय के पक्ष में तर्क

विलय के अनुभव में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं:

i) विलय से प्रस्तावों की सचिवालय तथा निदेशालय द्वारा अलग-अलग जाँच करने की आवश्यकता समाप्त हो जाती है;

ii) इससे कार्य में देरी कम हुई है तथा मामलों को शीघ्र निपटाना सुनिश्चित हुआ है; तथा

iii) स्थापना खर्च में इसने अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया है।

4.7.3 निर्विलय का दृष्टिकोण (The De-amalgamation Approach)

निर्विलय के पक्ष में तर्क

निर्विलय का पक्ष लेने वालों के तर्क इस प्रकार हैं :

i) यद्यपि प्रस्तावों की दो समानान्तर जाँचों को समाप्त करके विलय में समय की बचत होती है, फिर भी एकीकृत व्यवस्था के अनुभव से पता चलता है कि अंतिम प्रस्तावों/योजनाओं की गुणवत्ता गिरी है, जिसमें समय-समय पर पुनर्विचार आवश्यक होता है। इसलिए, उनका कथन है कि जब सचिवालय तथा निदेशालय अलग-अलग कार्य करते थे तो ऐसा नहीं होता था।

ii) विलय का परिणाम, सचिवालय तथा विभागाध्यक्ष के कार्यों के बीच भेद धीरे-धीरे समाप्त हो गया है।

iii) विलय से सचिवालय स्तर पर, प्रस्तावों एवं योजनाओं की निष्पक्ष जाँच मुश्किल हो गई है। सचिव फाइलों पर अपनी टिप्पणी देते समय इस बात का ध्यान रखते हैं कि कहीं विभागाध्यक्ष नाराज़ न हो जाए। आवश्यकता से अधिक इस सावधानी से सचिवालय अधिकारियों द्वारा खुले रूप में जाँच नहीं हो पाती।

iv) विलय योजना के अधीन, विभागाध्यक्ष सचिवालय में ही बंध जाता है। वह सर्वेक्षण व निरीक्षण के लिए बाहर नहीं जा पाता, जो उसके मुख्यदायित्व हैं।

उपरोक्त दृष्टिकोणों का अध्ययन करने के पश्चात्, और द्वितीय प्रशासनिक आयोग की सिफारिशों के आधार पर कहा जा सकता है कि मंत्रालयों/विभागों को नीति, योजना और निर्णयन पर अधिक ध्यान केंद्रित करना चाहिए; और कार्यान्वयन का काम पर्याप्त रूप से सशक्त कार्यकारी एजेंसियों को दिया जाना चाहिए। ''...नीति निर्माण और कार्यान्वयन संबंधी कार्यों का कोई दृढ़ और संपूर्ण पृथक्करण नहीं हो सकता क्योंकि मंत्री अंतिम रूप से सभी मामलों में अपने मंत्रालयों और विभागों के कार्यनिष्पादन के लिए संसद के प्रति ज़िम्मेवार हैं''। भारत सरकार (कार्य का लेन-देन) नियम के अनुसार, भारत सरकार में एक विभाग को आबंटित सभी कार्यों का निपटारा प्रभारी मंत्री के निर्देशाधीन किया जाना होगा। यह देखा गया है कि मंत्री अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन नैमेत्तिक कार्यों का प्रत्यक्ष नियंत्रण की बजाय समय-समय पर प्रचालनात्मक एजेंसियों के कार्यनिष्पादन के पर्यवेक्षण करते हुए, अपनी ज़िम्मेदारियों का अधिक प्रभावी ढंग से निर्वहन कर सकते हैं।

राज्यों में, कार्यान्वयन संबंधी कार्य का बड़ा भाग कार्यपालक एजेंसियों द्वारा किया जाता है। उन्हें विभागों, सांविधिक बोर्डों, आयोगों, विभागीय उपक्रमों, तथा अन्य परास्थानिकों के रूप में संरचित किया जाता है। आयोग का मत है कि वास्तव में केन्द्रीकृत नियंत्रणों और अपर्याप्त शक्तियों के प्रत्यायोजन के कारण ये निकाय

वास्तविक स्वायत्तशासी निकाय के रूप में कार्य नहीं करते। जबकि, कार्यकारी एजेंसियों को वर्धित शक्तियों के प्रत्यायोजन के महत्व को अब मान्यता मिल रही है, और कुछ राज्यों ने इन एजेंसियों को अधिक शक्तियाँ प्रत्यायोजन की हैं (Second Administrative Reforms Commission, 2009, https://darpg.gov.in/sites/default/files/sdadmin15.pdf, pp.30-31)।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणीः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) सचिवालय-निदेशालय संबंधों को आकार देने वाले विभिन्न कारकों को एक-एक करके लिखिए।

....

....

....

....

2) सचिवालय एवं निदेशालय के पक्ष में विभिन्न तर्कों पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

3) सचिवालय तथा निदेशालय के बीच संबंधों के संबंध में विभिन्न दृष्टिकोणों की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

4.8 निष्कर्ष

निदेशक वे कार्यकारी एजेन्सी है, जिन्हें सचिवालय स्तर पर निर्मित नीतियों को निश्चित कार्य रूप देने की भूमिका सौंपी जाती है। निदेशालय मध्यवर्ती स्तर पर प्रशासनिक ढाँचा स्थापित करते हैं जो मुख्यालय तथा जिलों के बीच होता है, यह क्षेत्र के कार्यकलापों का समन्वय तथा पर्यवेक्षण करता है। इस मध्यवर्ती ढाँचे को क्षेत्रीय प्रादेशिक प्रशासन कहा जाता है। राजस्व बोर्ड, मुख्यालय में राज्य के राजस्व प्रशासन से जुड़े मामलों को निपटाने वाला एक संगठन हैं। यह एक स्वायत्त निकाय है, इसका अस्तित्व विशिष्ट है और राज्य सरकार की अधिकांश मशीनरी से बिल्कुल अलग है।

हमने इस इकाई में, सचिवालय और निदेशालयों के बीच संबंधों के संभावित स्वरूपों में से केवल सबसे महत्वपूर्ण स्वरूप की चर्चा की है। दोनों एजेंसियों के बीच लगातार परस्पर संबंध की प्रक्रिया घनिष्ठ रूप में रहती है। सरकार में और अधिक कुशलता की खोज में, अनेक प्रशासनिक प्रयोग जन्म लेते हैं। जिसमें किन्हीं स्वरूपों में संशोधन, कुछ विशिष्ट स्वरूपों में परिवर्तन किया जाता है तथा किन्हीं अन्य को छोड़ दिया जाता है; तथा प्रक्रिया आगे चलती रहती है।

4.9 शब्दावली

बोर्ड : बोर्ड विभागोत्तर एक बहुआयामी संगठन है। यह मुख्य रूप से विशेषज्ञों का एक दल होता है जो सरकार के किसी निश्चित कार्य को पूरा करने के लिए सामूहिक रूप से उत्तरदायी होता है। बोर्ड को एकल अध्यक्ष के मुकाबले अच्छा समझा जाता है, विशेष रूप से उस समय जबकि अर्ध-विधायी तथा अर्ध-न्यायिक कार्य सम्पन्न करने हों। बोर्ड जैसे संगठन के अंतर्गत अनेक व्यक्तियों के ज्ञान तथा अनुभव को एक स्थान पर लाना संभव होता है।

विलय : यह सचिवालय तथा निदेशालय के बीच की दूरी को कम करने का संगठनात्मक तरीका है। इस व्यवस्था के अंतर्गत अध्यक्ष के कार्यालय को सचिव के कार्यालय के साथ एकीकृत करके अंतर पूर्णतया समाप्त कर दिया जाता है।

निर्विलय : यह विलय के उपाय का नकारात्मक रूप है। यह एकीकृत व्यवस्था को समाप्त करने का प्रयास है। इसका उद्देश्य पुरानी विभाजन प्रणाली को पुनः स्थापित करना है।

4.10 संदर्भ लेख

Administrative Reforms Commission (ARC) Study Team. (1967). *Report on Personnel Administration.* Delhi, India: The Manager of Publications.

ARC. (1968). *Report on the Machinery of Government of India and its Procedure of Work.* Delhi, India: The Manager of Publications.

ARC. (1969). *Report on State Administration.* Delhi, India: The Manager of Publications.

Arora, R.K. & Goyal, R. (2013). *Indian Public Administration: Institutions and Issues.* New Delhi, India: New Age International Publishers.

Avasthi, A. & Avasthi, A.P. (2017). *Indian Administration*. New Delhi, India: Laxmi Narain Agarwal Educational Publishers.

Board of Revenue. Retrieved from https://bareilly.nic.in/board-of-revenus/

Maheshwari, S.R. (1979). *State Governments in India.* New Delhi, India: The Macmillan India Limited.

Maheshwari, S.R. (2000). *Indian Administration.* New Delhi, India: Orient Black Swan.

Sapru, R. (2018). *Indian Administration: A Foundation of Governance.* New Delhi, India: Sage Publications.

Second Administrative Reforms Commission. (2009), *State and District Administration*.Retrieved from https://darpg.gov.in/sites/default/files/sdadmin15.pdf

The Constitution of India. Retrieved from https://www.india.gov.in/my-government/constitution-india/constitution-india-full-text

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - सम्बद्व कार्यालय
   - अधीनस्थ कार्यालय
2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - विधायी उत्तरदायित्व का सिद्धान्त, जिसके फलस्वरूप सचिवालय में कार्यों का केन्द्रीयकरण किया गया है।
   - अपने निर्वाचन क्षेत्र को विकसित करने के लिए मंत्री की इच्छा से कार्यकारी मामलों में मंत्री का हस्तक्षेप होता है।
   - सरकार के कल्याणकारी कार्यों में वृद्धि।
   - सचिवालय में, सचिवालय स्टाफ की प्रतिभा अधिक उच्च मानी जाती है।
   - सचिवालय बहुत बड़ा होता है और इसमें अधिक स्टाफ हो गया है।
3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - भाग 4.4 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - सचिवालय के कामकाज के विभिन्न पहलू।
   - सचिवालय में विस्तार के लिए जिम्मेदार कारक।
2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - भाग 4.6 देखिए।
3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - यथास्थितिवादी दृष्टिकोण।
   - दूरी को कम करने वाला दृष्टिकोण।
   - निर्विलय का दृष्टिकोण।

इकाई 5 राज्य सेवाएँ एवं लोक सेवा आयोग*

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 स्वतंत्र भर्ती एजेंसी का महत्व

5.3 राज्य स्तर पर सिविल सेवा के घटक

5.4 राज्य सिविल सेवाओं का वर्गीकरण

5.5 राज्य सिविल सेवाओं की भर्ती की विशेषताएँ

5.6 राज्य लोक सेवा आयोग : सांविधानिक प्रावधान

5.7 आयोग का गठन और कार्य

5.8 आयोग की सलाहकारी भूमिका

5.9 आयोग की स्वतंत्रता

5.10 आयोग की कार्यप्रणाली

5.11 निष्कर्ष

5.12 शब्दावली

5.13 संदर्भ लेख

5.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आपः

- राज्य स्तर पर सिविल सेवा के घटकों, तथा राज्य सेवाओं के मानदंड तथा वर्गीकरण को समझ सकेंगे;
- राज्य सेवाओं की भर्ती प्रणाली की व्याख्या कर सकेंगे; और
- राज्य लोक सेवा आयोग की भूमिका की जांच कर, इसके कार्यों को प्रभावित करने वाले कारकों को उजागर कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

''राज्य सेवाओं'' शब्द का अर्थ, राज्य स्तर की सिविल सेवाओं से है। सिविल सेवा के अंतर्गत सरकार द्वारा सेवा में नियुक्त असैनिक कर्मचारी आते हैं। सरकार के असैनिक कार्य सेना से भिन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त, सिविल सेवा एक कैरियर सेवा है। अर्ध-सरकारी निकायों के कर्मचारी तथा निर्वाचित अधिकारी सिविल सेवा के अंग नहीं होते हैं। सिविल सेवा का एक आवश्यक घटक योग्यता प्रणाली की अवधारणा है। योग्यता

*यह इकाई बी.पी.ए.ई.-102, भारतीय प्रशासन, खंड-3, इकाई-15 का अनुकूलित रूप है।

प्रणाली का अर्थ है, सिविल सेवा के पदों के लिए खुली प्रतियोगी परीक्षा के द्वारा जाँची गई योग्यता के आधार पर चयन। एक स्वतंत्र भर्ती एजेंसी योग्यता प्रणाली की प्रामाणिकता का प्रतीक है। राज्य स्तर पर भर्ती करने वाली एजेंसी को राज्य लोक सेवा आयोग कहा जाता है।

इस इकाई में, सिविल सेवाओं की प्रकृति का वर्णन किया गया है। इसमें राज्य सेवाओं का वर्गीकरण और भर्ती के अनेक पहलुओं का भी विवेचन किया गया है। यह स्वतंत्र भर्ती एजेंसी के महत्व, राज्य स्तर पर सिविल सेवा घटकों और उसकी सलाहकारी भूमिका को उजागर करती है। राज्य लोक सेवा आयोग के गठन और कार्य-प्रणाली पर भी चर्चा की गई है।

5.2 स्वतंत्र भर्ती एजेंसी का महत्व

यह बुनियादी महत्व की बात है कि किसी भी सिविल सेवा के लिए भर्ती, किसी भी पक्षपात के बिना हो। इसी से योग्यता प्रणाली में विश्वास उत्पन्न हो सकता है। भर्ती में निष्ठा तथा निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए, बहुत से उपाय योग्यता प्रणाली के प्रादुर्भाव के बाद विकसित किए गए हैं। एक, कार्यकारी शाखा को सिविल सेवा के लिए भर्ती करने की शक्ति से वंचित रखा गया है और इस उद्देश्य के लिए एक अलग एजेंसी की स्थापना की गई है। दूसरे, इस प्रकार निर्मित एजेंसी विभाग से अलग संस्था है (अर्थात्, एक आयोग) जो सरकार की आम मशीनरी के बाहर रहकर कार्य करता है। तीसरे, इस एजेंसी को सांविधानिक हैसियत प्रदान की गई है। यह याद रखना चाहिए कि आयोग केवल भर्ती करने वाली एजेंसी है, नियुक्ति करने वाली एजेंसी नहीं। नियुक्ति करने का अधिकार सरकार के पास है। आयोग एक सलाहकारी निकाय है। इसके निर्णय मानने के लिए सरकार बाध्य नहीं है।

आयोग जैसे प्रकार के संगठन की आवश्यकता

परम्परागत विभागीय प्रकार से भिन्न आयोग प्रकार के संगठन को, सिविल सेवकों की भर्ती के कार्य पर लगाया जा सकता है। आयोग के प्रकार के संगठन का उपयोग ऐसे कार्य को सम्पन्न करने के लिए होता है, जिसके लिए विशेषज्ञ/विशेष ज्ञान की आवश्यकता हो। यह वह संगठन है, जो एक विशेषज्ञों के समूह द्वारा सामूहिक विचार-विमर्श सुकर बनाता है, जिससे वे अपने व्यापक ज्ञान तथा अनुभव के आधार पर पूर्ण जानकारी के साथ वस्तुनिष्ठ निर्णय ले सकें। जब निर्णय सामूहिक रूप से लिए जाते हैं तो निर्णय तक पहुँचने के लिए ऐसी पद्धति का वर्णन कॉर्पोरेट कार्य-पद्धति अथवा निर्णयन के रूप में किया जाता है। जो निकाय इस तरह से कार्य करता है, उसे बोर्ड कहते हैं। लोक सेवा आयोग और कुछ नहीं बल्कि एक बोर्ड है, जिसे आयोग का रूप दे दिया गया है (वैसे, यह याद रखना चाहिए कि बोर्ड का नामकरण परिषद्, निगम, कम्पनी, प्राधिकरण आदि भी हो सकता है और बोर्ड को बोर्ड भी कहा जा सकता है)।

जब विशेषज्ञों वाले आयोग में मुद्दों पर विचार-विमर्श होता है, तो व्यावसायिक तथा तकनीकी मानदंड को निर्णयों में आवश्यक महत्व दिया जाता है। जब अनेक अध्यक्ष विचार-विमर्श के लिए इकट्ठे होते हैं, तो पक्षपात का कोई स्थान नहीं रहता तथा निष्पक्षता सुनिश्चित होती है। जैसे आयोग सामान्य सरकारी मशीनरी के बाहर कार्य करता है, इसलिए अधिक लचीलापन तथा नवीन दृष्टिकोण संभव है। नौकरशाही

संबंधी कठोरता तथा देरी जो एक सरकारी विभाग में होती है, उन्हें संगठन से दूर रखा जाता है।

आयोग के लिए सांविधानिक स्तर का महत्व

यह सुनिश्चित करता है कि आयोग बिना भय या पक्षपात के कार्य करे। यह तब संभव होगा जबकि इसका गठन, भूमिका तथा प्रत्यायोजन, सदस्यों के विशेषाधिकार, सदस्यों की नियुक्ति तथा उन्हें पद से हटाने की पद्धति आदि संवैधानिक रूप से प्रदान की जाए। ऐसा करने से सरकार की कार्यकारी शाखा को इन मामलों में स्वविवेक या स्वेच्छा का प्रयोग करने का कोई अधिकार नहीं होगा, तथा आयोग इससे प्रभावित हुए बिना कार्य कर सकता है। इस प्रकार, सांविधानिक स्तर प्रदान करने का अर्थ इसकी सत्ता तथा स्वंतत्रता पर किसी संभावित अतिक्रमण के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करना है। इस प्रकार, राज्य लोक सेवा आयोग सांविधानिक सत्ता के अधीन एक विशेषज्ञों का सलाहकार निकाय है, जो संविधान के प्राधिकार के अंतर्गत राज्य सेवाओं के लिए कार्मिकों की भर्ती करता है।

5.3 राज्य स्तर पर सिविल सेवा के घटक

सर्वप्रथम यह समझ लेना आवश्यक है कि राज्य स्तर पर एक के स्थान पर दो भिन्न सिविल सेवाएँ कार्य करती हैं। इनमें से एक राज्य स्तर पर, विविध क्षेत्रों की गतिविधियों को चलाने के लिए, सिविल सेवाओं से संबद्ध राज्य सरकार द्वारा भर्ती की गई सेवाएँ हैं। इन्हें राज्य सिविल सेवाएँ या केवल राज्य सेवाएँ कहा जाता है। राज्य में कार्यरत दूसरी सिविल सेवाएँ हैं– अखिल भारतीय सेवाएँ। अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारी राज्य तथा केन्द्र स्तर पर अनेक प्रकार के कार्य करने के लिए भर्ती किए जाते हैं। अखिल भारतीय सेवाओं की यही विशेषता उन्हें राज्य सेवाओं से स्पष्टतः भिन्न रूप प्रदान करती है। अखिल भारतीय सेवाओं का सर्वविदित उदाहरण भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS) तथा भारतीय पुलिस सेवा (IPS) है। इस प्रकार, राज्य स्तर पर लोक सेवाओं के दो अलग-अलग घटक हैं– i) एक राज्य सेवाएँ; तथा ii) दूसरा, अखिल भारतीय सेवाएँ।

अखिल भारतीय सेवाएँ

अखिल भारतीय सेवाओं का गठन, अधिकारियों के एक कुलीन वर्ग का सृजन करने के लिए हुआ था जो केन्द्र और राज्य स्तरों पर सर्वोच्च पदों पर प्रबंधन कर सकें। अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों की भर्ती, केन्द्र सरकार द्वारा संघ लोक सेवा आयोग के माध्यम से की जाती है। भर्ती के पश्चात्, प्रत्येक अधिकारी को एक निश्चित राज्य संवर्ग/काडर दिया जाता है। उस प्रदत्त राज्य से ही वह संबद्ध अधिकारी केन्द्रीय सरकार में आता है। जिस व्यवस्था के तहत, वह स्थान परिवर्तन होता है उसे सावधिक प्रणाली कहते हैं। अधिकारी का राज्य तथा केन्द्र के बीच यह स्थानांतरण, उसकी सेवा के पहले बीस वर्षों के दौरान होता है (जिसके पश्चात् वह केन्द्र में आ जाता है)। अखिल भारतीय सेवाओं पर केन्द्र तथा सम्बद्ध राज्य का संयुक्त नियंत्रण होता है। वास्तव में, अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों की भर्ती केन्द्रीय स्तर पर होती है, तथा फिर उन्हें भिन्न-भिन्न राज्य आबंटित किए जाते हैं। यह सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक राज्य को उसकी प्रशासनिक सेवाओं के लिए एक आधारभूत तथा समान प्रतिभाशाली अधिकारी प्राप्त हो सके, तथा राज्य की प्रशासनिक मशीनरी पर्याप्त

रूप से संपन्न हो। सावधिक प्रणाली, जिसके अंतर्गत अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों का समय-समय पर केन्द्र में आते रहना यह सुनिश्चित करता है कि केन्द्र में नीति-निर्माण करने वाले पदाधिकारियों को क्षेत्र का भी व्यापक अनुभव है।

अखिल भारतीय सेवाएँ राज्यों में, जिला तथा उसके ऊपर के स्तर पर सभी उच्च पदों के लिए कार्मिक प्रदान करती हैं। इस प्रकार जिलाधीश, क्षेत्रीय आयुक्त, राजस्व बोर्ड के सदस्य, सरकार के सचिवों, मुख्य सचिव आदि पद भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारियों द्वारा भरे जाते हैं। इसी प्रकार पुलिस विभाग के पुलिस अधीक्षक तथा राज्य स्तर पर उसके ऊपर के पद, भारतीय पुलिस सेवाओं के अधिकारियों के लिए सुरक्षित होते हैं।

राज्य सेवाएँ

राज्य सेवाओं में भर्ती, संबंधित राज्य सरकार द्वारा अपने लोक सेवा आयोग या अन्य एजेंसी के माध्यम से की जाती है। इन सेवाओं के सदस्य मुख्यतः राज्यों में सेवा के लिए होते हैं। केवल कुछ अवसरों पर ही, कुछ राज्य सेवाओं के, कुछ सदस्य केन्द्र अथवा किसी संगठन के द्वारा बुलाए जाते हैं। राज्यों के पास तकनीकी तथा ग़ैर-तकनीकी क्षेत्रों में, सरकारी कार्य की आवश्यकताओं के अनुरूप सुव्यवस्थित सेवाएँ हैं। उदाहरण के लिए, राज्य में निम्नलिखित सेवाएँ हो सकती हैं: (i) प्रशासनिक सेवाएँ, (ii) पुलिस सेवा, (iii) न्यायिक सेवा, (iv) वन सेवा, (v) कृषि सेवा, (vi) शिक्षा सेवा, (vii) स्वास्थ्य सेवा, (viii) मत्स्य सेवा, (ix) इंजीनियरिंग सेवा, (x) लेखा सेवा, (xi) मद्य निषेध एवं उत्पाद शुल्क सेवा, और (xii) सहकारी सेवा, आदि।

पारस्परिक संबंध और अंतर्संबंध

राज्य सेवाओं के अधिकारी अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों के अधीन कार्य करते हैं। प्रशासनिक पद सोपानक्रम में, राज्य सेवाओं के कार्मिकों का स्थान अखिल भारतीय सेवाओं के कार्मिकों के पदों से नीचे होता है। उनका स्थान राज्य प्रशासनिक अथवा प्रणाली के मध्यम/बीच के स्तर पर होता है।

इन दोनों स्रोतों से प्राप्त सेवाओं में से एक सांझी धारा (common stream) विकसित करने का प्रयास किया गया है। यह दो प्रकार से किया गया है: प्रथम, राज्य सेवाओं को उन उच्च पदों पर जो साधारणतः अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों के लिए सुरक्षित होती है, जिनके अवसर देकर; तथा दूसरे राज्य सेवाओं के कार्मिकों के एक निश्चित प्रतिशत को अखिल भारतीय सेवाओं में शामिल करके।

5.4 राज्य सिविल सेवाओं का वर्गीकरण

राज्य सेवाओं के वर्गीकरण के लिए दोहरी प्रणाली का प्रयोग किया जाता है: प्रथम प्रणाली में सेवाओं को समूह क, समूह ख, समूह ग तथा समूह घ में वर्गीकृत किया गया है (पहले इन्हें प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के रूप में जाना जाता था)। इस प्रणाली के अंतर्गत, समूह क को सरकार में नियुक्ति और अधिकार के मामले में सर्वोच्च स्थान दिया गया है। हालांकि, समूह ग एवं घ (7वें केंद्रीय वेतन आयोग के बाद समूह ग एवं घ का विलय कर दिया गया) को सबसे निचले स्तर पर रैंक दिया गया है।

यह वर्गीकरण (i) वेतनमान/वेतन स्तर, (ii) निष्पादित कार्य के दायित्व की डिग्री; तथा (iii) अपेक्षित तदनुरूपी योग्यताओं से संबंधित हैं। सभी राज्य सेवाओं को विभागवार गठित किया जाता है। दूसरी प्रणाली के अंतर्गत, सेवाओं में पदों का वर्गीकरण राजपत्रित और अराजपत्रित श्रेणियों के अंतर्गत किया जाता है।

i) वेतनमानों आदि पर आधारित वर्गीकरण, आदि

समूह क (प्रथम श्रेणी) तथा समूह ख (द्वितीय श्रेणी) की सेवाओं में, राज्य स्तर पर सेवाओं का अधिकारी वर्ग आता है, जबकि समूह ग (तृतीय श्रेणी) तथा समूह घ (चतुर्थ श्रेणी) में क्रमशः लिपिक तथा शारीरिक कार्य करने वाले कर्मचारी शामिल किए जाते हैं।

समूह क (प्रथम श्रेणी) की सेवाएँ

समूह क (प्रथम श्रेणी) की सेवाओं में मूल वेतनमान/वेतन स्तर वाले पद शामिल होते हैं। साधारणतः प्रत्येक विभागीय सेवा में समूह क (प्रथम श्रेणी) संवर्ग होता है।

समूह क के पदों पर भर्ती-समूह ख सेवाओं से पदोन्नति द्वारा तथा राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा सीधे भर्ती के माध्यम से भी की जाती है। सीधी भर्ती खुली प्रतियोगी परीक्षा के आधार पर की जाती है। सामान्यः यह लिखित परीक्षा तथा व्यक्तित्व परीक्षण द्वारा होती है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि पदोन्नति या सीधी भर्ती द्वारा भरे जाने वाले पदों के विषय में कोई एक समान प्रक्रिया नहीं है। वास्तव में, इस मामले में एक राज्य से दूसरे राज्य के बीच काफी अधिक भिन्नता है।

समूह ख (द्वितीय श्रेणी) की सेवाएँ

यद्यपि इस वर्ग में कुछ सामान्य श्रेणी की सेवाएँ भी हैं, परन्तु साधारणतः द्वितीय श्रेणी की सेवाएँ विशेषज्ञ स्वरूप की होती हैं। ये अधीनस्थ सिविल सेवाएँ होती हैं, जैसे अधीनस्थ पुलिस सेवा आदि। समूह ख (द्वितीय श्रेणी) की सेवाएँ, प्रथम श्रेणी की सेवाओं की तुलना में स्तर तथा उत्तरदायित्व की दृष्टि से निम्न स्तर की होती हैं। फिर भी ये इतनी महत्वपूर्ण हैं कि इनकी नियुक्ति का अधिकार राज्य सरकार में ही निहित होना चाहिए।

समूह ख (द्वितीय श्रेणी) सेवाओं में सबसे महत्वपूर्ण अधीनस्थ सिविल सेवा है (जिसे अधीनस्थ कार्यकारी प्रशासनिक सेवा भी कहा जाता है)।

समूह ख (द्वितीय श्रेणी) सेवाओं में भर्ती अंशतः पदोन्नति तथा अंशतः खुली प्रतियोगिता (सीधी भर्ती) के आधार पर की जाती है। विशेषज्ञ सेवाओं के लिए, राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा साक्षात्कार के आधार पर सीधी भर्ती की जाती है। सिविल, पुलिस तथा न्यायिक समूह ख (द्वितीय श्रेणी) सेवाओं के लिए अधिक विस्तृत भर्ती करने की प्रक्रिया का प्रयोग किया जाता है। इसमें लिखित परीक्षा तथा साक्षात्कार दोनों शामिल होते हैं।

ii) राजपत्रित-अराजपत्रित वर्गीकरण

जैसा कि ऊपर कहा गया है, राज्य सेवाओं के लिए नियोजित वर्गीकरण की दूसरी प्रणाली उन्हें राजपत्रित (gazetted) तथा अराजपत्रित (non-gazetted) श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत करती है।

एक राजपत्रित सरकारी कर्मचारी वह होता है, जिसकी नियुक्ति, स्थानांतरण, पदोन्नति, सेवानिवृत्ति आदि की घोषणा राज्यपाल के आदेश द्वारा जारी की गई अधिसूचना के रूप में सरकारी राजपत्र में की जाती है। राजपत्रित अधिकारी के पास एक कार्यालय का प्रभार होता है तथा उसके कर्तव्य निरीक्षण अथवा निर्देशकीय प्रकृति के होते हैं। राजपत्रित पदों में अखिल भारतीय सेवाएँ, तथा समूह क एवं समूह ख की राज्य सेवाएँ शामिल होती हैं। हालाँकि समूह ख सेवाओं के तहत, सभी राजपत्रित पद नहीं हैं, उदाहरण के लिए पुलिस हेड कांस्टेबल, हेड क्लर्क/सेक्शन हेड, जूनियर इंजीनियर आदि गैर-राजपत्रित पद हैं। अराजपत्रित पदों में समूह ग (तृतीय श्रेणी) तथा समूह घ (चतुर्थ श्रेणी) की सेवाएँ होती है।

5.5 राज्य सिविल सेवाओं में भर्ती की विशेषताएँ

भर्ती में तीन पृथक परन्तु अंतः संबद्ध प्रक्रियाएँ शामिल होती हैः (i) पदों के लिए आवेदन करने वाले योग्य उम्मीदवारों को आकर्षित करना (विज्ञापन के द्वारा रिक्त स्थानों में रूचि रखने वाले लोगों के ध्यान में लाना)। (ii) खुली प्रतियोगी परीक्षा के आधार पर कार्य के लिए उम्मीदवारों का चयन करना। (iii) चयन किए गए उम्मीदवारों को उचित पदों पर नियुक्त करना, जिसमें संबद्ध उम्मीदवारों को अधिकृत अधिकारी द्वारा नियुक्ति पत्र जारी करना भी शामिल है। पहले दो चरण एक स्वतंत्र भर्ती करने वाली एंजेंसी द्वारा संपन्न किए जाते हैं। राज्यों में ये कार्य राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा किए जाते हैं। तीसरा चरण संपन्न करना, राज्य सरकार का दायित्व है। इसलिए यह याद रखना आवश्यक है कि राज्य लोक सेवा आयोग केवल भर्ती करने वाली तथा सलाहकारी एजेंसी है, नियुक्त करने का अधिकार सरकार के पास है।

भर्ती दो प्रकार की होती हैः आंतरिक तथा बाहरी। आंतरिक भर्ती अंदर से ही पदोन्नति द्वारा, तथा बाहरी भर्ती खुली प्रतियोगी परीक्षा के आधार पर की जाती है। हम यहाँ पर केवल संगठन के बाहर से उम्मीदवारों की भर्ती की चर्चा करेंगें। हम अपना ध्यान समूह क (प्रथम श्रेणी) तथा समूह ख (द्वितीय श्रेणी) की सेवाओं के संदर्भ में, भर्ती प्रणाली पर ही केन्द्रित करेंगे। राज्य लोक सेवाओं की भर्ती की मुख्य विशेषताओं की एक रूपरेखा नीचे प्रस्तुत की गई हैः

विशेषताएँ

- राज्य सिविल सेवाओं के लिए भर्ती 21 वर्ष की आयु से की जाती है। हरियाणा सिविल सेवा के मामलें में, अनारक्षित श्रेणी के उम्मीदवार के लिए ऊपरी आयु सीमा, उप पुलिस अधीक्षक पदों (27 वर्ष) को छोड़कर, 42 वर्ष है।
- अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े समुदायों, अविवाहित महिला उम्मीदवारों (तलाकशुदा और पति से अलग रहने वाली महिलाओं सहित), शारीरिक रूप से विकलांग और विकलांग व्यक्तियों के लिए आयु सीमा में छूट दी जाती है।
- भर्ती राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित खुली प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से की जाती है, तथा उच्च स्तर के पद पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं।
- भरे जाने वाले रिक्त स्थानों को हर वर्ष राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा विज्ञापित किया जाता है तथा सारे देश से उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित किए जाते हैं।

- न्यूनतम अपेक्षित योग्यता किसी विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त स्नातक की उपाधि है।
- चयन के लिए आयोजित प्रतियोगी परीक्षा जिसके माध्यम से चयन किया जाता है, केवल एक उदाहरण उद्धृत करने के लिए हरियाणा सिविल सेवा परीक्षा तीन चरणों में आयोजित की जाती है, और एक उम्मीदवार को अगले चरण में उपस्थित होने के लिए प्रत्येक चरण को पास करना होता है। इन चरणों में प्रारंभिक परीक्षा, मुख्य परीक्षा और व्यक्तित्व परीक्षण शामिल हैं। लिखित परीक्षा में कुछ न्यूनतम अंक प्राप्त करने वाले उम्मीदवारों को व्यक्तिगत परीक्षण के लिए आमंत्रित किया जाता है, जो लगभग आधे घंटे की अवधि का साक्षात्कार होता है।
- प्रत्येक उम्मीदवार के लिखित परीक्षा तथा व्यक्तित्व परीक्षण में प्राप्त अंकों को जोड़ दिया जाता है। रिक्त स्थानों की संख्या के अनुसार, सफल उम्मीदवारों की सूची तैयार की जाती है। यह सूची योग्यता के अनुसार होती है।

यह सूची सरकार के पास आवश्यक कार्यवाही अर्थात नियुक्ति पत्र जारी करने के लिए भेज दी जाती है। एक सलाहकार निकाय होने के कारण आयोग नियुक्ति के लिए उम्मीदवारों की केवल सिफारिश कर सकता है। नियुक्ति करने का अधिकार केवल सरकार को है। आयोग उम्मीदवारों की भर्ती करता है, और सरकार उनकी नियुक्ति करती है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी: i) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) राज्य स्तर पर सिविल सेवाओं के घटक कौन-कौन से हैं?

....

....

....

....

....

2) राज्यों के संदर्भ में, अखिल भारतीय सेवाओं के महत्व पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

3) राज्य स्तर पर सेवाएँ किस प्रकार वर्गीकृत की जाती हैं?

....

....

....

....

....

5.6 राज्य लोक सेवा आयोगः सांविधानिक प्रावधान

राज्य लोक सेवा आयोग से संबंधित प्रावधान नीचे प्रस्तुत किए गए हैंः

- संविधान के अनुच्छेद 315 में, लोक सेवा आयोगों की स्थापना का प्रावधान है। इसके अनुसार संघ तथा प्रत्येक राज्य के लिए एक लोक सेवा आयोग होगा।

- अनुच्छेद 316 आयोगों के गठन का निर्धारण करता है। यह अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति के तरीके तथा उनके पद की शर्तों का भी वर्णन करता है। इसके अंतर्गत, अध्यक्ष तथा सदस्यों के सामान्य कार्यकाल का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 317 उन कारणों एवं प्रक्रिया का उल्लेख करता है, जिसके द्वारा इस कार्यकाल से पहले ही सेवाएँ समाप्त की जा सकती है।

- हम पहले ही व्याख्या कर चुके हैं कि भर्ती में वस्तुनिष्ठता तथा निष्पक्षता बनाए रखने के लिए यह कार्य एक आयोग को सौंपा गया है तथा इसे संवैधानिक स्तर पर प्रदान किया गया है। इस संदर्भ में, आयोग की स्वंतत्रता का प्रश्न विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण बन जाता है। अनुच्छेद 318, 319 तथा 322 ऐसे उपायों का उल्लेख करते हैं, जिनसे आयोग की स्वतंत्रता को बढ़ावा और सुरक्षा प्रदान की जा सके।

- लोक सेवा आयोगों के कर्तव्यों एवं कार्यों का कार्य-क्षेत्र क्या होगा? इन प्रश्नों का उत्तर संविधान के अनुच्छेद 320, 321 तथा 323 में दिया गया है।

- जैसा कि पहले कहा गया है, कि आयोग सलाहकारी निकाय हैं। यह कैसे सुनिश्चित किया जाए कि यह स्थिति उनके अहित में काम न करे और उन्हें प्रभावहीन न बना दे? अनुच्छेद 323 के अंतर्गत यह प्रावधान है कि आयोग अपनी वार्षिक रिपोर्ट पेश करेगा, जिनमें अन्य बातों के साथ-साथ सरकार द्वारा अस्वीकार किए जाने वाले मामलों पर सलाह न मानने के कारण का भी उल्लेख किया जाएगा। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि इन रिपोर्टों को उपयुक्त विधान मंडलों के समक्ष पेश किया जाएगा।

5.7 आयोग का गठन और कार्य

राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं है। संविधान में कहा गया है कि इसका निर्णय राज्यपाल द्वारा किया जाएगा। आयोग के कम से कम आधे सदस्य वे होंगे जिन्हें केन्द्र अथवा राज्य सरकार के अधीन कार्य करने का कम से कम दस वर्ष का अनुभव होता है। सदस्यों का कार्यकाल छः वर्ष अथवा बासठ वर्ष तक की आयु तक होता है। सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है। परन्तु यह बात

ध्यान में रखी जानी चाहिए कि सदस्यों को केवल राष्ट्रपति द्वारा ही पद से हटाया जा सकता है, न कि राज्यपाल द्वारा। सदस्यों की सेवा शर्तें राज्यपाल द्वारा निर्धारित होती हैं, परन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि संविधान में यह प्रावधान है कि ये उनके अहित में नहीं बदली जा सकती। इसमें वह सुरक्षा निहित हैं, जिससे आयोग की स्वतंत्रता सुनिश्चित होती है। बाद में, हम इस बात पर अधिक ध्यान केन्द्रित करेंगे।

आयोग के कार्य

भर्ती करने वाली एजेंसी के रूप में, राज्य लोक सेवा आयोग का मुख्य कार्य सिविल सेवाओं में नियुक्ति के लिए परीक्षाओं का आयोजन करना है। परन्तु इससे कुछ अन्य कर्तव्य उत्पन्न होते हैं, जिन्हें आयोग द्वारा पूरा किया जाना अनिवार्य है। ये हैं– (i) राज्य सरकार को ऐसे विषय में सलाह देना, जो राज्यपाल द्वारा इसके पास भेजा गया हो; (ii) ऐसे अतिरिक्त कार्य सम्पन्न करना, जो विधानमंडल के अधिनियम द्वारा प्रदान किए गए हों। इनका संबंध राज्य सिविल सेवा, या स्थानीय प्राधिकरण की सेवाओं या अन्य निगमित निकायों से हो सकता है; तथा (iii) कार्य की वार्षिक रिपोर्ट राज्यपाल को पेश करना।

इसके अतिरिक्त, संविधान में यह भी प्रावधान है कि निम्नलिखित मामलों में आयोग से विचार-विमर्श लिया जाएगाः

i) सिविल पदों और सिविल सेवाओं में भर्ती के तरीकों से संबंधित सभी मामले।

ii) सिविल सेवाओं तथा पदों पर नियुक्ति के लिए, एक सेवा से दूसरी सेवा में पदोन्नति तथा स्थानांतरण; तथा ऐसी नियुक्तियों, पदोन्नतियों अथवा स्थानांतरण के लिए उम्मीदवारों की उपयुक्तता के संदर्भ में अपनाए जाने वाले सिद्धान्त।

iii) राज्य सिविल सेवा में, राज्य की सरकार के अधीन कार्यरत किसी व्यक्ति को प्रभावित करने वाली अनुशासनात्मक कार्यवाही।

5.8 आयोग की सलाहकारी भूमिका

आयोग की भूमिका का महत्व इस बात में निहित है कि इसके निर्णय सरकार को दी गई सलाह के रूप में होते हैं, जिन्हें मानने के लिए सरकार बाध्य नहीं है। आयोग को परामर्शदायी स्तर प्रदान करने का कारण बहुत स्पष्ट है। संसदीय प्रणाली की सरकार के अंतर्गत, देश के सही प्रशासन की ज़िम्मेदारी मंत्रिमंडल की होती है, जिसके लिए वह विधायिका के प्रति उत्तरदायी होता है। इसलिए मंत्रिमंडल, किसी अन्य एजेंसी के विचार अथवा सम्मति के आधार पर अपने इस दायित्व को त्याग नहीं सकता है। यदि आयोग के निर्णय मानना आवश्यक कर दिया जाता, तो इसका अर्थ दो सरकारों का निर्माण करना होता। परन्तु साथ ही, इसमें कोई संदेह नहीं है कि सिविल सेवाओं की भर्ती से संबंधित तथा अन्य इसी प्रकार के मामलों में, विशेषज्ञों के निकाय की राय लेना मंत्रियों के लिए लाभप्रद होगा।

यह सरकार द्वारा आयोग की सलाह की खुली उपेक्षा करने के विरुद्ध आवश्यक सुरक्षा की आवश्कता पर बल देता है। संविधान में इसकी व्यवस्था की गई है। उदाहरण के लिए, आयोग की वार्षिक रिपोर्ट, जिसमें उन मामलों का, जिनमें आयोग की सलाह नहीं मानी गई उनका भी उल्लेख होता है। यह रिपोर्ट राज्यपाल द्वारा राज्य विधायिका के समक्ष रखी जाती है। जब यह रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है तो सरकार के लिए उन

कारणों को बताना आवश्यक होता है, जिनकी वजह से किसी मामले में उसने आयोग की सिफारिश को नामंजूर किया था। परंतु ऐसे मामलों की संख्या बहुत कम, लगभग नहीं के बराबर, हो गई है।

5.9 आयोग की स्वतंत्रता

इस इकाई की प्रस्तावना में, हमने कार्यकारी सरकार और उसकी तुलना में भर्ती एजेंसी की स्वतंत्रता को बनाए रखने की आवश्यकता के महत्व की व्याख्या की थी। संविधान में भी आयोग की स्वतंत्रता को बनाए रखने वाले प्रावधान शामिल किए गए हैं। इनका वर्णन नीचे किया गया है:

i) सत्ता के संभावित दुरूपयोग को रोकने के लिए भर्ती तथा पद से हटाने की शक्ति दो अलग-अलग अधिकारियों को सौंपी गई है। अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल करता है, परन्तु उन्हें पद से हटाने की शक्ति राष्ट्रपति के पास है।

ii) संविधान में निर्धारित कारणों तथा प्रक्रिया द्वारा ही पद से हटाया जा सकता है।

iii) सदस्य का वेतन तथा उसकी अन्य सेवा शर्तें, उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके अहित में नहीं बदली जा सकती।

iv) आयोग के सभी खर्चे राज्य की संचित निधि से होते हैं।

v) आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों के ऊपर, सरकार के अधीन भविष्य में पद ग्रहण करने के संबंध में कुछ प्रतिबंध लगाए गए हैं। सेवा निवृत्ति के पश्चात् वे केन्द्र अथवा राज्य आयोगों से बाहर सरकारी पद ग्रहण नहीं कर सकते।

ऊपर दिए गए प्रावधानों का उद्देश्य, आयोग के अध्यक्ष या सदस्यों को पद के लालच अथवा असुरक्षा का अहसास अथवा किसी अन्य कारण से प्रभावित होने की संभावना से बचाना है।

5.10 आयोग की कार्यप्रणाली

अब तक हमने उस औपचारिक संरचना की चर्चा की है, जिसके अन्तर्गत राज्य लोक सेवा आयोग कार्य करता है। अब हम वास्तविक कार्य-प्रणाली की चर्चा करेंगे। वास्तविक कार्य-प्रणाली पर हमारी टिप्पणी दो पहलुओं पर केन्द्रित है। पहला, आयोग होने के बावजूद सरकार द्वारा सिविल सेवाओं की नियुक्ति में प्रश्रय का प्रयोग; तथा दूसरा, आयोग की सदस्यता का प्रश्न।

आयोग की सलाह को अस्वीकार करने के विरुद्ध सांविधानिक उपायों के बावजूद यह आलोचना की जाती है कि सरकार किसी न किसी रूप में नियुक्तियों में प्रश्रय का प्रयोग करती है।

i) **आयोग की पूर्व सलाह के बिना तदर्थ नियुक्तियाँ करना:** तदर्थ नियुक्तियाँ करने के लिए आयोग से परामर्श नहीं किया जाता है। बार-बार इनके नवीकरण से ऐसे लोगों को कार्य का आवश्यक अनुभव प्राप्त हो जाता है, जिससे वे नए आवेदक की तुलना में लाभकारी स्थिति में आ जाते हैं। ऐसे मामलों में, आयोग के पास और कोई उपाय नहीं होता।

ii) **कुछ पदों की श्रेणियों को लोक सेवा आयोग के क्षेत्राधिकार से बाहर रखनाः** सिद्धान्त रूप में सभी सिविल पदों पर भर्ती राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा की जाती है। परन्तु संविधान में यह व्यवस्था है कि कार्यकारी कुछ पदों को, आयोग के क्षेत्राधिकार से बाहर रख सकता है। इस स्थिति में तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी की नियुक्तियों में लोक सेवा आयोग का हस्तक्षेप नहीं होता। अधिक कार्य की मात्रा को ध्यान में रखते हुए यह समझा जा सकता है।

iii) **संबन्धित विभाग द्वारा विज्ञापन तैयार करनाः** रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए विभाग संबंधित विज्ञापन तैयार करता है। कभी-कभी यह विज्ञापन विभाग द्वारा किसी विशेष उम्मीदवार की योग्यता के अनुरूप तैयार किए जाते हैं। आयोग विज्ञापन की शर्तों, को नहीं बदल सकता है।

iv) **नियुक्ति पत्र जारी करने में देरीः** कभी-कभी चुने गए उम्मीदवारों को नियुक्ति पत्र देने में बहुत अधिक देरी हो जाती है। परिणामस्वरूप, अधिक योग्य उम्मीदवार दूसरे या अन्य व्यवसायों में चले जाते हैं।

उपरिलिखित स्थितियाँ योग्यता प्रणाली के क्रियान्वयन को प्रभावित करती है, तथा आयोग की भूमिका को कमज़ोर बनाती हैं। आयोग की सदस्यता कई अन्य कारणों से भी प्रभावित हैः

i) **पद के अनुकूल अपर्याप्त योग्यताओं वाले व्यक्तियों को सदस्यताः** राज्य लोक सेवा आयोग की सदस्यता के मामले की विपरीत प्रतिक्रिया हुई है। आलोचना यह है कि कुछ राज्यों में अपर्याप्त योग्यताओं वाले व्यक्तियों को सदस्य बनाया गया है। वास्तव में कुछ नियुक्तियाँ दल तथा राजनीतिक संबंधों के कारण की गई हैं। स्वाभाविक रूप से ऐसे लोग अपने राजनीतिक स्वामियों की ओर देखते हैं तथा उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि वे सिविल सेवाओं में योग्यता तथा व्यावसायिक विशेषज्ञता का पक्ष लेने के लिए अपने संरक्षकों के समक्ष खड़े होंगे। इससे लोक सेवा आयोगों के निष्पक्षता तथा स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने के सामर्थ्य के बारे में संदेह उत्पन्न होता है।

ii) **अधिकारी वर्ग के सदस्यों की प्रधानताः** आयोग की सदस्यता के संकीर्ण आधार के कारण भी आलोचना की जाती है। अधिकारी वर्ग की प्रधानता का मामला विवाद का विषय रहा है। अनुच्छेद 316 के अनुसार, यह आशा की जाती थी कि आयोग की सदस्यता के सरकारी तथा गैर-सरकारी घटक लगभग एक-दूसरे के बराबर होंगे। परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं हुआ है। अध्यापन, विधि, इंजीनियरिंग, विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा चिकित्सा शास्त्र जैसे व्यवसायों का या तो आयोगों में प्रतिनिधित्व नहीं या फिर अपर्याप्त प्रतिनिधित्व है। यह आवश्यक है कि व्यावसायिक विशेषज्ञों को लोक सेवा आयोगों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिले। इससे न केवल आयोग की सदस्यता के सरकारी तथा गैर-सरकारी घटकों को बराबर-बराबर रखने की सांविधानिक शर्त पूरी होगी, बल्कि उनके विचार-विमर्श में गुणात्मक सुधार की आशा भी इससे बढ़ेगी।

ऐसी विधियाँ लागू करने की अत्यावश्यक आवश्यकता है, जो नियुक्ति प्रक्रिया को अधिक विश्वसनियता प्रदान करेंगी, तथा वे निष्पक्ष और योग्यता आधारित होनी चाहिए। इस संदर्भ में, निर्दोष आचरण, निष्ठा और व्यावसायिक दक्षता वाले अधिकारियों का चयन सुशासन का आवश्यक घटक है। द्वितीय प्रशासनिक आयोग ने

यह सिफारिश की थी कि प्रस्तावित संघीय अधिनियमन के अनुरूप राज्य सिविल सेवा कानून के अधिनियमन के बाद, प्रस्तावित राज्य सिविल सेवा प्राधिकरण को राज्य सरकारों में वरिष्ठ अधिकारियों (मुख्य सचिव, प्रधान सचिवों, इंजिनीयर–इन–चीफ, आदि) की नियुक्ति और कार्यकाल से संबंधित मामलों पर कार्रवाई करनी चाहिए (Second Administration Reforms Commission, 2009, https://darpg.gov.in/sites/default/files/sdadmin15.pdf, pp. 40-41)।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणीः i) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) राज्य लोक सेवा आयोग को संवैधानिक स्तर प्रदान करने का क्या महत्त्व है?

....

....

....

....

....

2) आयोग को एक सलाहकारी निकाय क्यों बनाया गया है?

....

....

....

....

....

3) राज्य लोक सेवा आयोग की कार्य-प्रणाली की जाँच कीजिए।

....

....

....

....

5.11 निष्कर्ष

राज्य स्तर पर, अनेक प्रकार के नियामक तथा विकास संबंधी प्रकृति के कार्यों के निष्पादन ने यह आवश्यक कर दिया है कि बड़ी तथा सुगठित सिविल सेवाओं को बनाए रखा जाना चाहिए। ये योग्यता प्रणाली पर आधारित सिविल सेवाएँ हैं। ये सिविल सेवाएँ कैरियर सेवाएँ हैं, जिनकी भर्ती एक खुली प्रतियोगी परीक्षा द्वारा की जाती है।

योग्यता प्रणाली कैरियर सेवाएँ, तथा खुली प्रतियोगिता की अवधारणाओं का जन्म उन्नीसवीं सदी के दौरान सिविल सेवा प्रशासन को राजनीतिक हस्तक्षेप से स्वतंत्र

रखने के फलस्वरूप हुआ था। विचार यह था कि सिविल सेवाओं में भर्ती, वेतन, पदोन्नति तथा स्थानांतरण तकनीकी एवं व्यावसायिक कारणों पर आधारित होने चाहिए न कि राजनीतिक विचारों पर। जब इन मामलों में राजनीतिज्ञ हस्तक्षेप नहीं करते तो योग्यता प्रणाली के अंतर्गत नियुक्त लोक सेवक सरकारी व्यवस्था को निरंतरता प्रदान करते हैं। यहाँ तक कि जब राजनीतिक दलों के भाग्य पर आधारित मंत्री आते-जाते रहते हैं, और बिना प्रभावित हुए कार्य करते रहते हैं।

राजनीति से सिविल सेवा प्रशासन को छुटकारा दिलाने के लिए, यह आवश्यक है कि कार्य किसी ऐसी निष्पक्ष एजेंसी को सौंप दिया जाए, जिसकी अखंडता बोर्ड से ऊपर हो और जिसकी ईमानदारी पर कोई संदेह न हो तथा जो राजनीतिक कार्यकारी से आने वाले किसी भी दबाव का मुकाबला कर सके। यह विचार इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए आयोग के प्रकार के संगठन को स्थापित करने की आवश्यकता पर बल देता है। यह सुनिश्चित करने के लिए वह पक्षपात या डर से रहित होकर तथा राजनीतिक कार्यकारी से प्रभावित हुए बिना कार्य कर सके, इस एजेंसी को सांविधानिक स्तर प्रदान किया गया है। यह विशेषज्ञों का निकाय है, तथा इसकी सलाहकार की भूमिका है।

5.12 शब्दावली

कैरियर सेवा : इसका अर्थ उस कार्मिक प्रशासन से है, जो योग्यता तथा व्यावसायिक मापदंडों पर आधारित है। एक कैरियर सेवा में सिविल सेवा संबंधी आवश्यकताएँ समाविष्ट होती हैं, जिनमें खुली प्रतियोगी परीक्षा के आधार पर भर्ती, वर्गीकरण, कार्य-निष्पादन, मूल्यांकन, पदोन्नति तथा मनमाने ढंग से पदमुक्त करने के विरुद्ध सुरक्षा शामिल होती है।

सम्पन्न कार्य : यह (fait accompli) फ्रेंच भाषा का वाक्यांश है, जिसका अर्थ है वह कार्य जो पहले ही हो चुका है तथा परिवर्तन से परे है।

खुली प्रतियोगिता : इसमें कुछ तत्व शामिल होते हैं जैसे (i) पर्याप्त प्रचार, जिससे कि पदों की स्थिति तथा उनसे संबधित आवश्यक योग्यता की शर्तों के विषय में नौकरी की खोज करने वाले नागरिकों को जानकारी प्राप्त हो सके; (ii) आवेदन के अवसर; (iii) वास्तविक मापदंडः योग्यता के मापदंड कार्य के अनुसार हों तथा आवेदन के माध्यम से रुचि दिखाने वाले सभी आवेदकों के ऊपर निष्पक्षता से लागू हों; (iv) भेदभाव का न होनाः प्रयोग किए गए मापदंड़ों में रोज़गार के लिए योग्यता, तथा फिटनेस के कारकों को ही शामिल किया जाए; (v) योग्यता तथा चयन प्रक्रिया के आधार पर पद श्रेणी जो इस रैंकिंग (श्रेणीबद्धता) को प्रभावित करती है; और (vi) परिणामों की जानकारी तथा समीक्षा का अवसर।

5.13 संदर्भ लेख

Arora, R.K. & Goyal, R. (2013). *Indian Public Administration: Institutions and Issues.* New Delhi, India: New Age International Publishers.

Basu, D.D. (2019). *Introduction to the Constitution of India* (24th ed.). New Delhi, India: Lexis Nexis.

Government of India, Ministry of Personnel, Public Grievances and Pensions, Department of Personnel & Training. Retrieved from http://documents.doptcirculars.nic.in/D2/D02est/11012_10_2016-Estt-A-III-08122017.pdf

Hazarika, Niru (1979). *Public Service Commissions.* Delhi, India: Leeladevi Publications.

Maheshwari, S.R. (1979). *State Governments in India.* Delhi, India: Macmillan.

Sapru, R. (2018). *Indian Administration: A Foundation of Governance.* New Delhi, India: Sage Publications.

Second Administrative Reforms Commission. (2009). *State and District Administration*. Retrieved from https://darpg.gov.in/sites/default/files/sdadmin15.pdf

Stahl O, Glenn. (1975). *Public Personnel Administration.* New Delhi, India: Oxford and IBH.

The Constitution of India. Retrieved from https://www.india.gov.in/my-government/constitution-india/constitution-india-full-text

5.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

   - राज्य स्तर पर दो अलग-अलग प्रकार की लोक सेवाओं का होना।
   - राज्य सेवाएँ, जिनके कार्मिक राज्य स्तर पर सरकारी कार्यों को करने के लिए राज्य सरकारों द्वारा भर्ती किए जाते हैं।
   - अखिल भारतीय सेवाएँ, जिनके अधिकारी केन्द्र तथा राज्य दोनों स्तरों पर कार्यरत रहते हैं।

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

   - अखिल भारतीय सेवाओं का अर्थ तथा गठन।
   - भर्ती के बाद, अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों को एक निश्चित राज्य काडर का आबंटन प्रदान किया जाना।

- सावधिक प्रणाली।
- अखिल भारतीय सेवाओं द्वारा राज्य प्रशासन को एक समान योग्यता तथा प्रशासनिक विशेषज्ञता का स्तर प्रदान करना।
- राज्यों में, ज़िला स्तर तथा उसके ऊपर के स्तर पर वरिष्ठ प्रशासनिक पदों के लिए कार्मिक प्रदान करना।

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- भाग 5.4 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- आयोग की कार्य-प्रणाली में वस्तुनिष्ठता तथा निष्पक्षता सुनिश्चित करना।
- कार्यकारी से प्रभावित हुए बिना आयोग का कार्य करना।
- संवैधानिक स्तर प्रदान करना, जिसका स्वरूप आयोग की सत्ता तथा स्वतंत्रता पर अतिक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा का है।

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- भाग 5.8 देखिए।

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- भाग 5.10 देखिए।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 6 राज्य योजना बोर्ड*

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 योजना प्रणाली

6.3 राज्य योजना बोर्ड

6.4 चयनित राज्यों में राज्य योजना बोर्ड का प्रदर्शन

6.5 निष्कर्ष

6.6 शब्दावली

6.7 संदर्भ लेख

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात्, आपः

- राज्य योजना बोर्ड के महत्व को समझ सकेंगे;
- राज्य योजना आयोग की संरचना पर चर्चा कर सकेंगे;
- राज्य योजना बोर्ड के कार्यों की व्याख्या कर सकेंगे; तथा
- विभिन्न राज्यों में, राज्य योजना बोर्ड के कार्य-निष्पादन की जाँच कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

योजनाबद्ध सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए भारत की प्रतिबद्धता, सामाजिक, आर्थिक और संस्थागत साधनों के माध्यम से नागरिकों की समाजिक तथा आर्थिक स्थितियों में सुधार के लिए सरकार के दृढ़ संकल्प का प्रतिबिंब है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्, सरकार का अगला महत्वपूर्ण कदम, ब्रिटिश शासन से विरासत में मिली पिछड़ी और स्थिर अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करना था। जैसा कि योजना का उल्लेख भारत के संविधान की समवर्ती सूची में किया गया है, अतः योजनाबद्ध विकास योजना का पद्धतिबद्ध निर्माण, कार्यांन्वयन और मूल्यांकन की ज़िम्मेदारी केंद्र एवं राज्यों की है। राज्य स्तर पर, यह अनुभव किया गया कि योजना विभागों को आयोजन/योजना बनाने की प्रक्रिया में विषय विशेषज्ञों की सलाह और समर्थन की आवश्यकता है। उपरोक्त के मद्देनजर, अधिकांश राज्यों में राज्य योजना बोर्ड/राज्य योजना आयोग स्थापित किये गए थे। द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार, राज्य योजना बोर्ड को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि ज़िले की योजनाएँ राज्य की योजनाओं के साथ एकीकृत हैं, जो उनके द्वारा तैयार की गई हैं। इस संबंध में,

---

* *योगदानः* डॉ. विश्वरंजन मोहांती, सहायक प्रोफेसर, श्री गुरूतेग बहादुर खालसा कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

आयोग ने सभी राज्यों को स्थानीय निकायों की योजनाओं को समेकित करने के बाद ही अपनी विकास योजनाओं को तैयार करने के लिए इसे अनिवार्य बनाने पर ज़ोर दिया। हालांकि बोर्ड की स्थिति, और इसकी योजना में प्रभाविकता एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न होती है। यह देखा गया कि बढ़ती, मुक्त और उदारीकृत अर्थव्यवस्था के साथ, हमें विकास की प्रक्रिया की अवधारणा के लिए, उपकरणों एवं दृष्टिकोणों पर पुनर्विचार करना होगा। परिणामस्वरूप, 1 जनवरी 2015 को, आर्थिक नीति-निर्माण की प्रक्रिया में भारत की राज्य सरकारों की भागीदारी को बढ़ावा देकर, सहकारी संघवाद के साथ संधारणीय विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के उद्देश्य से केंद्र में नीति आयोग की स्थापना की गयी। यह आशा की गयी कि यह दृष्टिकोण, रणनीति तथा कार्रवाई का एजेंडा बदलती हुई सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं के साथ विकास की रणनीति संरेखित करने में योगदान देगा।

योजना-प्रक्रिया में, निम्नलिखित की महत्वपूर्ण भूमिका हैः

i) नीति आयोग;

ii) राज्य योजना बोर्ड/आयोग; और

iii) ज़िला योजना समितियाँ/एजेंसियाँ, जो विकेंद्रीकृत योजना की संस्थाओं द्वारा समर्थित हैं।

जैसा कि हम पाठ्यक्रम बीपीएसी-133 में नीति आयोग के बारे में विस्तारपूर्वक अध्ययन कर चुके हैं, इसलिए इस इकाई में हम राज्य योजना बोर्ड और राज्य योजना आयोग पर ध्यान केंद्रित करेंगे। राज्य स्तर की प्रशासनिक सुधार समितियों ने राज्य स्तर पर बोर्ड या आयोग की तरह संस्था की स्थापना का सुझाव दिया था। इस संबंध में, भारत सरकार के योजना आयोग ने राज्य स्तर पर, एक राज्य योजना आयोग के सृजन का सुझाव दिया था। आयोग ने सदैव एकीकृत, व्यावहारिक और कुशल योजना प्रक्रिया के लिए राज्य योजना मशीनरी को सुदृढ़ करने का पक्ष लिया है। अतः योजना आयोग ने प्रत्येक राज्य में एक राज्य योजना बोर्ड स्थापित करने की सिफारिश की थी। इस संदर्भ में, पहले प्रशासनिक सुधार आयोग ने वर्ष 1967 में योजना के महत्व पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। प्रशासनिक सुधार समिति ने भी योजना बोर्ड के गठन की सिफारिश की थी। इस प्रकार अधिकांश राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों ने राज्य योजना बोर्ड/राज्य योजना आयोग की स्थापना की है। हालांकि बोर्ड की स्थिति, और इसकी प्रभाविकता एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न होती है। इस इकाई में, राज्य योजना बोर्ड के महत्व को ध्यान में रखते हुए, हम राज्य स्तर पर राज्य योजना बोर्ड की संरचना और कार्यों की व्याख्या करेंगे। इसके अतिरिक्त हम, योजना बोर्ड को सुदृढ़ बनाने के लिए आवश्यक उपाय सुझाएंगे।

6.2 योजना प्रणाली

राज्य के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए योजना महत्वपूर्ण है। इस संबंध में, विकास और प्रशासन में केंद्र और राज्य सरकारों के मध्य विकास और प्रशासन में एक टीम की भांति घनिष्ठता और सहयोग तीव्र सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए अपरिहार्य एवं महत्वपूर्ण है। योजनाओं के सुनियोजित गठन, कार्यांवयन और मूल्यांकन का उत्तरदायित्व केंद्र, राज्य और स्थानीय सरकारों का होता है। राज्य स्तर पर योजना विभाग का नेतृत्व राज्य के मुख्यमंत्री अथवा कैबिनेट के वरिष्ठ मंत्री करते हैं।

योजना से संबंधित प्रमुख मुद्दों पर राज्य के मुख्यमंत्री के साथ चर्चा की जाती है या उनके पास योजना प्रस्ताव का प्रारूप पहुँचता है, और मुख्यमंत्री के माध्यम से वे अनुमोदन के लिए मंत्रिमंडल में पहुँच जाता हैं। यह देखा गया है कि प्रशासनिक स्तर पर, मुख्य सचिव ही अधिकतर योजना विभाग का प्रमुख होता है। उदाहरण के लिए, राजस्थान में यह प्रथा लगभग तीन दशकों तक चली। वर्ष 1992 में, अलग से योजना सचिव (अब जो कि प्रधान सचिव) की नियुक्ति की गयी। अधिकांश राज्यों में, योजना सचिव अथवा प्रधान योजना सचिव योजना विभाग के प्रशासन की देखरेख करते हैं। राज्य योजना से संबंधित सभी तात्कालिक और महत्वपूर्ण मामलों का प्रशासनिक स्तर पर मुख्य सचिव द्वारा निपटारा किया जाता है, जो उन्हें राजनीतिक स्तर तक पहुँचाता है।

विविध राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में प्रशासनिक संगठनों में बहुलता के कारण योजना तंत्र के लिए एक समान पैटर्न होना संभव नहीं है। प्रत्येक राज्य में, योजना विभाग है जो योजना के निर्माण एवं योजना की मॉनिटरिंग; और मूल्यांकन विंग द्वारा मूल्यांकन के लिए उत्तरदायी है। अनिवार्य रूप से, योजना विभाग राज्य में विकास के प्रयासों में समन्वय स्थापित करने के लिए उत्तरदायी है। अधिकांश राज्यों में, राज्य योजना विभाग के प्रशासनिक छत्र के भीतर अर्थशास्त्र और सांख्यिकी विभाग, जनशक्ति एवं मूल्यांकन विभाग हैं। अर्थशास्त्र और सांख्यिकी विभाग राज्य एवं निचले स्तरों पर और योजना कार्यक्रमों की मॉनिटरिंग के लिए तकनीकी कार्मिक प्रदान करता है। जनशक्ति विभाग आगामी वर्षों में जनशक्ति की आवश्यकता का आकलन करता है; और इन ज़रूरतों को पूरा करने के लिए कार्य-योजनाओं को सम्मिलित करने के लिए योजना प्रक्रिया को इस तरह से सक्षम बनाता है, ताकि योजना के कार्यांवयन के लिए संपूर्ण जनशक्ति की आवश्यकताएँ पूर्ण हों। इसके अतिरिक्त, जनशक्ति विभाग को कभी-कभी इन-सर्विस (नौकरी के दौरान) प्रशिक्षण के लिए योजना बनाने का उत्तरदायित्व; और राज्यों के अधिकारियों का अभिविन्यास सौंपा जाता है। जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है कि मूल्यांकन विभाग को समवर्ती या पूर्वोत्तर तथ्यों के आधार पर किये जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों का मूल्यांकन अध्ययन करने का कार्य सौंपा गया है। इस तरह के अध्ययन, योजनाओं के संदर्भ में सुधारात्मक कार्यवाहियों को सक्षम बनाने के लिए राज्य सरकार को फीडबैक प्रदान करते हैं।

राज्य में योजना प्रणाली को समझने के लिए, हम मेघालय की योजना प्रणाली का उदाहरण लेकर चर्चा करेंगे। योजना प्रशासन (सचिवालय में) स्थापना से संबंधित सभी मामलों से संबंधित हैं। मुख्यालय में योजना मशीनरी; और ज़िला योजना कार्यालय इसके नियंत्रण में है। यह राज्य योजना बोर्ड, ज़िला योजना एवं विकास परिषद्, क्षेत्रीय योजना एवं विकास परिषद्, मेघालय आर्थिक विकास परिषद् और मेघालय संसाधन एवं रोज़गार सृजन परिषद् के गठन से संबंधित सभी मामलों से भी संबंधित है।

अनुसंधान विंग, राज्य नियोजन की मशीनरी है, जो राज्य में सभी विकास संबंधी गतिविधियों के प्रबंधन के लिए जवाबदेह है और योजना और विकास के मामले में, भारत सरकार और अन्य एजेंसियों के साथ एक आयोजन और संपर्क निकाय के रूप में कार्य करता है। योजना अनुसंधान विंग एक स्वतंत्र निकाय है जिसे "मेघालय योजना सेवा" के रूप में जाना जाता है।

राज्य स्तर पर योजना विभाग, विभिन्न विकास विभागों की सभी विकास से संबंधित गतिविधियों का समन्वय करता है, जिसमें राज्य योजना, केन्द्र प्रायोजित तथा केंद्रीय क्षेत्र की योजनाएँ, व्यपापनीय संसाधनों का केंद्रीय पूल, बाह्य सहायता प्राप्त परियोजनाएँ, केन्द्र सरकार के फ्लेगशिप कार्यक्रम आदि सम्मिलित हैं।

ज़िला स्तर पर योजना मशीनरी के उत्कृष्ट प्रदर्शन को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से, ज़िला योजना संगठन का स्वामित्व ज़िला योजना अधिकारी के पास है। ज़िला कार्यालय का गठन उपायुक्त कार्यालय के अन्तर्गत सभी ज़िलों में किया गया है। जिसकी अध्यक्षता ज़िला योजना अधिकारी, कार्यालय के अध्यक्ष के रूप में करता है।

अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी निदेशालय, योजना विभाग की प्रशासनिक शक्ति के अंतर्गत आने वाला एक निदेशालय है। यह निदेशालय राज्य में सभी आर्थिक और सांख्यिकीय जानकारी के लिए उत्तरदायी है। यह सांख्यिकीय हैंडबुक, आर्थिक सर्वेक्षण, एवं अनुमान सामने लाता है। निदेशालय का नेतृत्व एक पूर्णकालिक निदेशक करता है। यह अधिकारी मेघालय अर्थशास्त्र और सांख्यिकी सेवा के सदस्य होते हैं।

राज्य में विज्ञान और प्रौद्योगिकी मामलों को निर्देशित करने और बनाये रखने के लिए, योजना विभाग के नियंत्रण में एक विज्ञान और प्रौद्योगिकी सेल/प्रकोष्ठ काम कर रहा है। यह राज्य विज्ञान परिषद्, प्रौद्योगिकी एवं पर्यावरण, विज्ञान केंद्र तथा जैव-संसाधन विकास केंद्र जैसी संस्थाओं के उपायों का प्रबंधन करता है।

यह संगठन योजना तैयार करने, और योजनाओं के क्रियान्वयन की समीक्षा से भी संबंधित है। ज़िला स्तर पर ज़िला योजना और विकास परिषद्, ज़िला योजनाओं को तैयार करता है; और ज़िले में विकासात्मक गतिविधियों की निगरानी और समीक्षा भी करता है।

उपरोक्त कथनों के माध्यम से यह महसूस किया जा रहा है कि योजना-प्रक्रिया में विशिष्ट क्षमता का एक तत्व प्रस्तुत करने के लिए नियमित नौकरशाही संगठन को विषय-विशेषज्ञों की सहायता की आवश्यकता है। परिणामस्वरूप, विभिन्न समितियों और आयोगों की सिफारिशों के आधार पर राज्य योजना विभाग के अतिरिक्त, कई राज्यों में राज्य योजना बोर्ड/राज्य योजना आयोग भी है। राज्य योजना बोर्ड में मुख्यमंत्री के रूप में अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, विषय-विशेषज्ञ, ग़ैर-शासकीय और अधिकारी शामिल होते हैं। अगले भाग में, हम राज्य योजना बोर्ड/राज्य योजना आयोग की संरचना, भूमिका और कार्यों की व्याख्या करेंगे।

6.3 राज्य योजना बोर्ड

राज्य स्तर पर, कुछ राज्यों में राज्य योजना बोर्ड या राज्य योजना आयोग ने प्रभावी योगदान दिया है। राज्य योजना बोर्ड के प्रमुख कार्यों में योजनाओं का निर्धारण तथा उनकी निगरानी करना, और राज्य में दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य योजनाओं का निर्धारण करना; वित्तीय संसाधनों को सक्रिय करना तथा विकास के लिए विभिन्न तंत्रों को अपनाना; राष्ट्रीय योजनाओं की प्राथमिकताओं के ढाँचे के भीतर राज्य की योजना प्राथमिकताएँ निर्धारित करना; ज़िला प्राधिकरणों को अपनी विकास योजनाओं को तैयार करने में सहायता करना, विशेषकर ऐसे क्षेत्रों में जहाँ इस तरह की योजनाओं को उपयोगी और व्यवहार्य माना जाता है; राज्य के संसाधनों के सर्वाधिक प्रभावी और संतुलित उपयोग के लिए योजना तैयार करना; प्राथमिकताएँ निर्धारित करना,

योजनाओं की अवस्थाओं को परिभाषित करना, जिनमें योजनाओं को पूरा किया जाना चाहिए; प्रत्येक चरण की उचित पूर्ति के लिए संसाधनों का आबंटन प्रस्तावित करना; राज्य योजना बोर्ड द्वारा वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों को ध्यान में रखते हुए योजना के सफल निष्पादन के लिए उन कारकों को इंगित करना जो आर्थिक विकास को मंद करते हैं, और उन परिस्थितियों को निर्धारित करना जो सफल निष्पादन के लिए बनाई जानी आवश्यक है; मशीनरी की प्रकृति का निर्धारण करना, जो इसके सभी पहलुओं में योजना की प्रत्येक अवस्था के सफल कार्यान्वयन को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक होगा; और समय-समय पर, योजना की प्रत्येक अवस्था के निष्पादन में प्राप्त प्रगति, और नीति के समायोजन और उपायों की सिफारिश करना जो आवश्यक हो सकते हैं। इस संदर्भ में, हम आगामी भाग में राज्य योजना बोर्ड की संरचना, कार्यों और भूमिका के साथ-साथ केरल राज्य योजना बोर्ड के कार्यों पर भी विस्तृत चर्चा करेंगे।

केरल राज्य योजना बोर्ड

राज्य सरकार के उपलब्ध संसाधनों के वैज्ञानिक आकलन और विकास की प्राथमिकताओं के आधार पर योजनाएं तैयार करने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से केरल राज्य योजना बोर्ड का गठन किया गया था। यह उल्लेखनीय है कि बोर्ड को प्रत्येक वर्ष राज्य की आर्थिक समीक्षा रिपोर्ट के प्रकाशन का कार्य भी सौंपा गया। केरल राज्य योजना बोर्ड की अवधि पाँच वर्ष की है। यह भी उल्लेखनीय है कि वर्ष 1967 से राज्य योजना बोर्ड को पन्द्रह बार पुनर्गठित किया गया। इस प्रकार योजना बोर्ड अपनी विशेषज्ञता के माध्यम से विकास योजनाओं/परियोजनाओं के लिए प्रभावी योजना और बेहतर कार्यान्वयन की सुविधा देता है।

क) राज्य योजना बोर्ड की संरचना और ढांचा

राज्य का मुख्यमंत्री बोर्ड का अध्यक्ष होता है, और इसका उपाध्यक्ष अंशकालिक और ग़ैर-शासकीय होता है। केरल राज्य योजना बोर्ड की संरचना, जिसे वर्ष 2016 में पुनर्गठित किया गया वह इस प्रकार हैः

i) अध्यक्ष - मुख्यमंत्री

ii) उपाध्यक्ष

iii) सदस्य

- राजस्व एवं आवास मंत्री
- जल संसाधन मंत्री
- परिवहन मंत्री
- बंदरगाह, संग्रहालय, पुरातत्व एवं अभिलेखागार मंत्री
- वित्त मंत्री

ग़ैर-मंत्रालयिक सदस्य (सात विशेषज्ञ)

iv) सदस्य सचिव

v) स्थायी अतिथि सदस्य

- मुख्य सचिव, केरल सरकार
- अतिरिक्त मुख्य सचिव, वित्त विभाग, केरल सरकार

सदस्य

बोर्ड के सदस्यों को सरकार द्वारा नामित किया जाता है और वे चर्चाओं को सुगम बनाते हैं। ये चर्चाएं योजना निर्माण, क्रियान्वयन और अन्य नीतिगत मुद्दों पर की जाती हैं।

सदस्य सचिव

सदस्य सचिव, जो संस्था का प्रमुख है, केरल राज्य बोर्ड के आधिकारिक सदस्य के रूप में भी कार्य करता है। वह संबंधित विभागों और एजेंसियों के माध्यम से बोर्ड की बैंठकें आयोजित करने और निर्णयों के कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी है। तकनीकी प्रभागों के प्रमुख सदस्य, सचिव को तकनीकी मामलों में उसका समर्थन करते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रशासनिक अधिकारी प्रशासनिक मामलों में सदस्य सचिव की सहायता करते हैं।

मुख्य आर्थिक सलाहकार

केरल सरकार द्वारा नीतिगत मामलों और अन्य विषयों पर बोर्ड को सलाह देने के लिए सलाहकार नियुक्त किया गया है, जिन्हें योजना बोर्ड द्वारा माना जाता है।

निदेशक, प्रोजेक्ट फाइनेंसिंग सेल

बाह्य वित्त सहायता व्यवहार्यता की जाँच के लिए, जिसमें राज्य के सार्वजनिक-निजी भागीदारी वाले सभी प्रोजेक्ट शामिल होंगे, केरल राज्य सरकार ने 2012 में एक प्रोजेक्ट फाइनेंसिंग सेल का गठन किया था।

केरल राज्य योजना बोर्ड : प्रशासनिक संरचना

केरल राज्य बोर्ड में निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

i) तकनीकी प्रभाग;

ii) प्रशासनिक विंग;

iii) ज़िला योजना कार्यालय; और

iv) पुस्तकालय।

इसके अतिरिक्त प्रोजेक्ट फाइनेंसिंग सेल भी योजना बोर्ड की प्रशासनिक संरचना का हिस्सा है। राज्य योजना बोर्ड के कार्य इसके तकनीकी प्रभागों के माध्यम से किए जाते हैं। प्रभाग प्रमुख विकास के मुद्दों का विशेषज्ञ है। प्रत्येक प्रभाग में, संयुक्त निदेशक, उप निदेशक, सहायक निदेशक, अनुसंधान अधिकारी और अनुसंधान सहायक प्रमुख की सहायता करते हैं। हालाँकि प्रशासनिक मामलों में, एक प्रशासनिक अधिकारी सदस्य सचिव की सहायता करता है।

अब हम राज्य योजना बोर्ड के निम्नलिखित घटकों पर संक्षिप्त में चर्चा करेंगे।

i) तकनीकी प्रभाग

राज्य योजना बोर्ड में, निम्नलिखित प्रभाग बोर्ड के तकनीकी कार्यों को पूरा करते हैं :

- कृषि प्रभाग

- उद्योग और अवसंरचना प्रभाग
- समाजिक सेवा प्रभाग
- विकेंद्रीकृत योजना प्रभाग
- परिप्रेक्ष्य योजना प्रभाग
- योजना समन्वय प्रभाग
- मूल्यांकन प्रभाग

ii) प्रशासनिक विंग

वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी एक प्रशासनिक विंग का प्रमुख होता है। इसमें स्थापना अनुभाग, लेखा, कंप्यूटर, प्रकाशन और योजना प्रचार अनुभाग सम्मिलित हैं। इस विंग में, प्रशासनिक सहायक और वित्त अधिकारी स्थापना तथा लेखा अनुभागों के प्रभारी हैं। वरिष्ठ अधीक्षक फेयर कॉपी और कंप्यूटर अनुभागों के प्रभारी हैं; और प्रकाशन अधिकारी, और योजना प्रचार अधिकारी क्रमशः प्रकाशन ओर योजना प्रचार अनुभागों का प्रबंधन करते हैं।

iii) ज़िला योजना कार्यालय

विकेंद्रीकृत भागीदारी योजना के लिए ज़िला योजना इकाइयों की स्थापना की गयी थी। ये ज़िला योजना कार्यालय योजना बोर्ड के मार्ग-दर्शन में कार्य करते हैं; और वे ज़िला कलक्टर के नियंत्रण में रहते हैं। ज़िला योजना कार्यालय के अधिकारियों को ज़िला कलक्टर का पदेन व्यक्तिगत सहायक और ज़िला विकास परिषद् के सचिव के रूप में नामित किया जाता है। ज़िला योजनाओं के निर्माण, कार्यान्वयन और मूल्यांकन में ज़िला योजना कार्यालय महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

iv) केरल राज्य योजना बोर्ड पुस्तकालय

राज्य योजना बोर्ड पुस्तकालय सरकारी संस्थाओं द्वारा प्रबंधित सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में से एक है। यह एक विशेष पुस्तकालय है, जिसमें आर्थिक विकास, योजना, भारतीय अर्थशास्त्र, वित्त, प्रबंधन, उद्योग, राष्ट्रीय/विश्व विकास रिपोर्ट और विश्व बैंक की रिपोर्ट हैं। यहाँ 20 हजार से अधिक पुस्तकें सग्रहित हैं।

उपरोक्त के अतिरिक्त, राज्य योजना बोर्ड के आधुनिकीकरण को बढ़ाने और सूचना प्रौद्योगिकी को प्रेरित करने के लिए 1999 में आई टी विंग का गठन किया गया था। इस विंग का प्रभारी योजना समन्वय प्रभाग का प्रमुख होता है। दैनिक कार्यों के लिए प्रोग्रामर, तकनीकी सलाहकार, और एक आई टी नोडल अधिकारी प्रभारी का समर्थन करते हैं।

ख) केरल राज्य योजना बोर्ड : प्रमुख कार्य

i) आर्थिक प्रगति और आवश्यक प्रयासों का आकलन

केरल राज्य योजना बोर्ड अर्थव्यवस्था की प्रगति का निरंतर आकलन और इसकी संभावनाएँ तथा समस्या पता लगाने का प्रयास करता रहता है; और नीतियों,

प्राथमिकताओं तथा कार्यक्रमों में आवश्यक सुधार और परिवर्तन का सुझाव देता है, जिसमें निम्नलिखित शामिल हैंः

- योजनाओं का निर्माण, मॉनिटरिंग और कार्यान्वयन;
- नागरिकों के लिए सेवाओं की गुणवत्ता, उत्पादकता और विकास के लिए अधिशेष के सृजन पर ध्यान केंद्रित करते हुए सार्वजनिक उद्यमों के प्रदर्शन में सुधार के लिए आवश्यक उपाय सुझाना;
- प्रभावी विकेंद्रीकृत योजना और विकास, और परियोजनाओं में स्थानीय लोगों की भागीदारी बढ़ाना; तथा
- कार्य बलों, विशेषज्ञ समितियों और कार्य समूहों के माध्यम से कार्यों के उचित निर्वहन के लिए आवश्यक अध्ययन, सर्वेक्षण और शोध करना।

ii) **आर्थिक समीक्षा की तैयारी**

राज्य योजना बोर्ड को वार्षिक आर्थिक समीक्षा तैयार करने की ज़िम्मेदारी सौंपी गयी थी, जिसे बोर्ड द्वारा तैयार और प्रकाशित किया गया है। इस संदर्भ में, आर्थिक समीक्षा के 50 प्रारम्भिक अंकों को (1959 से 2009) डिजीटल करके 2010 में प्रकाशित किया गया। आर्थिक समीक्षा रिपोर्ट एक महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ के रूप में सामने आई है, क्योंकि यह राज्य की अर्थव्यवस्था, समग्र-आर्थिक प्रदर्शन, उस विशेष वर्ष के दौरान विभिन्न विभागों द्वारा की गई विकास पहलों, योजना कार्यांवयन में प्रगति आदि के बारे में समग्र दृष्टिकोण प्रदान करती है, इसलिए इसे मूल्यवान संदर्भ ग्रंथ माना जाता है।

iii) **योजना का निर्माण**

योजनाओं के निर्माण के लिए बोर्ड ज़िम्मेदार है। इस संबंध में, योजना का आकार तय करने के लिए उपलब्ध संसाधनों का आकलन किया जाता है। राज्य योजना बोर्ड, सभी सचिवों और विभागाध्यक्षों को बोर्ड को योजना प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए परिपत्र निर्देश जारी करता है। अतः योजना प्रस्तावों के लिए संबंधित मंत्री की सहमति प्राप्त करना, सचिवालय में प्रशासनिक विभागों की ज़िम्मेदारी है ।

राज्य योजना बोर्ड में योजनाबद्ध प्रस्तावों का मूल्यांकन किया जाता है; और प्रत्येक विभाग के प्रस्ताव पर विस्तृत चर्चा के आधार पर अस्थायी प्राथमिकताओं की अनुमति दी जाती है। इसके बाद योजना बोर्ड मसौदा योजना प्रस्तावों का मसौदा तैयार करता है, जिसे अनुमोदन के लिए बोर्ड/मंत्रिमंडल के समक्ष रखा जाता है। जैसे कि प्रभावी योजना वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। इसलिए राज्य से ज़िला स्तर तक, सुव्यवस्थित योजना मॉनिटरिंग तंत्र स्थापित किया गया है।

इस प्रकार, अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य योजना बोर्ड ने एक सलाहकार बोर्ड के रूप में प्रभावी योगदान दिया है। योजना बोर्ड ने राज्य में उपलब्ध संसाधनों के वैज्ञानिक आकलन के आधार पर विकास योजनाओं का चित्रण करने में केरल सरकार की सहायता की है। इसके अतिरिक्त, बोर्ड के सदस्यों और कर्मचारियों ने एक व्यापक वार्षिक आर्थिक समीक्षा रिपोर्ट भी तैयार की जो कि केरल के भविष्य की योजनाओं और विकास के लिए आवश्यक आधार सिद्ध हुई है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थानों का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) भारत में राज्य स्तर पर योजना प्रणाली पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

2) केरल राज्य बोर्ड की संरचना और ढाँचे की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

3) केरल राज्य योजना बोर्ड के प्रमुख कार्य क्या हैं?

....

....

....

....

....

6.4 चयनित राज्यों में राज्य योजना बोर्ड का प्रदर्शन

इसमें, हम राज्य योजना बोर्ड/राज्य योजना आयोग की भूमिका की जाँच करेंगे; और चयनित राज्यों में योजना और संधारणीय विकास योजनाओं में उनके प्रदर्शन को बेहतर बनाने के लिए आवश्यक सुझाव देंगे। चयनित राज्यों में, हमने पहले ही इस इकाई के पिछले भाग (6.3) में केरल राज्य योजना बोर्ड की भूमिका पर गहन चर्चा की है और पाया है कि बोर्ड केरल में प्रभावी ढंग से कार्य कर रहा है। अब हम तमिलनाडु राज्य योजना आयोग (राज्य में इसका नाम दिया गया है) पर ध्यान केंद्रित करेंगे। आयोग द्वारा योजना, परियोजनाओं और कार्यक्रमों के निर्माण और कार्यान्वयन के लिए विशेष अध्ययन; मूल्यांकन और अनुप्रयुक्त अनुसंधान विभाग के माध्यम से प्रमुख योजना स्कीम का मूल्यांकन; मानव विकास सूचकांक, जेंडर विकास सूचकांक, आदि को असंगठित स्तर पर प्रभावित करने वाले विकास संकेतकों की मॉनिटरिंग की गई; राज्य की अर्थव्यवस्था को मॉनिटर किया गया और रिपोर्ट सरकार को भेजी गयी; तमिलनाडु राज्य में क्षेत्रीय विषमताओं को दूर करने के लिए राज्य बैलेंस्ड ग्रोथ फंड

को लागू और मॉनिटर किया गया; ज़िला प्रकोष्ठों के कार्यों का समन्वय करके ज़िला/ब्लॉक/ग्राम स्तर पर योजना प्रक्रिया का शुभांरभ किया गया। इसके अतिरिक्त, तमिलनाडु इनोवेशन इनिशिएटिवस की स्थापना और राज्य इनोवेशन फंड की स्थापना में राज्य योजना आयोग का योगदान रहा। इस प्रकार, तमिलनाडु राज्य में राज्य योजना आयोग प्रभावी योगदान दे रहा है।

हमारा अगला राज्य मेघालय है, जो योजनाओं के निर्माण में एक विशिष्ट विकास और योजना दृष्टिकोण का अनुसरण करता है। विकास योजना संरचना में, मुख्य रूप से राज्य स्तर पर योजना बोर्ड और ज़िला स्तर पर ज़िला योजना बोर्ड और विकास परिषद् सम्मिलित हैं। वर्ष 2004 में, योजना संगठन के एक और स्तर क्षेत्रीय योजना और विकास परिषद् को जो बड़े पैमाने पर ग़ैर-कार्यात्मक है, जोड़ा गया था। यहाँ राज्य योजना बोर्ड और ज़िला योजना और विकास परिषद् अधिक व्यापक और महत्वपूर्ण हैं। मेघालय राज्य योजना बोर्ड राज्य में सबसे शीर्ष योजना सलाहकार निकाय हैं। यह एक परामर्शदात्री बोर्ड की तरह कार्य करता है, जो योजनाएँ तैयार करने के संबंध में सरकार को सलाह देता है। आवश्यकता के अनुसार बोर्ड में विशेषज्ञों को भी सम्मिलित किया जाता है। बोर्ड की बैंठकें सरकारी विभाग के साथ समय-समय पर तय की जाती हैं। यह योजना तैयार करने और योजनाओं के क्रियान्वयन में सलाह देते हैं। जिसमें, विभिन्न योजना प्रस्तावों की समीक्षा भी सम्मिलित है। इसके सुचारू रूप से संचालन के लिए, एक आयुक्त और सचिव, विशेष अधिकारी तथा पदेन अवर सचिव, अनुसंधान अधिकारी आदि इसमें शामिल किये जाते हैं।

बोर्ड के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं:

i) राज्य की राजधानी के प्राप्य और संभावित संसाधनों की एक सूची की व्यवस्था करना;

ii) राज्य के संसाधनों के सबसे अनुकूल और संतुलित उपयोग के लिए परिप्रेक्ष्य योजना की व्यवस्था करना, और योजना की प्राथमिकताओं को इंगित करना;

iii) योजना-निर्माण के संबंध में सरकार को सलाह देना;

iv) उन कारकों की पहचान के लिए योजनाओं के कार्यान्वयन में वृद्धि का मूल्यांकन करना, जो राज्य के आर्थिक विकास को मंद कर रहे हैं और योजनाओं के निष्पादन के लिए बनाई जाने वाली परिस्थितियों को निर्धारित करना; और

v) उन अध्ययनों और कार्यों को करना जो इसे समय-समय पर सौंपे जा सकते हैं, और उपयुक्त सिफारिशें करना।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर, यह कहा जा सकता है कि मेघालय राज्य योजना बोर्ड न केवल एक सलाहकारी निकाय है, अपितु योजना-प्रक्रिया को प्रभावी बनाने में योगदान भी दे रहा है।

केरल, तमिलनाडु और मेघालय राज्यों में यह देखा गया है कि राज्य योजना बोर्ड/आयोग प्रभावी ढंग से कार्य कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त, पंजाब राज्य योजना बोर्ड विभिन्न योजनाओं तक पहुँच के बारे में सुझाव दे रहा है। उन योजनाओं का प्रारूपण, पंजाब राज्य के संसाधनों एवं सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं को संतुलित

करने, योजनाओं और परियोजनाओं का मूल्यांकन करने, और संसाधन जुटाने के लिए उपयुक्त सुझाव देने; तथा दीर्घकालिक विकास के लिए ये विज़न प्रदान करता है। इस संबंध में अरोड़ा और गोयल के मतानुसार,''हालांकि एक सलाहकार बोर्ड है, यह सचिवालय स्तर पर योजना विभाग के रूप में कार्य करता है और राज्य सरकार के अन्य प्रशासनिक विभागों को सलाह देता है। इसने राज्य स्तर पर परियोजनाओं के लिए केंद्रीय सहायता बढ़ाने और प्राप्त करने में प्रमुख भूमिका निभाई है।'' राजस्थान, कर्नाटक, बिहार, उत्तर प्रदेश और ओडिशा में राज्य वित्त आयोग की कार्य-प्रणाली में सुधार के लिए आवश्यक प्रयास की आवश्यकता है। राजस्थान में, शुरू से ही, राज्य योजना बोर्ड के कामकाज के लिए अधिकारी वर्ग का समर्थन आधा-अधूरा और अभाव-ग्रस्त रहा है। इसका मुख्य कारण योजना विभाग के रूप में राजनीतिक नेताओं और मौजूदा सरकारी मशीनरी के साथ नौकरशाहों की शालीनता है। योजनाओं के निर्माण के दौरान अन्तर-विभागीय और अंतर-स्तरीय चर्चाओं को शामिल करते हुए, लम्बी अवधि में, कठोर प्रक्रियाएं और तरीके विकसित किए गए हैं। एक मत यह भी है कि बाहर के कुछ अंशकालिक विशेषज्ञ, विशेषज्ञों की योजना-प्रक्रिया में यथार्थवादी विज़न नहीं ला पाएंगे। संक्षेप में, राज्य योजना बोर्ड को समर्थन की कमी इस दृष्टिकोण से उभरती है कि संसाधनों के आवश्यक स्तर के अभाव में ऐसा बोर्ड राज्य स्तर पर योजना-प्रक्रिया की गुणवत्ता में सकारात्मक अंतर लाने में असमर्थ होगा। उदाहरण के लिए, ओडिशा राज्य योजना बोर्ड ने विभिन्न क्षेत्रों के लिए रणनीति तैयार की है; और 12वीं पंचवर्षीय योजना के लिए एक दृष्टिकोण पत्र का मसौदा तैयार किया था, इस दृष्टिकोण पत्र में, मानव विकास संकेतकों में सुधार लाने और सामाजिक क्षेत्रों, विशेष रूप से स्वास्थ्य, शिक्षा तथा अन्य सामाजिक सुरक्षा नेट्स जैसे सामाजिक क्षेत्रों में निवेश को बढ़ाने पर पर्याप्त ज़ोर दिया गया था (Arora, 2013)। यद्यपि समयानुसार अध्यक्षों और सदस्यों की नियुक्ति की गई है, लेकिन दस वर्षों में बोर्ड की बैठक आयोजित नहीं की गई है। इस संबंध में, ओडिशा सरकार ने यह सुनिश्चित करने के लिए प्रयास करना शुरू कर दिया है कि बोर्ड प्रभावी ढंग से कार्य करे।

जैसा कि हमने जाना कि चयनित राज्यों में राज्य योजना बोर्ड प्रभावी और महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं, इसलिए अन्य राज्यों में भी उनकी भूमिका काफी हद तक बढ़नी चाहिए; और उन्हें भारत के सभी राज्यों में राज्य स्तर पर नीति आयोग के समकक्ष सुदृढ़ बनाने हेतु समर्थन दिया जाना चाहिए। यह देखा गया कि राज्य योजना बोर्ड राज्य सरकारों के समर्थन के साथ ठीक से काम करता है, तो यह राज्य के लिए विभिन्न क्षेत्रों में परिप्रेक्ष्य योजना तैयार करने में प्रभावी योगदान दे सकता है; और राज्य के समग्र विकास के लिए प्राथमिकता वाले पैटर्न डिज़ाईन कर सकता है। राज्य योजना बोर्ड के माध्यम से एक प्रभावी मॉनिटरिंग और मूल्यांकन प्रक्रिया, संसाधन जुटाने तथा प्रभावी संसाधन उपयोग में मदद कर सकती है। समय की मांग है कि राज्य योजना बोर्ड को सशक्त बनाया जाए, और उनको वास्तविक उत्तरदायित्व और स्थिति प्रदान की जाए। वे अपनी भूमिका में जो विशेषज्ञता और प्रवीणता ला सकते हैं, उससे राज्य सरकारों को विकास प्रक्रिया में तार्किकता बढ़ाने और अतिरिक्त संसाधनों की माँग के लिए सौदेबाजी करने की उनकी क्षमता को मज़बूत करने में मदद मिल सकती है। यह भी पाया गया है कि जिस वास्तविक उद्देश्य के लिए उनका गठन किया गया था, वह हासिल नहीं हो पाया है। राजनीतिक नेताओं, प्रशासकों, नागरिकों के संयुक्त प्रयासों से प्रभावी योजना और कुशल राज्य योजना बोर्डों के माध्यम से संधारणीय विकास के वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति सुकर बना सकते हैं।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थानों का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) भारत के किन्हीं दो राज्यों में राज्य योजना बोर्ड के प्रदर्शन का विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

....

2) मेघालय राज्य योजना बोर्ड के प्रमुख कार्य क्या है?

....

....

....

....

....

3) चयनित राज्यों में राज्य योजना बोर्ड के प्रदर्शन के आधार पर प्रमुख परिणामों पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

6.5 निष्कर्ष

राज्य योजना बोर्ड मुख्य रूप से व्यापक आर्थिक नीतियों, परिप्रेक्ष्य योजना, योजना निर्माण और योजनाओं के मूल्यांकन से संबंधित हैं। राज्य योजना बोर्ड के कार्य अलग-अलग राज्यों में भिन्न होते हैं। यह देखा गया है कि यदि राज्य योजना बोर्ड, राज्य सरकार के समर्थन के साथ ठीक से काम करता है, तो यह राज्य के लिए विभिन्न क्षेत्रों में परिप्रेक्ष्य योजना तैयार करने में प्रभावी रूप से योगदान दे सकता है; और राज्य के समग्र विकास के लिए प्राथमिकताओं के पैटर्न तैयार कर सकता है। एक प्रभावी मॉनिटरिंग तथा मूल्यांकन प्रक्रिया, राज्य योजना बोर्ड के माध्यम से संसाधनों को जुटाने और संसाधनों का समुचित प्रयोग करने में सहायता करती है। समय की मांग है कि राज्य योजना बोर्डों को और वास्तविक उत्तरदायित्व सौंपा जाये और सुदृढ़ स्थिति प्रदान की जाये। विशेषज्ञता और प्रवीणता जो बोर्ड अपनी भूमिका में ला सकते

हैं, वे राज्य सरकारों को विकास प्रक्रिया में तर्कसंगतता बढ़ाने और अतिरिक्त संसाधनों की माँग के लिए सौदेबाजी करने की उनकी क्षमता को सुदृढ़ बनाने में मदद कर सकती है। आगे यह पाया जा सकता है कि जिन वास्तविक उद्देश्यों के लिए इन आयोगों/बोर्डों का गठन किया गया था वे पूर्ण नहीं हुए।

इस अध्ययन से सफल राज्य योजना बोर्ड का पता चला है, और चयनित राज्यों के उदाहरणों को भी उजागर किया गया है, जो अन्य राज्यों के लिए योजना बोर्ड को सुदृढ़ बनाने का मार्ग प्रशस्त करेंगे। इस इकाई में, हमने राज्य स्तर पर, राज्य योजना बोर्ड के महत्व, संरचना, कार्यों और प्रक्रिया पर ध्यान केंद्रित किया है। राज्यों के वर्तमान परिप्रेक्ष्य को देखते हुए निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि योजना भौतिक और वित्तीय लक्ष्यों का परिणाम नहीं है। यह वृहद स्तर पर विकास के प्रयास को दिशा प्रदान करने का उपकरण है। यह समाज के विभिन्न वर्गों, विशेष रूप से निचले वर्ग के लोगों तक पहुँचने के लिए समय की कसौटी पर खड़ी है। राजनीतिक नेताओं, प्रशासकों, और नागरिकों के संयुक्त प्रयासों से प्रभावी योजना और राज्य योजना बोर्ड की कुशल भूमिका के माध्यम से वांछित संधारणीय लक्ष्यों की प्राप्ति को सुगम बनाया जा सकता है।

6.6 शब्दावली

दृष्टिकोण पत्र : यह एक ऐसा दस्तावेज है, जो अगामी योजनाओं के लिए मुख्य उद्देश्यों और लक्ष्यों को एक प्रपत्र में प्रतिबिंबित करेगा।

योजना : एक विस्तृत योजना, कार्यक्रम और रणनीति दर्शाने वाला दस्तावेज हैं, जो उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए अग्रिम रूप से बनाए जाते हैं।

आयोजन/योजना बनाना : यह मौलिक कार्य है, जिसमें पहले से निर्णय लेना होता है। इसके अंतर्गत क्या किया जाना है, कब किया जाना है, कैसे किया जाना है और कौन करने वाला है, ये सब निहित हैं। इस प्रकार योजना एक प्रक्रिया है, जो स्पष्ट रूप से एक संगठन के उद्देश्यों को पूरा करती है और कार्रवाई की विभिन्न क्रियाओं को विकसित करती है, जिसके द्वारा एक संगठन वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करता है।

6.7 संदर्भ लेख

Arora, R. K. & Goyal, R. (2013). *Indian Administration: Institutions and Issues.* New Delhi: New Age International Publishers.

Chakravarty, S. (1987). *Development Planning: The Indian Experience*. New Delhi: Oxford University Press.

Government of Tamil Nadu, State Planning Commission. Retrieved from http://www.spc.tn.gov.in/

Kerala State Planning Board. Retrieved from http://spb.kerala.gov.in/

Khandelwal, R.M. (1988). *State Level Plan Administration in India.* Jaipur: RBSA Publisher.

Khera, S.S. (1963). *District Administration in India.* New Delhi: Sage.

Maheshwari, S.R. (2002). *Administrative Reforms Commission in India*. New Delhi, India: Macmillan.

Meghalaya State Planning Board. Retrieved from http://megspb.gov.in/

Padhi, A.P. (1988). *State Administration in India*. New Delhi: Uppal Publishing House.

Pathak, K.K. (2011). *Planning Development for Metropolitan Regions*. New Delhi: IIPA.

Planning Commission (2008). *Report on Manual on Integrated District Planning*. New Delhi: Government of India.

Planning Commission (24th February 1997), *A Background Note on Gadgil Formula for distribution of Central Assistance for State Plan*, New Delhi: Government of India.

Punjab State Planning Board. Retrieved from http://www.pbplanning.gov.in/aboutus.html

Ram, D.S. (1996). *Dynamics of District Administration: New Perspective,* New Delhi: Kanishka.

Sarkaria Commission, *Report on Centre-State Relations, Part-1*. New Delhi: Government of India

Sen, S.R. (April-June1961). Planning Machinery in India. *Indian Journal of Public Administration*. Volume: VII, New Delhi: IIPA.

Sinha, A. (1993). *State Level Planning System*: *Need for a Change,* Jaipur: Rawat Publications.

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:
   - भाग 6.2 देखिए।

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:
   - मुख्यमंत्री के नेतृत्व में कुछ वरिष्ठ मंत्रियों के साथ एक बोर्ड होता है, जिसमें योजना मंत्री और वित्त मंत्री इसके सदस्य होते हैं।
   - मुख्य सचिव और कुछ वरिष्ठ सचिव बोर्ड के सदस्य हैं।

- बोर्ड में कई विशेषज्ञ सदस्य पूर्णकालिक और साथ ही अंशकालिक भी होते हैं।

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- आर्थिक प्रगति और आवश्यक प्रयासों का आकलन
- आर्थिक समीक्षा की तैयारी
- योजना का गठन

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- तमिलनाडु, तथा
- पंजाब।

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- राज्य की राजधानी के प्राप्य और संभावित संसाधनों की एक सूची की व्यवस्था करना;
- राज्य के संसाधनों के सबसे अनुकूल और संतुलित उपयोग के लिए परिप्रेक्ष्य योजना की व्यवस्था करना, और योजना की प्राथमिकताओं को इंगित करना;
- योजना-निर्माण के संबंध में सरकार को सलाह देना;
- उन कारकों की पहचान के लिए योजनाओं के कार्यान्वयन में वृद्धि का मूल्यांकन करना, जो राज्य के आर्थिक विकास को मंद कर रहे हैं; और योजनाओं के निष्पादन के लिए बनाई जाने वाली परिस्थितियों को निर्धारित करना; और
- उन अध्ययनों और कार्यों को करना जो इसे समय-समय पर सौंपे जाते हैं, और उपयुक्त सिफारिशें करना।

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- भाग 6.4 देखिए।

इकाई 7 राज्य वित्त आयोग*

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 राज्य वित्त आयोगः उत्पत्ति एवं महत्व
7.3 राज्य वित्त आयोग की संरचना
7.4 राज्य वित्त आयोगः शक्तियाँ और कार्य
7.5 राज्य वित्त आयोग की कार्यप्रणालीः एक अवलोकन
7.6 निष्कर्ष
7.7 शब्दावली
7.8 संदर्भ लेख
7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात्, आपः

- राज्य वित्त आयोग की उत्पत्ति एवं महत्व को समझ सकेंगे;
- राज्य वित्त आयोग की संरचना की व्याख्या कर सकेंगे;
- राज्य वित्त आयोग की शक्तियों और कार्यों का वर्णन कर सकेंगे; तथा
- राज्य वित्त आयोग की भूमिका की जाँच कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

एक संघीय व्यवस्था में, कार्यों और शक्तियों के संतुलन के साथ, संघ और सरकार की अन्य इकाइयों के बीच वित्तीय संसाधनों के वितरण का विषय अति महत्वपूर्ण है। जैसा कि स्थानीय निकायों के पास अपने स्वयं के अपर्याप्त संसाधन हैं, इसलिए उन्हें केंद्र और राज्य सरकारों से धन के हस्तांतरण पर निर्भर रहना पड़ता है। यह देखा गया है कि स्थानीय निकाय साझा सहभाजित करों और अनुदान के रूप में राज्य सरकार से राजकोषीय हस्तांतरण पर अधिक निर्भर रहते हैं। ये कर, सामान्यतः, उस राज्य के वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर साझा किए जाते हैं। कर के बंटवारे के अतिरिक्त, राज्य वित्त आयोग को स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा; और राज्यों के समेकित कोष से स्थानीय निकायों को दिये जाने वाले विभिन्न करों, शुल्क, अनुदान सहायता की सिफारिश करने का कार्य भी सौंपा जाता है। भारत में सभी राज्यों के लिए, नियमित रूप से, भारत में, पाँच वर्षों के नियमित अंतराल पर राज्य वित्त आयोग का गठन अनिवार्य है। राज्य वित्त आयोग के कार्य, केंद्रीय वित्त आयोग

* *योगदानः* प्रो. स्विंदर सिंह, लोक प्रशासन विभाग, यू.एस.ओ.एल., पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

के समान होते हैं, इसीलिए बेहतर तरीके से समझने के लिए हम वित्त आयोग की उत्पत्ति और कार्यों पर संक्षेप में चर्चा करेंगे।

यह ध्यान देने योग्य है कि संघ और राज्यों के बीच वित्तीय संसाधनों के लिए विस्तृत संवैधानिक प्रावधान होते हुए भी भारतीय राज्यों को अपने संसाधनों और व्यय के बीच एक निरंतर अंतराल की समस्या का सामना करना पड़ा है। इस दृष्टिकोण से हमारे संवैधानिक निर्माता काफी सतर्क थे, तथा उनके प्रयासों द्वारा अनुच्छेद 280 के अंतर्गत एक वित्त आयोग का गठन किया गया, ताकि मुख्य रूप से राज्यों के राजकोषीय असंतुलन को कम करने के लिए संघ से राज्यों के लिए वित्तीय हस्तांतरण की सिफारिशें की जा सकें। राज्य वित्त आयोग का हर पाँचवें वर्ष की समाप्ति पर गठन किया जाना आवश्यक है। संविधान के अंतर्गत आयोग को सौंपी गयी ज़िम्मेदारियों का मूल रूप से अनुच्छेद 280 में वर्णन किया गया है, वित्तीय आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वे राष्ट्रपति को निम्नलिखित के संबंध में सिफारिशें देगाः

i) करों की शुद्ध आय का संघ और राज्यों के बीच वितरण, जो कि उनके बीच विभाजित किया जा सकता है या हो सकता है, और इस तरह की आय से संबंधित शेयरों के राज्यों के बीच आबंटन के लिए;

ii) वह सिद्धांत, जिनके आधार पर भारत के समेकित कोष से राज्यों के राजस्व सहायता में अनुदान की मात्रा को नियंत्रित किया जाना चाहिए; तथा

iii) सुदृढ़ वित्त व्यवस्था के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को संदर्भित कोई अन्य मामला।

हालांकि, राज्य-स्थानीय संबंधों के क्षेत्र में, लम्बे समय से, इसी तरह की व्यवस्था वांछित थी। इस संदर्भ में, 1990 के दशक के आरम्भिक वर्षों में प्रभावी स्थानीय शासन प्रणाली द्वारा प्रजा के सशक्तीकरण के लिए विकेन्द्रीकृत शासन में कुछ आधारभूत सुधार किये गये। अन्य उपायों और सुधारों के अतिरिक्त, 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधनों के अंतर्गत, राज्य वित्त आयोग के आवधिक गठन के माध्यम से इन निकायों को वित्तीय संसाधनों का हस्तांतरण सुनिश्चित किया गया था। 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधन अधिनियमों के पारित होने के पश्चात्, उपरोक्त दूसरे कार्य को निम्नलिखित तरीके से बदल दिया गया था। राज्य के वित्त आयोग के द्वारा की गई सिफारिशों के आधार पर राज्य में पंचायतों और नगरपालिकाओं के संसाधनों के पूरक बनाने के संदर्भ में राज्य की निधि को बढ़ाने के लिए आवश्यक उपायों के संबंध में राष्ट्रपति के समक्ष सिफारिशें प्रस्तुत करना। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अब हम राज्य वित्त आयोग की उत्पत्ति और उसके महत्व के बारे में चर्चा करेंगे।

7.2 राज्य वित्त आयोगः उत्पत्ति एवं महत्व

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास में ग्रामीण और शहरी स्थानीय निकायों की उपयोगी भूमिका को स्वीकारा जा चुका है। हालांकि, विभिन्न कारणों जैसे तीव्र गति से जनसंख्या में वृद्धि, शहरीकरण, ग़रीबी तथा वित्तीय संसाधनों के अपर्याप्त हस्तांतरण के कारण स्थानीय सरकारें वित्तीय तनाव का सामना कर रही हैं। स्थानीय निकाय, अनुदान के मामले में, राज्य सरकारों पर बहुत अधिक निर्भर रहते है। इस संदर्भ में, स्थानीय निकायों को प्राप्त हुए राजस्व के स्रोत सामान्यतः अपर्याप्त होते हैं। इन कमियों को सुधारने; और वित्तीय असंतुलन की जाँच करने के लिए, विभिन्न

आयोगों और समितियों द्वारा कई सुझाव दिए गए हैं। केंद्रीय वित्त आयोग के पैटर्न पर, प्रत्येक राज्य के लिए वित्त आयोग का गठन करना एक महत्वपूर्ण सुझाव था। इस संबंध में यह सुझाया गया कि राष्ट्रीय आयोग पैटर्न पर राज्य वित्त आयोग का गठन किया जाना चाहिए, जिसे राज्य और स्थानीय निकायों के बीच आय के स्रोंतों के वितरण के बारे में सिफारिशें देनी चाहिए।

74वें संवैधानिक संशोधन के उद्देश्यों की उद्घोषणा में यह दर्शाया गया है कि ''कई राज्यों में, स्थानीय निकाय कई कारणों से कमज़ोर और अप्रभावी हो जाते हैं, जिनमें अनियमित चुनाव, विलम्बित अधिशोषण, शक्तियों और कार्यों का अपर्याप्त हस्तांतरण शामिल हैं। परिणामस्वरूप, शहरी स्थानीय स्व-शासन की जीवंत लोकतांत्रिक इकाइयों के प्रभावी रूप का प्रदर्शन करने में सक्षम नहीं है।" इसमें यह भी कहा कि भारत के संविधान में स्थानीय निकायों से संबंधित प्रावधानों को शामिल किया, जिसमें विशेष रूप से कार्यों और वित्तीय कर-निर्धारण शक्तियों के संबध में; और राजस्व साझेदारी के लिए व्यवस्था है। तदनुसार, कई आवश्यक प्रावधान जोड़े गये और 1990 के शुरूआती दशक में, लम्बे समय से चली आ रही मांग को स्वीकार कर लिया गया और 1992 में यह संवैधानिक संशोधन का हिस्सा बन गया। स्वतंत्र भारत के इतिहास में 73वें और 74वें संविधान संशोधन का पारित होना एक मील का पत्थर साबित हुआ है। इन संशोधनों में स्थानीय निकायों की व्यापक संरचना और शक्तियों के अतिरिक्त, चुनावी प्रक्रियाओं, वित्त व्यवस्था, योजना तंत्र से निपटने के व्यापक प्रावधान इत्यादि शामिल किये गये हैं। इन संशोधनों का एक महत्वपूर्ण पहलू स्थानीय निकायों के वित्त से संबंधित है। संशोधन अधिनियम में, प्रत्येक राज्य में वित्त आयोग की स्थापना के लिए उल्लेख है। संवैधानिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए राज्यों ने, संविधान के 73वें और 74वें संशोधन अधिनियम के अनुच्छेद 243(I) और 243(Y) के अनुसार राज्य वित्त आयोग का गठन करने के लिए कानून पारित किया है। 1993 के बाद, राज्य प्रत्येक पाँच वर्ष के पश्चात्, स्थानीय निकायों के लिए राज्य वित्त आयोग का गठन कर रहे हैं।

7.3 राज्य वित्त आयोग की संरचना

अधिकतम राज्य, वर्ष 2019 तक, चार से पाँच वित्त आयोग गठित कर चुके हैं। प्रावधान के अनुसार, वित्त आयोग का गठन प्रत्येक पाँच वर्षों के पश्चात् किया जाएगा। वैसे इसका कोई स्थायी कार्यकाल निश्चित नहीं है; और जैसे ही आयोग अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर देता है तो इसकी कार्यावधि समाप्त हो जाती है। अधिकतर राज्यों के अनुभव, इस बात को दर्शाते हैं कि वित्त आयोग सामान्यतः एक से डेढ़ वर्षों के लिए ही क्रियाशील रहते हैं।

प्रत्येक राज्य में वित्त आयोग का गठन राज्यपाल की घोषणा के आधार पर किया जाता है; और इसके अध्यक्ष और सदस्यों के पदभार ग्रहण के बाद यह अस्तित्व में आता है।

जहां तक वित्त आयोग की संरचना का सवाल है, इसमें कोई एकरूपता नहीं है और बहुत अधिक भिन्नता भी नहीं है। इसमें एक अध्यक्ष और कुछ सदस्य होते हैं। कुछ राज्यों में, उसकी सदस्यों की संख्या राज्य विधान द्वारा निर्दिष्ट होती है। उदाहरण के लिए, पंजाब के वित्त आयोग में एक अध्यक्ष और चार अन्य सदस्य होते हैं। इसी तरह तमिलनाडु में एक अध्यक्ष और चार सदस्य होते हैं। हरियाणा में, तीसरे वित्त आयोग में

एक अध्यक्ष और तीन सदस्य थे, जबकि पाँचवें वित्त आयोग में सात सदस्य थे, जिनमें एक अध्यक्ष और एक सदस्य सचिव भी शामिल थे।

अध्यक्ष/सदस्यों के लिए योग्यता: कुछ राज्यों ने स्पष्ट रूप से अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति के लिए योग्यता/शर्तों को निर्दिष्ट किया है, जबकि अन्य राज्यों में ऐसा कोई विनिर्देश नहीं है। पंजाब में, वित्त आयोग के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति का सार्वजनिक मामलों में अनुभव होना आवश्यक है; और इसके सदस्यों के रूप में नियुक्त किए जाने वाले व्यक्तियों में निम्नलिखित योग्यताएं होनी चाहिए:

- वित्तीय और आर्थिक मामलों में पंचायत से संबंधित विशेष ज्ञान और अनुभव; अथवा
- वित्तीय और आर्थिक मामलों में नगरपालिकाओं से संबंधित विशेष ज्ञान और अनुभव; अथवा
- वित्तीय मामलों और प्रशासन में व्यापक अनुभव; अथवा
- अर्थशास्त्र का विशेष ज्ञान।

किसी भी व्यक्ति को वित्त आयोग का सदस्य या अध्यक्ष नियुक्त करने से पहले, राज्यपाल का इस संदर्भ में संतुष्ट होना आवश्यक है कि वह व्यक्ति का वित्तीय अथवा किसी भी प्रकार का कोई हित न हो जिसका उसके कार्य पर प्रतिकूल प्रभाव हो; और न ही उस व्यक्ति का कोई हित, वित्त आयोग के अन्य सदस्यों के किसी कार्य में कोई बाधा डालता हो। नियुक्ति के पश्चात् भी राज्यपाल को समय-समय पर अध्यक्ष और सदस्यों के संबंध में समय-समय पर स्वयं को संतुष्ट करना पड़ता है कि उनके पास कोई वित्तीय या कोई अन्य हित नहीं है, जो उनके कार्यों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सके। इस उद्देश्य से राज्यपाल अध्यक्ष और सदस्यों को ऐसी जानकारी उपलब्ध करवाने को कह सकता है जो उसकी संतुष्टि के लिए आवश्यक हो कि अध्यक्ष अथवा किसी भी सदस्य का कोई निजी हित नहीं है।

अयोग्यता : निम्नलिखित कारणों के आधार पर कोई भी व्यक्ति वित्त आयोग का सदस्य बनने से अयोग्य घोषित किया जा सकता है :

- यदि वह अस्वस्थ मन का हो;
- यदि वह दिवालिया हो;
- यदि उस पर किसी नैतिक अद्यमता का दोष सिद्ध हो चुका हो; अथवा
- राज्य वित्त आयोग के सदस्य के रूप में, यदि उसके वित्तीय अथवा कोई अन्य हित से उसके कार्यों पर प्रतिकूल प्रभाव की संभावना हो।

सदस्यों का कार्यकाल : राज्य वित्त आयोग का प्रत्येक सदस्य राज्यपाल द्वारा निर्धारित कार्यावधि तक नियुक्त किया जाता है, किंतु वह पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र होगा। यह प्रावधान है कि वह अपनी कार्यावधि पूर्ण होने से पहले अपने पद से त्याग पत्र दे सकता है। वह अपना त्याग पत्र राज्यपाल को सौंपेगा।

सेवा की शर्तें : वित्त आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्य राज्य वित्त आयोग को अपनी पूर्णकालिक अथवा अल्पकालिक सेवा प्रदान कर सकते हैं, जैसे राज्यपाल प्रत्येक

मामले में निर्देश दें; और उन्हें राज्य सरकार की आज्ञा के अनुसार शुल्क अथवा वेतन एवं भत्ते दिए जाएंगे।

(The Punjab Finance Commission for Panchayats and Muncipalities Act, 1994, https://www.latestlaws.com/index.php/bare-acts/state-acts-rules/punjab-state-laws/punjab-finance-commission-for-panchayats-and-municipalities-act-1994/)

7.4 राज्य वित्त आयोग : शक्तियाँ और कार्य

जैसा कि पहले भी वर्णन किया गया है कि राज्य स्तर पर वित्त आयोग का गठन नगरपालिकाओं और पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने तथा सिफारिश करने के लिए होता है। प्रत्येक राज्य में, राज्य वित्त आयोग के गठन से पहले एक अधिसूचना जारी की जाती है, और इसमें सामान्यतः विचारार्थ विषय होता है। इस संदर्भ में, उदाहरणस्वरूप, तमिलनाडु वित्त (वित्त आयोग-IV, विभाग, GO. No. 584, दिनांक 14 दिसम्बर 2004, में वर्णित है कि राज्य वित्त आयोग ग्रामीण एवं शहरी निकायों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करेगा, जिसमें वह ग्राम पंचायतों, पंचायत संघ परिषदों, जिला पंचायतों, नगरपालिकाओं, नगर निगमों के लिए निम्नलिखित मामलों में सिफारिशें करेगा :

- सिद्धांतों की सिफारिशें:
  - राज्य द्वारा लगाया गया और एकत्रित कर और राजस्व की कुल प्राप्ति का राज्य और स्थानीय निकायों के बीच वितरण,
  - करों, शुल्कों और फीस का निर्धारण, जिसे स्थानीय निकायों को सौंपा जा सकता है अथवा स्थानीय निकायों द्वारा विनियोजित किया जा सकता है; तथा
  - राज्य की समेकित निधि से स्थानीय निकायों को सहायता में अनुदान।
- पंचायतों और नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति सुधारने के लिए आवश्यक उपाय।

कुछ राज्यों में, अधिसूचनाएं अधिक विस्तृत होती हैं, जिनमें राज्य वित्त आयोग के कार्य और कर्तव्यों के बारे में जानकारी होती है। उदाहरण के लिए, तमिलनाडु के तीसरे वित्त आयोग और उसके बाद के वित्त आयोगों को निम्नलिखित कुछ अतिरिक्त कार्यभार भी सौंपे गये हैं। आयोगों को निम्नलिखित सुझाव देने को कहा गया है:

- सुझाव जो कि, स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ करें, उनके ऋण का स्तर, पेंशन एवं ब्याज भुगतान देयताएं, उधार लेने की शक्ति को विनियमित करने की संभावनाएं तथा स्थानीय निकायों के संसाधनों की स्थिति ऋण चुकाने की क्षमता के आधार पर ऋण देयताएँ;
- स्थानीय स्व-शासन के रूप में अपने संसाधनों को जुटाने और उपयोग के लिए तथा निकायों के कामकाज में अधिक दक्षता लाने के लिए आवश्यक उपाय, स्थानीय निकाय भारत के संविधान और सहवर्ती राज्य विधानों में उल्लेखित कार्यों के संदर्भ में स्थानीय निकायों के प्रशासनिक, कार्यात्मक और वित्तीय शक्तियों को

सौंपने के स्तर को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकारों एवं स्थानीय निकायों के कार्यों के निर्धारण पर सुझाव;

- एक निगरानी सक्षम राजकोषीय सुधार कार्यक्रम तैयार करना, जिसका उद्देश्य स्थानीय निकायों के राजस्व घाटे को कम करना होगा, और एक योजना का क्रियान्वयन करना होगा, जो कि राज्य और केन्द्र सरकारों द्वारा दिये जाने वाले अनुदान का पूर्ण दोहन कर सके। ये स्थानीय निकायों के हस्तांतरण से भी संबंधित है और वो उपाय भी इससे जुड़े हैं, जिससे इस हस्तांतरण का मूल्यांकन किया जा सके;
- अन्य राज्यों में स्थानीय निकाय कर संरचना को ध्यान में रखते हुए ग्रामीण और शहरी स्थानीय निकायों में संसाधनों के दोहन के लिए संभाव्य मार्ग खोजना;
- सिफारिशों के प्रभावशाली निष्पादन के लिए, वर्तमान पद्धति की समीक्षा करने से संबंधित सुझाव देना; और राज्य तथा केंद्र वित्त आयोग और अन्य संगठनों द्वारा एकत्रित संसाधनों का दोहन करना। स्थानीय निकायों और उनके खातों का प्रबंधन करना;
- नगर पंचायतों के पुनर्वर्गीकरण के परिणामस्वरूप सरकार द्वारा किए गये प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार के उपाय;
- स्थानीय निकायों की वर्तमान स्थिति और पुनर्गठन के उपयोग को ध्यान में रखते हुए, जो पहले से ही नगर पंचायतों के लिए किये गये हैं, आयोग अन्य स्थानीय निकायों के पुनर्वर्गीकरण का भी सुझाव देगा;
- इन सिफारिशों को देते समय, आयोग राज्य सरकार के स्रोतों पर भी नज़र रखेगा, राज्य सरकारों के व्यय, ऋण संबंधी जानकारियों को भी स्थानीय निकायों के स्थान पर देखना, ताकि वे पर्याप्त मात्रा में राजस्व बचत कर सकें और राज्य के पूंजीगत खातों की प्रतिबद्धता से संबंधित हो (Tamil Nadu Fiscal Responsibility Act 2003, http://www.tnbudget.tn.gov.in/thweb-files/FRBM/FRA%20Act.pdj)।

राज्य वित्त आयोग निम्नलिखित के संबंध में भी ध्यान केंद्रित कर, सिफारिशें करेगा :

- भारत सरकार के दिशा-निर्देशों के अनुसार ग्रामीण और शहरी स्थानीय निकायों का वर्गीकरण, और उसके परिणाम;
- हस्तांतरण का वर्तमान स्तर, तथा अन्य संसाधनों का राज्य एवं केन्द्रीय सरकारों से हस्तांतरण और अन्य एजेंसियाँ जिनमें राज्य वित्त आयोग द्वारा स्थानीय निकायों को पुरस्कार और सिफारिशें तथा उनकी पर्याप्तता शामिल है;
- पूंजी निर्माण की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए राजस्व व्यय को पूरा करने के लिए स्थानीय निकायों की आवश्यकता।
- अगले वित्तीय वर्ष के लिए स्थानीय निकायों के राजस्व संसाधन;
- आवर्ती और आवर्तीहित घटकों के व्यय के उचित राजकोषीय प्रबंधन के संदर्भ में;
- वित्त आयोग और राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों को कार्यान्वित करने की स्थिति, और स्थानीय निकायों द्वारा संसाधनों का उपयोग।

राज्य वित्त आयोग आधारभूत लोकतंत्र को सशक्त बनाने के लिए ग्राम सभा के कार्यों, इसका गैर-सरकारी संगठनों, लाइन एजेंसियों/विभागों से संपर्क की अन्य राज्यों के बराबर समीक्षा करेगा।

पंजाब के प्रथम वित्त आयोग ने सिफारिशें देते हुए निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर सिफारिशें दी थीं :

- स्थानीय निकायों को पर्याप्त धन राशि प्रदान करने के लिए;
- वांछनीय स्तर पर आवश्यक सेवाओं की उपलब्धता के अनुरक्षण के लिए स्थानीय निकायों को सक्षम बनाना;
- वित्तीय अधिशेष का सृजन करने के लिए;
- स्थानीय निकायों के मध्य सीधा और आड़ा असंतुलन दोष-रहित करने के लिए; तथा
- राजकोषीय उत्तरदायित्व और स्वायत्तता के लिए प्रोत्साहन देने के लिए।

राज्य वित्त आयोग की प्रक्रियाएँ और शक्तियाँ

अपने कार्यों का समयबद्ध तरीके से निर्वाह करने के लिए; तथा प्रमाणिक तथ्यों, आंकड़ों और सूचना के आधार पर अवलोकन और सिफारिशें करने के लिए वित्त आयोग को सामान्यतः राज्यों में सशक्त बनाया जाता है। उदाहरण के लिए, पंजाब की सरकारी अधिसूचना के अनुसार, राज्य वित्त आयोग अपने कार्य-निष्पादन में इसकी प्रक्रिया निर्धारित कर सकता है; और निम्नलिखित मामलों के संबंध में मुकदमों के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के तहत उसके पास सिविल शक्तियाँ हैं:

- गवाहों को बुलवाना और उपस्थिति को बाध्य करना;
- किसी भी दस्तावेज को पेश करने की आवश्यकता;
- किसी भी अदालत या कार्यालय से किसी भी रिकॉर्ड का अनुरोध करना।

राज्यपाल, अधिनियम के अंतर्गत राज्य वित्त आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश को विवरणात्मक ज्ञापन के साथ राज्य विधायिका के समक्ष कार्यवाही के लिए भेजता है।

पंद्रहवें वित्त आयोग की रिपोर्ट में, "2020-21 के लिए स्थानीय निकायों को कुल अनुदान 90,000 करोड़ रुपये निर्धारित किया गया है, जिसमें से 60,750 करोड़ रुपये ग्रामीण स्थानीय निकायों (67.5 प्रतिशत) और 29,250 करोड़ रुपये शहरी स्थानीय निकायों (32.5 प्रतिशत) के लिए सिफारिशें की गई हैं। यह आबंटन विभाज्य जोड़ का 4.31 प्रतिशत है। यह 2019-20 में स्थानीय निकायों के लिए अनुदान राशि की वृद्धि है, जो कि विभाज्य जोड़ के 3.54 प्रतिशत (87,352 करोड़ रुपये) की राशि है। यह अनुदान 90:10 के अनुपात में जनसंख्या और क्षेत्रफल के आधार पर राज्यों के बीच विभाजित किया जाएगा। अनुदान पंचायत के सभी तीनों स्तरों– गांव, ब्लॉक एवं जिले को उपलब्ध कराया जाएगा।"

(Report of 15th Finance Commission for F.Y. 2020-21, https://www.prsindia.org/report-summaries/report-15th-finance-commission-fy-2020-21)।

इस संबंध में, राजनीतिक नेताओं, प्रशासकों और नागरिकों के संयुक्त प्रयासों से राज्य में राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों को समय पर लागू करने का मार्ग प्रशस्त होगा, जो स्थानीय निकायों के प्रभावी प्रदर्शन के लिए आवश्यक है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणीः i) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंतर में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) राज्य वित्त आयोग के आधारभूत कार्य क्या हैं?

....

....

....

....

2) पंजाब के पहले वित्त आयोग के उद्देश्यों पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

3) राज्य वित्त आयोग की प्रक्रियाओं और शक्तियों की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

7.5 राज्य वित्त आयोग की कार्यप्रणालीः एक अवलोकन

जैसा कि पहले हम जान चुके हैं कि राज्य वित्त आयोग का गठन राज्य सरकार द्वारा, प्रत्येक पाँच वर्ष बाद इसका कार्यकाल समाप्त होने पर किया जाता है। इन आयोगों को उन सिद्धांतों की सिफारिश करने की आवश्यकता होती है, जिनके माध्यम से वित्तीय स्रोतों का वितरण राज्य सरकार और ग्रामीण स्थानीय निकायों के मध्य किया जा सके। इन आयोगों को पंचायती राज संस्थाओं और नगर निगमों की वित्तीय स्थिति में सुधार के लिए आवश्यक उपाय भी सुझाने होते हैं। वर्ष 1993-1994 से अधिकतर राज्य चार से पाँच वित्त आयोगों का गठन कर चुके हैं, ये सारे वित्त आयोग संवैधानिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर बनाये गये हैं। ऐसा पाया गया है कि इसके कार्यकाल और समयावधि को लेकर विभिन्न राज्यों के मध्य समरूपता दृष्टिगत होती है। हालांकि, कुछ राज्यों ने अपने वित्त आयोग को अतिरिक्त कार्यभार भी सौंपे है। इस संदर्भ में उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु राज्य का उदाहरण दिया जा सकता है।

यह भी पाया गया है कि राज्य वित्त आयोग वित्तीय और संसाधनों के अंतर्गत अन्य संबंधित क्षेत्रों में भी मूल्यवान सुझाव देते रहे हैं। विभिन्न राज्यों के वित्त आयोगों की रिपोर्टों का विश्लेषण यह दर्शाता है कि इन वित्त आयोगों ने विभिन्न प्रकार की सिफारिशें की है उदाहरण के लिए, स्थानीय निकायों के समग्र कामकाज, उनकी बैठकों के संचालन की प्रणाली, रिकॉर्ड का रखरखाव, पारदर्शिता सुनिश्चित करने, जवाबदेही तय करने, और नये स्रोतों के सृजन से संबंधित सुझाव; तथा स्थानीय निकायों की प्रभावशीलता एवं कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रशासनिक उपाय सुझाए हैं।

राज्य वित्त आयोगों को, ग्रामीण और शहरी निकायों के मध्य संसाधनों के प्रभावी वितरण का निर्धारण करते हुए राजकोषीय विकेंद्रीकरण की योजना को सक्रिय बनाने की आवश्यकता है। यह देखा गया है कि कुछ राज्यों में राज्य वित्त आयोग की रिपोर्ट विश्लेषणात्मक रूप से कमजोर थी अथवा उनमें विश्लेषण पर्याप्त नहीं था। इस संदर्भ में, अपर्याप्त मानव संसाधन; एवं कमज़ोर डाटा आधार इसके मुख्य कारण हैं। इसके अतिरिक्त, वित्त आयोगों के सुझावों को विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा नज़रअंदाज करना भी इसका कारण है। अतः ग्रामीण स्थानीय निकायों को उनके अधिकार के अनुसार राज्य संसाधनों का सहभागी नहीं बनाते हैं, जो उनकी कार्यप्रणाली को प्रभावित करता है। स्थानीय निकायों के संसाधनों को बढ़ाने के लिए, विशेष सुझावों के अन्तर्गत, आयोगों ने विभिन्न नये करों का सुझाव दिया है, जिसमें सट्टा कर, प्रकाश कर, बिक्री पर अधिभार, मामूली खनिजों से आय, होटलों और अतिथि गृह पर कर, पुस्तकालय कर आदि। इसी क्रम में उत्तर प्रदेश में और कुछ राज्यों में कुछ वित्त आयोगों द्वारा सुझाव के आधार पर राज्य सरकारों ने कर लागू किये हैं। जिला परिषद द्वारा पेश किया जाने वाला सम्पत्ति कर, तमिलनाडु में पंचायत गृहकर लगाती है। उत्तर प्रदेश की पंचायती राज संस्थाओं ने एक कदम आगे बढ़ते हुए सम्पत्ति कर, राजस्व, बिक्री कर, निर्माण शुल्क आदि पर अधिभार/सरचार्ज लगाया है।

पंजाब में प्रथम वित्त आयोग ने यह पाया कि स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति संतोषजनक नहीं है, क्योंकि इन संस्थाओं को उपलब्ध वित्तीय संसाधन अनिवार्य कार्य करने के लिए भी अपर्याप्त है। यह नगर निगमों के लिए आवश्यक है कि वृद्धि और स्थिरता के लिए उनके अपने क्षेत्र में बढ़ते संसाधन होने चाहिए। कर, गैर-कर राजस्व और उच्च स्तरीय सरकारों से वित्त हस्तांतरण के अतिरिक्त नगरपालिकाओं को संस्थानिक ऋणों का भी विकास और राजस्व सृजन से संबंधित परियोजनाओं में प्रयोग करना चाहिए। आयोग वित्त अनुशासन की आवश्यकता के संदर्भ में भी देखता है, जिसका अर्थ है कि व्यय में अर्थव्यवस्था और राजस्व प्रयास अनुकूलतन।

वित्त आयोग ने, नगर निगमों के वित्त के विश्लेषण में, विशेष रूप से, जाँच के आधार पर निम्नलिखित से उत्पन्न समस्याओं को रेखांकित किया है:

- राजस्व एवं व्यय के बीच असंतुलन;
- नगरपालिकाओं के समान रूप से रखे गए वर्गों के बीच असंतुलन;
- सरकार के उच्च स्तरों पर नगरपालिकाओं की निर्भरता; तथा
- नगरपालिका समितियों के कर आधार की अपर्याप्तता और इनके द्वारा अपर्याप्त संसाधन जुटाना।

पंजाब के तृतीय वित्त आयोग ने, 664 करोड़ रुपये की व्यापक कमी को अपनी रिपोर्ट में दर्शाया था जो कि पंचायती राज संस्थाओं को हस्तांतरित होनी थी। तृतीय वित्त आयोग ने आवश्यक धनराशि को केंद्र प्रायोजित योजनाओं जैसे स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोज़गार योजना, सम्पूर्ण ग्रामीण रोज़गार योजना, इंदिरा आवास योजना, प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना, आदि योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए ग्राम पंचायतों को आवश्यक राशि जारी की थी। इस संदर्भ में, क्योंकि पंचायतों की भूमिका बहुत ही सीमित है, इसलिए इस निधि का स्ववित्त के रूप में उपयोग नहीं हो सका है।

आयोग ने यह भी पाया कि पंचायती राज संस्थाओं का बड़ा व्यय का हिस्सा केवल पारंपरिक कार्यों पर किया गया; और विकास संबंधी गतिविधियों पर किया गया व्यय सीमांत था। आयोग ने इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त की कि सरकार ने विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया शुरू की है, अन्य विभागों से संबंधित कई व्यापक कार्य, जैसे कि ग्रामीण जल आपूर्ति, स्वास्थ्य, शिक्षा, गरीब महिलाओं का उत्थान और बाल कल्याण आदि के लिए पंचायती राज संस्थाओं को हस्तांतरित किए जा रहे हैं, जिनका दूरगामी प्रभाव होगा।

यह सुनिश्चित करने के लिए कि राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों को गंभीरता से लिया गया है और वास्तव में लागू किया गया है, तीसरे वित्त आयोग ने सिफारिश की कि राज्य विधानमंडल के समक्ष सरकार द्वारा एक एक्शन टेकन रिपोर्ट प्रस्तुत की जानी चाहिए; और सरकार द्वारा एक कार्यान्वयन समिति का गठन किया जाना चाहिए।

वास्तव में अधिकांश राज्यों में, राज्य वित्त आयोग की रिपोर्ट में 'एक्शन टेकन रिपोर्ट' पर एक अध्याय/भाग भी होता है, जो राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन के प्रति संबंधित सरकार की गंभीरता को इंगित करता है।

ये भी देखा गया है कि राज्य वित्त आयोग अपने कार्यों, एवं सिफारिशों के क्रियान्वयन में कई बाधाओं का सामना भी करते हैं। यह मुख्यतः राजनीतिक, प्रशासनिक और वित्तीय कारणों से होता है। इसके साथ राजनीतिक और प्रशासनिक नेतृत्व के नकारात्मक दृष्टिकोण और स्थानीय निकायों की भूमिका और कार्यों के बारे में स्पष्टता की कमी, एक निराशाजनक दृश्य बना देती है। इसके अतिरिक्त, राज्य वित्त आयोगों ने विश्वसनीय आंकड़ों, और अधिकारियों तथा कर्मचारियों से सहयोग की कमी का सामना किया है; ये भी एक उत्साहित तथ्य नहीं है कि राज्य वित्त आयोगों के अधिकतर मूल्यवान सुझाव नहीं अथवा आंशिक रूप से कार्यांवित किए गए हैं।

भारतीय रिज़र्व बैंक के अंतर्गत वर्ष 2009 में किए गए अध्ययन के आधार पर निश्चित सिफारिशें और अवलोकन प्रस्तुत किए गए, जिससे राज्य वित्त आयोग सशक्त बन सके। इसने सभी राज्य वित्त आयोगों को एक समान टेम्पलेट (आकार पट्ट) प्रदान करने की सिफारिश की, ताकि ये नैमित्तिक रूप से गठित न हों। सभी राज्य सरकारों को नगर निकायों के लिए एक डेटा वेयरहाउस स्थापित करना होगा। राज्य वित्त आयोग की संरचना के संबंध में, अधिकतर राज्यों में नौकरशाहों, सेवा में अथवा सेवानिवृत्त, को आयोग का सदस्य नियुक्त करने की सामान्य प्रवृत्ति रही है। इस संदर्भ में अध्ययन के अंतर्गत यह सुझाया गया कि वित्तीय विशेषज्ञों का एक केन्द्रीय पूल स्थापित किया जाए, जिसमें से राज्य सरकार कम से कम राज्य वित्त आयोग के एक सदस्य का चुनाव कर सके।

मुख्य चिंताएँ

- राज्य नियमित तौर पर राज्य वित्त आयोगों का गठन नहीं कर रहे हैं, जैसा कि अनिवार्य है।
- वे समय पर रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं, प्रवीणता की कमी है।
- उनके पास बड़ी संख्या में स्थानीय सरकारों से संबंधित मुद्दों पर विचार करने का बड़ा कार्य है।
- वे विश्वसनीय आकड़ों की दु:साध्य समस्या का सामना करते हैं।
- राज्य वित्त आयोग और स्थानीय सरकारों को केंद्रीय वित्त आयोग के समक्ष संवैधानिक स्थिति में निचले दर्जे के रूप में देखा जाता है।

11वें वित्त आयोग ने अपनी रिपोर्ट में राज्य वित्त आयोगों की रिपोर्टों के संदर्भ में निम्नांकित विशेषताओं का उल्लेख किया था जो कि:

- राज्य वित्त आयोगों तथा प्रस्तुत रिपोर्टों में अवधियों में समक्रमिकता की कमी;
- विभिन्न राज्य के वित्त आयोगों की रिपोर्टों में अवधि के साथ-साथ गुणवत्ता से संबंधित दृष्टिकोण में अत्यधिक विविधता; तथा
- राज्य सरकारों द्वारा ऐक्शन टेकन रिपोर्ट को अंतिम रूप देने; तथा राज्य विधायिका के समक्ष प्रस्तुत की जाने वाली कार्यवाही की रिपोर्ट में विलम्ब होना।

20 राज्यों के एक अध्ययन से यह प्रकट हुआ है कि जहां तक हस्तांतरण से सम्बंधित सिफारिशों का संबंध है, यह बिना किसी संशोधन के बड़ी संख्या में अधिकतर राज्यों द्वारा स्वीकार कर लिया गया हैं। हालाँकि, मणिपुर के तीसरे, राजस्थान के चौथे, सिक्किम के पाँचवें, उत्तर प्रदेश के चौथे और पश्चिम बंगाल के चौथे राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों को कुछ संशोधनों के साथ स्वीकार कर लिया गया, जबकि गुजरात सरकार असाधारण रूप से द्वितीय वित्त आयोग के मुद्दे पर मौन है। केरल के पाँचवें और महाराष्ट्र के चौथे राज्य वित्त आयोगों की सिफारिशों को राज्य सरकारों ने पूर्णतः अस्वीकार कर दिया। इस संदर्भ में, ग्रामीण और शहरी स्थानीय निकायों के सशक्तिकरण के लिए राज्य वित्त आयोग को सुदृढ़ बनाना आवश्यक है। चौदहवें वित्त आयोग ने राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों का विश्लेषण करने पर महसूस किया कि राज्यों को राज्य वित्त आयोगों के प्रभावी कार्यप्रणाली को सुविधाजनक बनाने की तत्काल आवश्यकता है। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह सुझाव दिया कि राज्य सरकारों को राज्य वित्त आयोगों को सुदृढ़ बनाने पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। राज्य सरकारों को राज्य वित्त आयोग का उचित समय पर गठन, पर्याप्त प्रशासनिक सहयोग तथा सुचारू संचालन के लिए पर्याप्त संसाधन; और राज्य वित्त आयोग की रिपोर्ट को ऐक्शन टेकन रिपोर्ट के साथ समय पर विधायिका के समक्ष पेश करने के लिए आवश्यक प्रबंध करने होंगे। राज्यों से यह आशा की जाती है कि वे ऐक्शन टेकन रिपोर्ट को समयबद्ध तरीके से विधायिका के समक्ष प्रस्तुत करके राज्य वित्त आयोग द्वारा दी गई सिफारिशों पर तुरंत कार्रवाई करें (Chakraborty, October 2018, pp.4-5)।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) राज्य वित्त आयोग की संरचना पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) राज्य वित्त आयोगों की कार्यप्रणाली को उजागर कीजिए।

....

....

....

....

....

....

3) नगरपालिकाओं के मामले में वित्तीय व्यवस्था से संबंधित प्रमुख समस्याओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

....

7.6 निष्कर्ष

वित्त, प्रशासनिक मशीनरी के इंजन के लिए ईंधन के समान है। ये वास्तव में इंगित किया जा चुका है कि शासन वित्तीय प्रबंधन के काफी समीप है। ये स्थानीय सरकार के लिए भी प्रासंगिक है। स्थानीय संस्थाओं की दक्षता/कार्यक्षमता मूलरूप से इसके वित्त पर निर्भर करती है। यद्यपि इन संस्थाओं के वित्तीय स्रोतों की सूची लम्बी है, किंतु ये महत्वपूर्ण संस्थाएँ धन की कमी से ग्रसित हैं। इन संस्थाओं की वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए कुछ स्थायी व्यवस्था करने की माँग काफी समय से की जा रही है, जो 1992 में संशोधनों द्वारा पूर्ण होती प्रतीत हुई। 73वें और 74वें संवैधानिक

संशोधन अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, राज्यों में राज्य वित्त आयोगों की नियुक्ति की गई है। ये आयोग राज्यों के संसाधनों के हस्तांतरण, स्थानीय निकायों को सहायता में अनुदान; और स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थितियों को सुधारने के लिए उपायों के बारे में राज्यों को सिफारिशें देते हैं।

इस इकाई में हमने, राज्य वित्त आयोग की उत्पत्ति, महत्व, संरचना, शक्तियों, कार्यों एवं कार्यप्रणाली के बारे में ध्यान केंद्रित किया है। राज्य सरकारों द्वारा हर पांच वर्ष के बाद राज्य वित्त आयोगों के गठन का निर्णय एक ऐतिहासिक कदम था। पिछले कुछ वर्षों में, अपनी रिपोर्टों के माध्यम से राज्य वित्त आयोगों ने अधिकतर राज्यों में मूल्यवान सिफारिशें की हैं। ये बहुत महत्वपूर्ण सिफारिशें हैं, जो स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं, बशर्ते ये राज्य सरकारों द्वारा पर्याप्त रूप से कार्यान्वित की जाएं।

7.7 शब्दावली

राज्य की समेकित निधि : यह सभी सरकारी खातों में से सबसे महत्वपूर्ण है, जो कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 266(1)के तहत गठित किया गया था। सरकार द्वारा प्राप्त राजस्व और, असाधारण वस्तुओं को छोड़कर, इसके द्वारा किया गया व्यय समेकित निधि का हिस्सा है। राज्यों की समेकित निधि में, राज्यों द्वारा प्राप्त सभी राजस्वों के लिए राज्य की एक समेकित निधि (प्रत्येक राज्य के लिए अलग कोष) की स्थापना की गई है।

अनिवार्य कार्य : ये कार्य प्रकृति में अनिवार्य होते हैं। उदाहरण के लिए, नगर निगम शुद्ध पेय जल की आपूर्ति और जल स्रोतों के निर्माण और रखरखाव, संक्रामक रोगों की रोकथाम, जन्म एवं मृत्यु के पंजीकरण आदि कार्य अनिवार्य रूप से करता है।

7.8 संदर्भ लेख

A Comparative Study of State Finance Commissions in India. Retrieved from https://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/52824/2/02_abstract.pdf

Arora, R.K. & Goyal, R. (2013). *Indian Public Administration: Institutions and Issues.* New Delhi, India: New Age International Publishers.

Bohra, O.P. (1998). *Emerging Trends in State Local Fiscal Relations in India*. Hyderabad, India: National Institute of Rural Development.

Chakraborty, P., Gupta M. & Singh, R.K. (October 2018). *Overview of State Finance Commission Reports.* Retrieved from https://fincomindia.nic.in/writereaddata/html_en_files/fincom15/StudyReports/Overview%20of%20SFC%20reports.pdf

Ghosh,T.K. (2017). *Local Self-Government in India: Finances, Functions and Functionaries.* Lambert Academic Publishing.

Pethe, A., Misra, B.M. & P.B., Rakhe. *Strengthening Decentralisation – Augmenting the Consolidated Fund of the States by the Thirteenth Finance Commission: A Normative Approach.* Retrieved from https://www.rbi.org.in/scripts/PublicationsView.aspx?id=11400

Rao, P.N.S. (2006). *Urban Governance and Management.* New Delhi, India: Indian Institute of Public Administration

Rao, P.N.S. & Srivstava, G.C. (2003). *Municipal Finance in India*. New Delhi. India: Indian Institute of Public Administration.

Report of the15th Finance Commission for FY 2020-21. Retrieved from https://www.prsindia.org/report-summaries/report-15th-finance-commission-fy-2020-21

Singh, S. & Singh, S. (1985). *Local Government in India*. Jalandhar. India: New Academic Publishing Co.

Tamil Nadu Fiscal Responsibility Act- 2003. Retrieved from http://www.tnbudget.tn.gov.in/tnweb_files/FRBM/FRA%20Act.pdf

The Constitution of India. Retrieved from https://www.india.gov.in/my-government/constitution-india/constitution-india-full-text

The Punjab Finance Commission for Panchayats and Municipalities Act, 1994. Retrieved from https://www.latestlaws.com/index.php/bare-acts/state-acts-rules/punjab -state-laws/punjab-finance-commission-for-panchayats-and-municipalities-act-1994/

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

   - राज्य वित्त आयोग को उन सिद्धांतों की सिफारिशें करने की आवश्यकता होती है, जो राज्य और स्थानीय निकायों के मध्य संसाधनों के वितरण को नियंत्रित करते हैं, जैसे कि कर और अनुदान।
   - स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति सुधारने के लिए सुझाव देना (शहरी एवं ग्रामीण)।

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

   - स्थानीय निकायों को पर्याप्त धनराशि प्रदान करना।
   - वांछनीय स्तर पर, आवश्यक सेवाएं बनाए रखने के लिए स्थानीय निकायों को सक्षम बनाना;
   - वित्तीय अधिशेष का सृजन करना;

- स्थानीय निकायों के बीच सीधे और आड़े असंतुलन को सुधारना; तथा
- वित्तीय दायित्व स्वावलम्बन को प्रोत्साहित करना।

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
- भाग 7.4 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
- एकरूपता नहीं है;
- राज्य वित्त आयोग में सामान्यतः एक अध्यक्ष और छः सदस्य होते हैं।

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
- राज्य वित्त आयोग का गठन, प्रत्येक राज्य में, पाँच वर्ष का कार्यकाल पूर्ण होने पर होता है।
- आयोग उन सिद्धांतों की सिफारिश करते हैं, जिनके आधार पर वित्तीय संसाधनों का विभाजन राज्य सरकार एवं स्थानीय निकायों के मध्य होगा।
- कुछ राज्यों जैसे कि उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु ने अपने राज्य वित्त आयोगों को अतिरिक्त कार्य भी सौंपे हैं। परिणामस्वरूप, इन आयोगों ने वित्तीय और संसाधनों के अतिरिक्त अन्य पहलुओं पर भी कुछ मूल्यवान सुझाव दिए हैं।
- स्थानीय निकायों की दक्षता और प्रभावशीलता में सुधार के लिए राज्य वित्त आयोग विभिन्न प्रकार की सिफ़ारिशें कर रहे हैं।
- तमिलनाडु के राज्य वित्त आयोग ने, स्थानीय निकायों के लिए नये करों का सुझाव दिया है।
- प्रमुख समस्याओं की जाँच करता है।
- राज्य वित्त आयोग द्वारा की गई मूल्यवान सिफारिशों में से आंशिक रूप से कार्यान्वित की जाती है अथवा कार्यान्वित नहीं की जाती है।
- राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों को लागू करने हेतु सरकार की गम्भीरता को सुनिश्चित करने के लिए 'ऐक्शन टेकन रिपोर्ट' की सिफारिश की जाती है।

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
- राजस्व और व्यय के बीच असंतुलन;
- नगरपालिकाओं के समान रूप से रखे गए वर्गों के बीच असंतुलन;
- नगरपालिकाओं की सरकार के उच्च स्तरों पर निर्भरता; तथा
- कर के आधार की अपर्याप्तता, और नगरपालिका समितियों द्वारा अपर्याप्त संसाधन जुटाना।

इकाई 8 राज्य निर्वाचन आयोग*

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 राज्य निर्वाचन आयोगः महत्व

8.3 राज्य निर्वाचन आयोगः संरचना और गठन

8.4 राज्य निर्वाचन आयोगः शक्तियाँ

8.4.1 सिविल कोर्ट के रूप में निर्वाचन आयोग की शक्तियाँ

8.4.2 नियम बनाने की शक्ति

8.5 राज्य निर्वाचन आयोग : कार्य

8.6 निर्वाचन न्यायाधिकरण

8.7 राज्य निर्वाचन आयोग की भूमिका

8.8 निष्कर्ष

8.9 शब्दावली

8.10 संदर्भ लेख

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आपः

- राज्य निर्वाचन आयोग के महत्व का वर्णन कर सकेंगे;
- राज्य निर्वाचन आयोग की संरचना की चर्चा कर सकेंगे;
- राज्य निर्वाचन आयोग की शक्तियों और कार्यों की व्याख्या कर सकेंगे;
- राज्य निर्वाचन आयोग की भूमिका को उजागर कर सकेंगे; और
- लोकतांत्रिक शासन में, आधारभूत स्तर पर, राज्य निर्वाचन आयोग के प्रभाव की जांच कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

एक लोकतांत्रिक राजनीति की सबसे आवश्यक विशेषता, मुक्त और निष्पक्ष निर्वाचन/चुनाव का संचालन कराना है। भारत को विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्र होने का गौरव प्राप्त है। जैसा कि आप जानते होंगे कि भारतीय संविधान में अनुच्छेद 324 के तहत, भारत के राष्ट्रपति तथा उप-राष्ट्रपति; और लोक सभा, राज्य सभा, राज्य

***योगदानः* डॉ. रविंदर सिंह, प्रोफेसर, लोक प्रशासन विभाग, यू.एस.ओ.एल., पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।

विधान सभा और विधान परिषद के चुनावों के लिए एक स्वतन्त्र निर्वाचन आयोग का गठन करने का प्रावधान है। 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधन के पश्चात्, एक राज्य निर्वाचन आयोग के गठन करने का भी प्रावधान किया गया। यह राज्य निर्वाचन आयोग स्थानीय निकायों— पंचायतों और नगरपालिकाओं के चुनावों से संबंधित अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण के लिए सहायक होते हैं। इस इकाई में हम राज्य निर्वाचन आयोग के महत्व, संरचना, शक्तियों, कार्यों और भूमिका पर ध्यान केन्द्रित करेंगे।

8.2 राज्य निर्वाचन आयोगः महत्व

किसी भी देश में, राजनीतिक विकास का सार उस देश की संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं के विकास में निहित होता है, जो जनता की भागीदारी के लिए सहायक हों। स्थानीय सरकार की संस्थाएँ जनता की इच्छाओं, उनके उत्साह और शासन में सक्रिय भागीदारी के लिए एक रास्ता दिखाती हैं। दूसरे शब्दों में, स्थानीय सरकार की संस्थाएँ लोगों की लोकतांत्रिक ज़रूरतों को पूरा करती है; और राजनीतिक चेतना को भी व्यक्त करने के लिए चैनल के रूप में कार्य करती हैं। स्थानीय सरकार कई तरीकों से लोकतांत्रिक संस्थाओं को मज़बूत बनाने में योगदान दे सकती हैं, जिसके लिए ईमानदारी से किए गए प्रयासों की आवश्यकता है। लेकिन लोकतांत्रिक मानदंडों के बिना स्वशासी संस्था का अस्तित्व सम्भव ही नहीं है। लम्बे समय से यह एक चिन्ता का विषय रहा है। स्वतंत्रता के बाद से, भारत में अधिकांश राज्य सरकारें स्थानीय निकायों के स्वशासन के विकास के प्रति उदासीन रवैया दिखाती रही हैं। इन संस्थाओं पर कब्ज़ा करने की नीति व्यापक रूप से पनपी है, इसीलिए कई राज्यों में वर्षों से चुनाव नहीं हुए थे। इस संदर्भ में, एक उदाहरण हिमाचल प्रदेश का है, जहाँ शिमला नगर निगम के साथ 15 शहरों के चुनाव 1986 में 26 साल के अंतराल के बाद हुए थे। ऐसे अनेक उदाहरण दूसरे राज्यों में भी मिलते हैं। पंजाब में 1977 में तीन नगर निगम स्थापित किये गये थे, लेकिन ये लंबे समय तक अलोकतांत्रिक निकायों के रूप में रहे।

इस समस्या को दूर करने के लिए, विभिन्न भागों से बहुत बार मांग की गई है कि एक ऐसा तंत्र तैयार किया जाये जो स्थानीय निकायों के लिए नियमित और निष्पक्ष चुनाव करा सके। इस मांग को 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधन अधिनियमों के एक भाग द्वारा पूरा किया गया, इस भाग में राज्य निर्वाचन आयोग की स्थापना का प्रावधान किया गया है, जिसकी स्थापना राज्यपाल द्वारा होगी ताकि यह आयोग पंचायत और नगर निकायों के चुनावों की निगरानी, निर्देशन और नियंत्रण कर सकें। इस संदर्भ में, अनुच्छेद 243ZA और 243K के अनुसार यह राज्य निर्वाचन आयोग की ज़िम्मेदारी है कि वह पंचायतों और नगरपालिकाओं के सभी चुनावों के संचालन से सम्बन्धित अधीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण करे। संवैधानिक संशोधनों में सम्मिलित किए गए अनुच्छेद 245U के अनुसार सभी स्थानीय निकायों की कार्यकाल अवधि पाँच वर्ष तय की गई; और अगर यह पाँच वर्ष की अवधि से पहले भंग हो जाते हैं तो छः महीने की अवधि के भीतर फिर से स्थानीय निकाय का चुनाव कराने का प्रावधान है। यह अनुच्छेद राज्य निर्वाचन आयोग की भूमिका को रेखांकित करता है कि वह प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद नियमित चुनाव करवाए, और तब भी जब इस समय अन्तराल के बीच चुनाव कराने की आवश्यकता हो।

जब से संवैधानिक प्रावधानों को अपनाया गया, तब से राज्यों ने पंचायतों और नगर–पालिकाओं के लिए अपने स्वयं के कानून पारित किये, और साथ ही साथ राज्य निर्वाचन आयोग की स्थापना के प्रावधान को भी सम्मिलित किया है। हालांकि, कुछ राज्यों ने जैसे पंजाब ने राज्य निर्वाचन आयोग की स्थापना के लिए एक अलग अधिनियम पारित किया है। अधिकांश राज्यों ने राज्य निर्वाचन आयोगों का गठन किया, जिनका कार्य राज्य के स्थानीय निकायों के नियमित, स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव कराना है। यह भी कहा जा सकता है कि आयोग ये भी निर्धारित करेगा कि सरकार की नीतियों को कार्यान्वित करने के लिए स्थानीय नेतृत्व और सरकार के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए जनता की भागीदारी किस हद तक सुरक्षित हो सकती है।

8.3 राज्य निर्वाचन आयोग : संरचना और गठन

सभी राज्यों में निर्वाचन आयोग का नेतृत्व राज्य निर्वाचन आयुक्त करता है, जो राज्यपाल द्वारा नियुक्त किया जाता है। यद्यपि कुछ राज्यों जैसे पंजाब में उप-निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति का प्रावधान है। अधिकांश राज्यों में एक सेवानिवृत्त प्रशासनिक सेवक या एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश को निर्वाचन आयुक्त के रूप में नियुक्त किया जाता है। यहाँ हम पंजाब के केस का विवेचन कर सकते हैं।

i) निर्वाचन आयुक्त

राज्यपाल सरकारी राजपत्र की अधिसूचना द्वारा (क) राज्य सरकार के अधिकारी की नियुक्ति करता है जिसकी उम्र पचपन वर्ष से कम ना हो, और वित्तीय आयुक्त के रैंक का हो, या राज्य सरकार का प्रमुख सचिव हो जो न्यूनतम दो वर्ष की सेवा कर चुका हो; या (ख) राज्य निर्वाचन आयुक्त के रूप में उच्च न्यायालय के सेवारत या सेवानिवृत्त न्यायाधीश को नियुक्त करता है।

बशर्ते कि कोई भी अधिकारी, जो पेंशन प्राप्त कर चुके हैं, जैसा कि समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा सुनिश्चित किया जा सकता है, उनको निर्वाचन आयुक्त के रूप में नियुक्त नहीं किया जाएगा। निर्वाचन आयुक्त का पद छोड़ने के पश्चात्, वह राज्य सरकार के तहत किसी भी आगे की नियुक्ति के लिए अयोग्य हो जाता है।

ii) उप निर्वाचन आयुक्त

राज्य सरकार इस अधिनियम एवं नियमों के तहत, कर्तव्यों के निर्वहन में निर्वाचन आयुक्त की सहायता के लिए एक या एक से अधिक उप निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति करती है; और साथ ही राज्य निर्वाचन आयोग के सचिव की नियुक्ति भी करती है।

iii) अन्य निर्वाचन अधिकारी

क) **ज़िला निर्वाचन अधिकारी:** प्रत्येक जिले के लिए एक ज़िला निर्वाचन अधिकारी होता है, जो राज्य निर्वाचन आयोग के अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण के अधीन होता है। ज़िला निर्वाचन अधिकारी जिले में सभी चुनाव भूमिकाओं की तैयारी, संशोधन और सुधारों की निगरानी करता है। ज़िला निर्वाचन अधिकारी ऐसे दूसरे कार्य भी करता है, जो उसे निर्वाचन आयोग के द्वारा सौंपे जाते हैं।

ख) **निर्वाचक पंजीकरण अधिकारी** : प्रत्येक पंचायत या नगरपालिका के लिए निर्वाचन नामावली को तैयार करने, और उसे संशोधित करने का कार्य निर्वाचक पंजीकरण अधिकारी द्वारा किया जाता है। एक निर्वाचक पंजीकरण अधिकारी पंचायतों या नगरपालिकाओं के लिए निर्वाचन नामावली तैयार करने और संशोधित करने के लिए व्यक्तियों को नियुक्त करता है।

ग) **रिटर्निंग अधिकारी** : प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव के लिए एक पंचायत या नगरपालिका में एक सीट या एक से अधिक सीटें भरने के लिए, राज्य निर्वाचन आयोग राज्य सरकार के परामर्श से राज्य के अथवा स्थानीय प्राधिकरण के एक अधिकारी को रिटर्निंग अधिकारी नामित करता है, और एक अथवा एक से अधिक सहायक रिटर्निंग अधिकारियों को नियुक्त करता है।

घ) **मतदान केन्द्र और पीठासीन अधिकारी** : प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिए ज़िला निर्वाचन अधिकारी अपने अधिकार क्षेत्र में, पर्याप्त संख्या में मतदान केंद्र प्रदान करता है, और साथ ही मतदान केंद्रों को दर्शाने वाली एक सूची प्रकाशित करता है जिसमें मतदान केंद्रों तथा मतदान क्षेत्रों या मतदाताओं के समूह की सूची होती है।

ज़िला निर्वाचन अधिकारी प्रत्येक मतदान केन्द्र के लिए एक पीठासीन अधिकारी नियुक्त करता है, और मतदान अधिकारी/अधिकारियों की नियुक्ति भी करता है, जितने वह आवश्यक समझता है। इस संदर्भ में, मतदान अधिकारी, पीठासीन अधिकारी के निर्देश के अनुसार कार्य करता है।

पीठासीन अधिकारी के कर्तव्य : किसी मतदान केन्द्र पर, पीठासीन अधिकारी यह सुनिश्चित करता है कि वहाँ व्यवस्था बनी रहे और चुनाव निष्पक्ष हों; तथा मतदान अधिकारी पीठासीन अधिकारी को कार्य-निष्पादन में सहायता करता है।

पंजाब के पश्चात् एक अन्य राज्य

तमिलनाडु में राज्य निर्वाचन आयोग की अध्यक्षता एक निर्वाचन आयुक्त द्वारा की जाती है, जिसे सचिव द्वारा सहायता प्रदान की जाती है। सचिव को बड़ी संख्या में प्रशासनिक और तकनीकी कर्मचारियों द्वारा सहायता प्रदान की जाती है, जैसे मुख्य प्रशासनिक अधिकारी, वित्तीय सलाहकार, और मुख्य लेखा अधिकारी, प्रधान चुनाव अधिकारी (पंचायत), प्रधान चुनाव अधिकारी (नगरपालिका), कानूनी सलाहकार, जन संपर्क अधिकारी (पी.आर.ओ.), कम्प्यूटर प्रोग्रामर आदि।

8.4 राज्य निर्वाचन आयोग : शक्तियाँ

राज्य निर्वाचन आयोग के उपरोक्त सूचीबद्ध कार्यों के अलावा, इसे सामान्यतः अपने कर्तव्यों के निर्विघ्न निर्वहन के लिए कुछ शक्तियों का प्रयोग करने का भी अधिकार होता है। उदाहरण के लिए, पंजाब राज्य निर्वाचन आयोग निम्नलिखित शक्तियाँ प्रदान करता है (Punjab State Election Commission,http://www.pbsec.gov.in)।

8.4.1 सिविल कोर्ट के रूप में निर्वाचन आयोग की शक्तियाँ

एक जाँच के लिए निर्वाचन आयोग के पास निम्नलिखित मामलों के संबंध में, एक सिविल कोर्ट की शक्ति हैः

i) किसी व्यक्ति को बुलावा भेजना तथा उसकी उपस्थिति को बाध्य करना, और शपथ दिलाकर उसकी जाँच करना।

ii) साक्ष्य के रूप में, किसी भी दस्तावेज या अन्य सामग्री की खोज या प्रस्तुतीकरण की आवश्यकता।

iii) किसी भी अदालत या कार्यालय से सार्वजनिक रिकार्ड या उसकी प्रति का अनुरोध करना।

iv) शपथ पत्रों पर साक्ष्य प्राप्त करना।

v) गवाह या दस्तावेजों की जाँच के लिए आदेश जारी करना।

इसके अतिरिक्त, राज्य निर्वाचन आयोग के पास यह शक्ति भी है कि वह किसी भी व्यक्ति को, कानून के तहत मिले विशेषाधिकार के अधीन बिन्दुओं या ऐसे मामले पर जानकारी देने के लिए कह सकता है जो जाँच के विषय के लिए उपयोगी या प्रासंगिक हो।

निर्वाचन आयोग को एक सिविल न्यायालय माना जाता है और यदि कोई अपराध निर्वाचन आयोग की दृष्टि में आता है जैसा कि भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा 175, धारा 178, धारा 179, धारा 180 या 228 में वर्णित है, तो निर्वाचन आयोग अपराध दर्ज करके और अभियुक्तों के बयान दर्ज करने के बाद, मामले को उस मजिस्ट्रेट के पास भेजता है, जिसका अधिकार क्षेत्र होता है।

8.4.2 नियम बनाने की शक्ति

निर्वाचन आयोग के साथ परामर्श करने के बाद राज्य सरकार, सरकारी/शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, उद्देश्यों को पूरा करने के लिए निम्नलिखित से संबंधित नियम बनाती है:

i) मतदान केंद्रों पर पीठासीन अधिकारियों और मतदान अधिकारियों के कार्य।

ii) निर्वाचक नामावली के संदर्भ में मतदाताओं की जाँच।

iii) निर्वाचन क्षेत्र में मत देने का तरीका।

iv) किसी व्यक्ति द्वारा अपने आपको एक मतदाता के रूप में वोट देने के लिए पीछा करने के मामले में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया।

v) वोटिंग मशीनों के माध्यम से मत देने और रिकॉर्ड करने का तरीका, और मतदान केंद्र पर अपनाई जाने वाली प्रक्रिया जहाँ ऐसी मशीनों का उपयोग किया जाएगा।

vi) चुनाव के परिणाम की घोषणा से पहले सुरक्षा और मतगणना।

vii) वोटिंग मशीन के माध्यम से रिकॉर्ड किए गए वोटों की गिनती की प्रक्रिया।

viii) निर्धारित समय-सीमा के अन्तर्गत बैलेट बॉक्स, वोटिंग मशीन, बैलेट पेपर और अन्य आवश्यक पेपरों की सुरक्षित अभिरक्षा, जिसके लिए कागज़ात संरक्षित किए जाएंगे; और ऐसे कागज़ातों का निरीक्षण और निर्माण।

ix) वह स्थान, दिनांक और समय जिस पर दावे या आपत्तियां सुनी जाएंगी; और तरीके जिनके अन्तर्गत दावे या आपत्तियां सुनी जाएंगी और उनका निस्तारण किया जाएगा।

x) निर्वाचन क्षेत्रों के लिए, निर्वाचक नामावली का अंतिम प्रकाशन।

xi) चुनाव एजेंट, चुनाव का खर्च आदि।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी: i) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) राज्य निर्वाचन आयोग की स्थापना का मूल उद्देश्य क्या है?

....

....

....

....

....

2) राज्य में राज्य निर्वाचन आयोग की संरचना और गठन पर चर्चा कीजिए?

....

....

....

....

....

3) राज्य निर्वाचन आयोग की प्रमुख शक्तियाँ क्या हैं?

....

....

....

....

....

इससे पहले कि हम राज्य निर्वाचन आयोग के कार्यों का विवेचन करें, केन्द्र में निर्वाचन आयोग के कार्यों को समझना उचित होगा। यह कार्य संविधान के अनुच्छेद 324-329 में रेखांकित हैं।

i) चुनाव आयोग देश में चुनावों का पर्यवेक्षण, निर्देशन, नियंत्रण और संचालन करता है। देश में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने की ज़िम्मेदारी आयोग की है।

ii) यह लोक सभा के प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता सूची तैयार करता है और ऐसे ही राज्य विधान सभा की भी तैयार करता है। मतदाता सूची को संशोधित किया जाता है और हर चुनाव से पहले, और हर जनगणना के बाद तैयार किया जाता है।

iii) जब भी चुनाव होने होते हैं तो यह लोक सभा और राज्य विधान सभाओं के लिए चुनाव आयोजित करता है। यह उप चुनाव भी आयोजित करता है। यह जहाँ भी

विधान परिषद (राज्य विधान मंडल का ऊपरी सदन) मौजूद है, उसके लिए चुनाव कराने के लिए ज़िम्मेदार है। यह हर दो साल के बाद, राज्य सभा का चुनाव भी कराता है क्योंकि राज्य सभा के 1/3 सदस्य हर दो साल के बाद सेवानिवृत्त होते हैं।

iv) यह भारत के राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति के चुनाव का आयोजन करता है। यह मतदाता सूची तैयार करता है; निर्वाचक मंडल के प्रत्येक मतदाता के वेटेज और मूल्य के साथ-साथ चुनाव जीतने के लिए आवश्यक मतों का कोटा निर्धारित करता है।

v) चुनाव का संचालन करने के लिए, निर्वाचन आयोग केन्द्र के साथ-साथ राज्यों से भी आवश्यक व्यक्तियों की सेवाओं की माँग कर सकता है। इन अधिकारियों में से, आयोग रिटर्निंग अधिकारियों, पीठासीन अधिकारियों और अन्य मतदान अधिकारियों की नियुक्ति करता है।

vi) आम चुनाव के बाद, निर्वाचन आयोग राजनीतिक दलों को मान्यता प्रदान करता है– चाहे दल राष्ट्रीय स्तर का हो या राज्य स्तर का हो।

vii) चुनाव को निष्पक्ष और स्वतंत्र तरीके से कराने के लिए, निर्वाचन आयोग चुनाव की आचार संहिता का निर्धारण और घोषणा करता है।

viii) आयोग "निर्दलीय" उम्मीदवारों को चुनाव चिन्ह भी प्रदान करता है।

केन्द्रीय स्तर पर निर्वाचन आयोग की भूमिका और कार्यों की स्पष्ट जानकारी के पश्चात् अब हम राज्य निर्वाचन आयोग के कार्यों की व्याख्या करेंगे।

8.5 राज्य निर्वाचन आयोग : कार्य

जैसा की पहले बताया जा चुका है, प्रत्येक राज्य में राज्य निर्वाचन आयोग का गठन स्थानीय निकायों के लिए स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने के लिये किया गया है। इस प्रयोजन के लिए, आयोग को बड़ी संख्या में कार्य करने और उनसे सम्बन्धित गतिविधियों को आरंभ करने की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, गुजरात में, राज्य निर्वाचन आयोग का कार्य स्थानीय निकायों के नियमों के अनुसार वार्ड/चुनाव डिवीज़न की तैयारी से सम्बन्धित गतिविधियों, सीमाओं का निर्णय, ग्राम पंचायत, ताल्लुका एवं ज़िला पंचायत/नगरपालिका और नगर निगम जैसे स्थानीय निकायों के लिए मतदाता सूची तैयार करने के साथ सीटों का वितरण करना; और सामान्य/मध्यावधि/उपचुनाव का संचालन और देखरेख भी करना। इन्हीं कार्यों के निर्वहन के लिए, अनुच्छेद 243K के तहत राज्य निर्वाचन आयोग को स्थानीय निकायों के चुनावों के अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण का अधिकार दिया गया है। अब हम अधिकांश राज्यों में, राज्य निर्वाचन आयोग के कार्यों के बारे में विस्तार से विवेचन करेंगे।

i) **निर्वाचक नामावली तैयार करना:** प्रत्येक पंचायत और नगरपालिका के लिए एक निर्वाचक नामावली होती है, जिसे निर्वाचन आयोग के अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण में तैयार किया जाता है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिए निर्वाचक नामावली निर्धारित तरीके से तैयार की जाती है, और अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों के अनुसार लागू होती है।

प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिए निर्वाचक नामावली कोः

क) प्रत्येक आम चुनाव से पहले; तथा

ख) प्रत्येक उपचुनाव से पहले आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए संशोधित किया जाता है।

ii) **नामांकन के लिए तिथियों का चुनाव, आदिः** जैसे ही किसी सदस्य या सदस्यों को निर्वाचित करने के लिए अधिसूचना जारी की जाती है, राज्य निर्वाचन आयोग निम्नलिखित की घोषणा करता हैः

क) नामांकन करने की अंतिम तिथि, जो पहले उल्लेखित अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख के बाद सातवां दिन है, और यदि उस दिन सार्वजनिक अवकाश है, तो अगला वह दिन, जब सार्वजनिक अवकाश न हो;

ख) चुनाव के लिए नामांकनों की जांच की तारीख;

ग) उम्मीदवार द्वारा उम्मीदवारी वापस लेने की अंतिम तिथि;

घ) वह तिथि जब कोई मतदान होना है; तथा

ङ) वह तारीख, जिससे पहले चुनाव पूरा कराना है।

iii) **चुनाव की सार्वजनिक सूचनाः** एक अधिसूचना जारी करने पर, रिटर्निंग अधिकारी होने वाले चुनाव की सार्वजनिक सूचना देता है, चुनाव के लिए उम्मीदवारों के नामांकन आमंत्रित करता है और उस स्थान को भी निर्दिष्ट करता है जहाँ नामांकन पत्र वितरित किये जाने हैं।

iv) **चुनाव के लिए उम्मीदवारों का नामांकनः** किसी भी नागरिक को, यदि वह योग्य हो तो चुनाव के लिए उम्मीदवार के रूप में नामित किया जा सकता है।

v) **चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों की सूची का प्रकाशनः** उम्मीदवारी वापस लेने की अवधि की समाप्ति के तुरन्त बाद, रिटर्निंग अधिकारी चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों की सूची तैयार व प्रकाशित करता है, जिसमें वैध रूप से उन नामांकित उम्मीदवारों के नामों की सूची को शामिल किया जाता है, जिन्होंने निर्धारित अवधि के भीतर अपनी उम्मीदवारी वापस नहीं ली है। इस सूची में वर्णमाला के क्रम में नाम शामिल होते हैं, और चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के पते भी उसी क्रम में शामिल किये जाते हैं जैसे अन्य विवरण के साथ नामांकन पत्र में भरे थे।

vi) **मतदान के लिए समय तय करनाः** राज्य निर्वाचन आयोग उन घंटों को सुनिश्चित करता है जिनके दौरान मतदान का संचालन होगा, और तय किए गए घंटे प्रकाशित किए जाते हैं। चुनाव में मतदान के लिए, आबंटित की गई कुल समय सीमा एक दिन के लिए, आठ घंटे से कम नहीं हो सकती।

vii) **आपात स्थिति में मतदान स्थगित करनाः** यदि किसी चुनाव में, किसी मतदान केंद्र पर कार्यवाही बाधित होती है या रोकी जाती है, तो संबंधित पीठासीन अधिकारी अपने अधिकार क्षेत्र में मतदान स्थगित करने की घोषणा कर सकता है।

vii) **मतों की गिनती:** प्रत्येक पंचायत अथवा नगरपालिका के चुनाव के पश्चात् रिटर्निंग अधिकारी की देखरेख और निर्देशन में मतों की गिनती की जाती है।

8.6 निर्वाचन न्यायाधिकरण

कुछ राज्यों ने निर्वाचन चुनाव संबंधी विवादों को सुलझाने के लिए, राज्य स्तर पर एक निर्वाचन न्यायाधिकरण स्थापित करने का भी प्रावधान किया गया है। इस संबंध में, पंजाब में, राज्य सरकार द्वारा निर्वाचन आयोग की सलाह से प्रत्येक जिले या उसके किसी भाग के लिए, ज़िला या उप-मंडल मुख्यालय पर एक निर्वाचन न्यायाधिकरण का गठन करने का प्रावधान है। आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा राज्य सरकार, भारतीय प्रशासनिक सेवा या प्रांतीय सिविल सेवा के प्रथम श्रेणी/समूह क के अधिकारी, जिसके पास पर्याप्त प्रशासनिक, कानूनी या मजिस्ट्रियल अनुभव होता है, उसे चुनाव न्यायाधिकरण का पीठासीन अधिकारी नियुक्त करती है।

यह ध्यान देने योग्य है कि अधिनियम के प्रावधान के अनुसार प्रस्तुत चुनाव याचिका को छोड़कर किसी भी चुनाव पर प्रश्न नहीं किया जाता है। इस संबंध में, केवल वह निर्वाचन न्यायाधिकरण, जिसका अधिकार क्षेत्र है, उसमें चुनाव की याचिकाओं पर निर्णय लेने की शक्ति होती है। चुनाव न्यायाधिकरण अपने विवेक से, न्याय या सुविधा के लिए, अपने निर्दिष्ट मुख्यालय के अलावा किसी अन्य स्थान पर पूर्ण या आंशिक रूप से चुनाव याचिका पर निर्णय लेने का प्रयास कर सकता है।

निर्वाचन न्यायाधिकरण के समक्ष प्रक्रिया

अधिनियम के प्रावधान के अधीन, प्रत्येक चुनाव याचिका पर मुकदमों की सुनवाई के लिए चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा, जैसा कि हो सकता है नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का केंद्रीय अधिनियम 5) के अन्तर्गत किया जाता है। "निर्वाचन न्यायाधिकरण के पास किसी भी गवाह या गवाहों की जाँच करने के लिए लिखित में दर्ज किए जाने वाले कारणों से इनकार करने का विवेक होगा, अगर यह राय है कि इस तरह के गवाह या गवाहों के सबूत चुनाव के निर्णय के लिए भौतिक नहीं हैं। याचिका या यह कि इस तरह के गवाह या गवाह का पक्ष लेने वाली पार्टी चुनाव मैदान की कार्यवाही में देरी करने के लिए तुच्छ आधार पर या ऐसा कर रही है।" (Punjab State Election Commission Act, 1994, Chapter XII (81))

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (केंद्रीय अधिनियम, 1872) अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, एक चुनाव याचिका की सुनवाई के लिए सभी मामलों में लागू करने के लिए समझा जाएगा। सबसे पहले, हम भ्रष्ट आचरण और चुनावी अपराधों पर चर्चा करेंगे, जो चुनावों के दौरान देखे जा सकते हैं।

भ्रष्ट आचरण और चुनावी अपराध

यहां यह भी उचित होगा, यदि हम चुनावों के दौरान सामान्य भ्रष्ट व्यवहारों को जाने और समझें। राज्य निर्वाचन आयोग अधिनियम (पंजाब) के तहत, निम्नलिखित को भ्रष्ट आचरण माना जाता है:

I) रिश्वत

i) किसी उम्मीदवार या उसके चुनाव एजेंट या उसकी सहमति से किसी भी व्यक्ति को उपहार की पेशकश या वादा, जो वस्तु के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष

रूप से किसी भी व्यक्ति को उपहार देकर निम्नलिखित के लिए उत्प्रेरित करनाः

क) एक व्यक्ति को चुनाव में उम्मीदवार के रूप में खड़े होने या खड़े न होने के लिए; या

ख) मतदाता मतदान करने या मतदान करने से परहेज़ करता है, विशेषकर चुनाव में पुरस्कार के लिए:

- एक नागरिक जो चुनाव में उम्मीदवार के रूप में खड़ा होता है या नहीं खड़ा होता है, या उम्मीदवारी वापस लेता है, या उसकी उम्मीदवारी वापस नहीं लेता; अथवा
- मतदान करता है या मतदान नहीं करता है।

ii) रसीद या सहमति से प्राप्त की गई कोई सन्तुष्टि, चाहे वह स्वाभाविक हो या इनाम के लिए;

क) एक व्यक्ति द्वारा, उम्मीदवार के रूप में खड़े होने या उम्मीदवार होने से पीछे हटने के लिए; या

ख) किसी व्यक्ति द्वारा स्वयं के लिए मतदान करने या मतदान करने से बचने के लिए, या किसी मतदाता को मतदान के लिए प्रेरित करने या मतदान करने से बचने के लिए, या किसी भी उम्मीदवार को उसकी उम्मीदवारी वापस लेने के लिए हो।

II) किसी भी चुनावी अधिकार का उपयोग करते हुए, किसी भी प्रकार का उम्मीदवार या उसके चुनाव एजेंट का हस्तक्षेप या हस्तक्षेप करने के प्रयास का अवांछित प्रभाव। इस संबंध में, अधिनियम के अनुसारः

i) इस उपबंध के प्रावधानों का बिना पक्षपात किए, ऐसा कोई भी व्यक्ति जोः

क) किसी भी उम्मीदवार या किसी भी निर्वाचक को, किसी भी प्रकार की चोट जिसमें किसी भी जाति या समुदाय से सामाजिक बहिष्कार और पूर्व-संचार या निष्कासन की धमकी देता है; या

ख) एक उम्मीदवार या मतदाता को यह विश्वास दिलाने के लिए प्रेरित करता है कि वह दिव्य नाराज़गी या आध्यात्मिक रूप से निन्दा का भागी माना जाएगा या बनेगा; और

ii) लोक नीति की घोषणा सार्वजनिक कार्रवाई का वादा या चुनावी अधिकार के साथ हस्तक्षेप करने के उद्देश्य के बिना कानूनी अधिकार का मात्र प्रयोग, हस्तक्षेप नहीं माना जाएगा।

III) किसी उम्मीदवार या उसके एजेंट द्वारा उम्मीदवार की सहमति से धर्म, वंश, जाति, समुदाय या भाषा के आधार पर मतदान करने या मतदान करने से परहेज़ करने की अपील करना या उस उम्मीदवार के चुनाव की संभावनाओं को बढ़ाने के लिए, राष्ट्रीय चुनाव चिन्हों, जैसे राष्ट्रीय ध्वज या धार्मिक प्रतीकों का उपयोग करना या करने की अपील करना।

IV) अपने चुनाव की संभावनाओं को बढ़ाने के लिए, यदि कोई उम्मीदवार या उसका एजेंट या उम्मीदवार की सहमति से कोई अन्य व्यक्ति या उसका चुनाव एजेंट धर्म, वंश, जाति समुदाय या भाषा के आधार पर भारत के नागरिकों के विभिन्न वर्गों के बीच दुश्मनी या घृणा की भावना को बढ़ावा देने का प्रयास करे।

V) अपने चुनाव की संभावनाओं को बढ़ाने के लिए, यदि कोई उम्मीदवार या उसका एजेंट या उम्मीदवार की सहमति से 'सती' प्रथा का प्रचार या महिमामंडन करने का प्रयास करें। इस अर्थ के प्रयोजनों के स्पष्टीकरण के तौर पर, सती के सम्बन्ध में 'सती' या 'महिमामंडन' का अर्थ सती (निवारण) अधिनियम, 1987 में दिया गया है।

VI) यदि किसी उम्मीदवार के व्यक्तिगत चरित्र या आचरण के सम्बन्ध में किसी भी उम्मीदवार की उम्मीदवारी या उम्मीदवारी वापसी के संबंध में कोई तथ्य प्रकाशित किया जाता है जो कि ग़लत है तथा वह ग़लत मानता है तो इस बयान की गणना उम्मीदवार की चुनाव की संभावनाओं को हानि पहुँचाने के रूप में की जाएगी।

VII) किसी उम्मीदवार या उसके एजेंट द्वारा उम्मीदवारी की सहमति से किसी वाहन का उपयोग चाहे भुगतान करके या फिर बिना भुगतान के निर्वाचक के अतिरिक्त, स्वयं उम्मीदवार, उसके परिवार के सदस्यों या उसके एजेंट द्वारा मुफ्त सुविधा के लिए ऐसे वाहनों का मतदान केंद्र पर जाने या आने के लिए उपयोग। एक निर्वाचक द्वारा या कई निर्वाचकों द्वारा किसी वाहन या पोत को अपने संयुक्त लागत पर किसी ऐसे मतदान केन्द्र या चुनावी क्षेत्रों से चुनाव के उद्देश्य से आने या जाने के लिए उपयोग में लाये जाये तो इसे भ्रष्ट आचरण नहीं माना जाता, यदि वाहन या जहाज जिसे किराए पर लिया जाता है, वह यांत्रिक शक्ति द्वारा संचालित नहीं किया जाता है। इस तरह के किसी भी मतदान केंद्र या स्थान से आने या जाने के लिए किसी भी सार्वजनिक परिवहन वाहन या जहाज या किसी भी ट्रेन्चर या रेलवे गाड़ी का उपयोग निर्वाचक अपनी लागत से करता है तो इसके तहत भ्रष्ट आचरण नहीं माना जाता है।

VIII)किसी उम्मीदवार या उसके एजेंट द्वारा उम्मीदवार की सहमति से उम्मीदवार के चुनाव की संभावनाओं को बढ़ाने के लिए किसी भी व्यक्ति से जो सेवा में है, कुछ प्राप्त करने या खरीदने या प्राप्त करने का प्रयास, उस उम्मीदवार के चुनाव की संभावनाओं को बढ़ाने के लिए वोट देने के अतिरिक्त अन्य कोई भी सहायता।

IX) उम्मीदवार या उसके एजेंट द्वारा बूथ कैप्चरिंग के केस में,"एजेंट'' से तात्पर्य एक चुनाव एजेंट से है, एक पोलिंग एजेंट जो उम्मीदवार की सहमति के साथ चुनाव के संबंध में एक एजेंट के रूप में काम करता है। एक व्यक्ति यदि चुनाव में उम्मीदवार की संभावनाओं को बढ़ाने के लिए सहायता करता है, तो उसे उम्मीदवार का चुनाव एजेंट समझा जाएगा।

वर्गों के बीच शत्रुता को बढ़ावा देना

कोई भी व्यक्ति जो चुनाव के सिलसिले में धर्म, वंश, जाति, भाषा आदि के आधार पर प्रचार और प्रयास करता है, विभिन्न वर्गों के नागरिकों के बीच दुश्मनी या नफरत की भावना फैलाये तो यह एक दंडनीय अपराध है। जिससे तीन साल का कारावास या जुर्माना या दोनों ही हो सकता है ।

उच्च न्यायालय में अपील

यदि निर्वाचन न्यायाधिकरण का निर्णय किसी अन्य कानून में निहित नहीं है तो इस केस में किसी भी प्रश्न पर उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है, चाहे वह निर्वाचन न्यायाधिकरण के आदेश से संबंधित कानून अथवा तथ्य से संबंधित हो।

8.7 राज्य निर्वाचन आयोग की भूमिका

73वें और 74वें संवैधानिक संशोधन अधिनियमों के अनुसार, राज्य निर्वाचन आयोग स्थापित किये गए और यह देश के आधारभूत स्तर के लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। यह केन्द्रीय निर्वाचन आयोग के समान पैटर्न पर कामकाज कर रहे हैं, तथा स्थानीय निकायों के स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों के संचालन के लिए इनमें लगभग समान शक्तियाँ प्रदत्त हैं। इस संबंध में, राज्य निर्वाचन आयोग विभिन्न प्रकार के कार्य और भूमिका निभा रहे हैं। इनकी भूमिका को नियामक; प्रशासनिक; तथा अर्ध-न्यायिक श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

राज्य निर्वाचन आयोग की नियामक भूमिका पहले ही सूचीबद्ध किये गये कार्यों से स्पष्ट हो जाती है। वार्ड या क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों, चुनाव चिन्हों, निर्वाचक नामावलियों, चुनाव खर्चों आदि के परिसीमन को नियंत्रित और विनियमित करने की इनकी शक्ति महत्वपूर्ण नियामक कार्य हैं, जो किसी भी चुनाव के सुचारू संचालन के लिए आवश्यक हैं। चुनावों के संचालन के लिए, अपने कर्मचारियों और स्थानीय स्तर पर अन्य विभागों के कर्मचारियों की मदद से बड़ी संख्या में प्रारंभिक कार्यों को करने की आवश्यकता होती है। इसमें, राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा किए जाने वाले विभिन्न प्रकार के प्रशासनिक और नियमित कार्य सम्मिलित हैं। साथ ही, राज्य निर्वाचन आयोग को चुनाव प्रक्रिया के दौरान कुछ अर्ध-न्यायिक कार्य भी करने होते हैं। वास्तव में, किसी भी चुनाव प्रक्रिया में कुछ विवादों का एक या अन्य पक्षों द्वारा उठाये जाने की संभावना होती है। चुनाव परिणामों को समयबद्ध तरीके से घोषित करने के लिए, राज्य निर्वाचन आयोग को चुनाव याचिकाओं या अपीलों आदि को निपटाने की शक्ति प्राप्त होती है। अनुच्छेद 243(0) के प्रावधानों के अनुसार, न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप निर्दिष्ट किये गये हैं, हालांकि यदि कोई त्रुटि या अधिकार क्षेत्र का विवाद हो या किसी संवैधानिक प्रावधान का उल्लंघन हुआ हो तो राज्य निर्वाचन आयोग के निर्णय के विरुद्ध न्यायालय में अपील की जा सकती है। इस संदर्भ में, अनियमित चुनावों से पहले की जाने वाली सामान्य शिकायतें अब न के बराबर हैं; और जहाँ भी इस तरह की घटनाओं की सूचना मिलती है, उनका सामान्यतः आयोग द्वारा सामाधान किया जाता है।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी: i) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) राज्य निर्वाचन आयोग के प्रमुख कार्यों की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

2) चुनावों के दौरान घटित किन्हीं चार भ्रष्ट आचरणों तथा निर्वाचक अपराधों की सूची बनाइए।

....

....

....

....

....

3) राज्य चुनाव आयोग की भूमिका को उजागर कीजिए।

....

....

....

....

....

8.8 निष्कर्ष

भारत विश्व का सबसे विशाल और जीवंत लोकतन्त्रों में से एक है। राज्य निर्वाचन आयोग ने अपने कर्तव्यों का ईमानदारी से निर्वहन कर, लोकतंत्र को मज़बूती प्रदान की है। वर्षों से आयोग ने अपने संवैधानिक अधिकारों का स्पष्ट, निर्भीक, और निष्पक्ष रूप से प्रयोग करके, अपनी विश्वसनीयता को बढ़ाया है। लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की प्रणाली को स्थापित करने और मज़बूत बनाने की प्रक्रिया में, संविधान के 73वें और 74वें संशोधन का अधिनियमित होना एक बड़ा योगदान सिद्ध हुआ है। इस इकाई में, हमने राज्य चुनाव आयोग के महत्व, संरचना, शक्तियों, कार्यों और भूमिका का वर्णन किया है। यह देखा गया है कि राज्य चुनाव आयोग, भारत में लोकतंत्र की जड़ों को मज़बूत बनाने के लिए स्वतंत्र, निष्पक्ष और समय पर चुनाव कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

8.9 शब्दावली

निर्वाचक मंडल : इसका अर्थ है, किसी विशेष कार्यालय में किसी को चुनने के लिए निर्वाचित एक निकाय।

निर्वाचक नामावली : यह एक विशेष निर्वाचन क्षेत्र में योग्य मतदाताओं की सूची है, जिन्हें मतदान करने के लिए पंजीकृत किया गया है।

नामांकन : यह एक सार्वजनिक पद के चुनाव के लिए एक उम्मीदवार के चयन की प्रक्रिया का एक हिस्सा है।

याचिका : कई लोगों द्वारा हस्ताक्षरित एक लिखित दस्तावेज, जो सरकार को स्थानीय स्तर पर कुछ करने या बदलने के लिए कहता है।

मतदान अधिकारी : मतदान केंद्रों पर उचित और व्यवस्थित मतदान के लिए एक जिम्मेदार अधिकारी।

रिटर्निंग अधिकारी : रिटर्निंग अधिकारी निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव के संचालन के लिए जिम्मेदार होता है। वह सुनिश्चित करता है कि चुनाव कानून के अनुसार आयोजित किए जाएं।

8.10 संदर्भ लेख

Arora, R.K. & Goyal, R. (2013). *Indian Public Administration: Institutions and Issues.* New Delhi, India: New Age International Publishers.

Punjab State Election Commission. Retrieved from http://www.pbsec.gov.in/

Singh, S. & Singh, S. (1985). *Local Government in India*. Jalandhar, India: New Academic Publishing Co.

Tamil Nadu State Election Commission. Retrieved from http://www.tnsec.tn.nic/tnsee/about_ur

The Punjab State Election Commission Act. (1994). Retrieved from http://www.bareactslive.com/Pun/pu194.htm

The Constitution of India. Retrieved from https://www.india.gov.in/my-government/constitution-india/constitution-india-full-text

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:
   - स्थानीय निकायों पंचायतों और नगरपालिकाओं के लिए स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए।
   - नियमित चुनाव कराने के लिए।
2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:
   - भाग 8.3 देखिए।
3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:
   - किसी व्यक्ति और दस्तावेजों को तलब करना; सबूत/शपथ पत्र प्राप्त करना; एवं किसी भी सार्वजनिक दस्तावेज के लिए अनुरोध करना; तथा
   - अनेकों नियम बनाने की शक्ति।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- निर्वाचक नामावली तैयार करना;
- चुनाव के लिए उम्मीदवारों का नामांकन;
- उम्मीदवारों की सूची का प्रकाशन; तथा
- मतदान और मतगणना का संचालन करना।

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- रिश्वत;
- इनाम की प्राप्ति;
- अवांछित प्रभाव; तथा
- भारत के नागरिकों के विभिन्न वर्गों के बीच दुश्मनी या घृणा की भावना को बढ़ावा देना।

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- भाग 8.7 देखिए।

इकाई 9 लोकायुक्त*

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 लोकायुक्तः विकास, आवश्यकता तथा महत्व

9.3 लोकायुक्तः संगठनात्मक संरचना

9.4 लोकायुक्त की नियुक्ति

9.5 लोकायुक्तः शक्तियाँ एवं कार्य

9.6 लोकायुक्त की भूमिकाः आलोचनात्मक विश्लेषण

9.7 निष्कर्ष

9.8 शब्दावली

9.9 संदर्भ लेख

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आपः

- राज्य स्तर पर लोकायुक्त के विकास, आवश्यकता तथा महत्व को समझ सकेंगे;
- लोकायुक्त की संगठनात्मक संरचना पर चर्चा कर सकेंगे;
- लोकायुक्त की नियुक्ति प्रणाली को उजागर कर सकेंगे;
- लोकायुक्त की शक्तियों एवं कार्यों की व्याख्या कर सकेंगे; तथा
- जनता की शिकायतों के निवारण में लोकायुक्त की भूमिका की जाँच कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

भारत के राज्यों में, लोकायुक्त एक भ्रष्टाचार विरोधी लोकपाल संगठन है। इस संदर्भ में, लोकपाल तथा लोकायुक्त अधिनियम, 2013 ने केन्द्र में लोकपाल के गठन की नींव रखी; और राज्य स्तर पर लोकायुक्त के गठन और उसको सुदृढ़ बनाने का मार्ग प्रशस्त किया; जिनका प्रमुख कार्य सार्वजनिक पदाधिकारिओं पर लगे भ्रष्टाचार के आरोपों और संबंधित मामलों की जाँच करना है। यह सर्वविदित है कि भ्रष्टाचार एक प्रमुख समस्या है, जो देश की स्थिरता और सुरक्षा को ख़तरे में डालता है; सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक विकास को भी ख़तरे में डालता है; तथा जनतंत्र और नैतिकता के मूल्यों को कमज़ोर करता है। एक अक्षम प्रशासनिक तंत्र; शासन के पुराने तरीके, सरकारी संस्थाओं के काम में जवाबदेही एवं पारदर्शिता की कमी; और असंवेदनशीलता और अप्रभावी सार्वजनिक सेवा वितरण प्रणाली के कारण सरकारी

**योगदान* : डॉ. संगीता ढल, सहायक प्रोफेसर, कालिंदी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

पहल के अंतिम परिणाम प्रभावित होते हैं। प्रशासन में भ्रष्ट प्रथाओं के संदर्भ में, इसका हानिकारक प्रभाव पड़ता है; और भ्रष्टाचार ऐसी किसी भी व्यवस्था का स्वाभाविक परिणाम बन जाता है, जहाँ निष्पक्षता तथा कानून का नियम आत्मचेतना एवं अंगूठे के नियम में बदल जाता है। भ्रष्टाचार की घटना सरकार की मुख्य महत्वाकांक्षी परियोजनाओं और नीतियों को लागू करने की दिशा में मंद प्रगति का एक प्रमुख कारण बन गई है, जिससे सरकारी खजाने को भारी नुकसान पहुँचा है। भ्रष्टाचार का अस्तित्व अर्थव्यवस्था, राजनीति और समाज के सभी स्तरों से संबंधित भ्रष्ट प्रथाओं के साथ सर्वव्यापी हो गया है। इस प्रकार, भारत के पहले प्रशासनिक सुधार आयोग ने नागरिकों की शिकायतों के निवारण के लिए ''लोकपाल'' और ''लोकायुक्त'' के रूप में दो विशेष प्राधिकरणों की स्थापना की सिफारिश की थी।

लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम (2013) में, अधिनियम के प्रारंभ होने की तिथि से 365 दिनों की निर्दिष्ट अवधि के भीतर राज्य विधान–मंडल द्वारा एक कानून बनाने के माध्यम से लोकायुक्त संस्था की स्थापना के लिए एक जनादेश है। इस संबंध में, अधिनियम के अन्तर्गत सभी राज्यों को अपनी सुविधा अनुसार लोकायुक्त तंत्र के नियमों पर निर्णय लेने का अवसर और स्वतंत्रता प्रदान की गई।

यहाँ तक की, इस अधिनियम के आने के पूर्व ही कई राज्यों ने लोकायुक्त का गठन कर लिया था। अतः इस इकाई में हम, राज्य स्तरीय लोकायुक्त की आवश्यकता और महत्व पर चर्चा करेंगे। यह देखा गया है कि प्रत्येक राज्य में लोकायुक्त की संरचना में अंतर है। इस प्रकार, राज्यों में लोकायुक्तों की स्थिति को ध्यान में रखते हुए, हम लोकायुक्तों की नियुक्ति प्रणाली, कार्यकाल, अधिकार क्षेत्र, संगठनात्मक ढाँचे पर चर्चा करेंगे और उनकी कार्यप्रणाली का विश्लेषण करेंगे।

9.2 लोकायुक्त : विकास, आवश्यकता तथा महत्व

लोकायुक्त की उत्पत्ति का स्रोत स्कॅन्डिनेवियन देशों के लोकपाल में मिलता है। लोकपाल वह व्यक्ति है, जिसकी नियुक्ति कुशासन से उत्पन्न नागरिकों की समस्या के समाधान के लिए की जाती है। स्वीडन, विश्व का पहला देश है, जिसने वर्ष 1809 में लोकपाल का गठन किया था। प्रशासनिक प्रणाली को भ्रष्टाचार और दुर्भावनाओं से मुक्त करने की भारत सरकार की पहल के परिणामस्वरूप, दो भ्रष्टाचार विरोधी प्रहरी, अर्थात् लोकपाल और लोकायुक्त का सृजन हुआ। इस संदर्भ में, यह अनिवार्य है कि इन दोनों संस्थाओं के विकास के पथ का अवलोकन किया जाए।

प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग ने नागरिकों की समस्या समाधान हेतु ''लोकपाल'' और ''लोकायुक्त'' के रूप में नामित दो विशेष प्राधिकरणों की स्थापना की सिफारिश की। इन दोनों संस्थाओं की स्थापना स्कॅन्डिनेवियन देशों के ओम्बुडसमेन और न्यूज़ीलैंड के जाँच हेतु संसदीय आयुक्त के पैटर्न पर स्थापित किया जाना था।

प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिश पर लोकायुक्त की नियुक्ति निश्चित समय अवधि के लिए की गयी, ताकि वह स्वतंत्र तथा निष्पक्ष रूप से कार्यों का निर्वहन कर सके। इस पद पर उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश अथवा उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश की नियुक्ति की जाती है। 1972 में महाराष्ट्र, 1973 में राजस्थान, 1975 में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि राज्यों ने भी इस संस्था का गठन किया। कुछ राज्यों जैसे महाराष्ट्र और राजस्थान में लोकायुक्त और उप-लोकायुक्त का प्रावधान है।

वर्ष 2005 में द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया गया। आयोग ने अपनी रिपोर्ट शासन में नैतिकता में सिफारिश की है कि लोकायुक्त एक बहु-सदस्यीय संगठन होना चाहिए, जिसमें अध्यक्ष पद पर न्यायिक सदस्य की नियुक्ति की जानी चाहिए, प्रख्यात विधिवेत्ता अथवा प्रशासनिक अधिकारी को सदस्य तथा राज्य सतर्कता आयोग के अध्यक्ष को पदेन सदस्य होना चाहिए। अध्यक्ष का चुनाव मुख्यमंत्री, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और विधान सभा में विपक्ष के नेता द्वारा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश (सेवानिवृत्त) अथवा उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश के पैनल में से चुना जाना चाहिए। समिति को प्रख्यात विधिवेत्ता अथवा प्रशासनिक अधिकारियों के पैनल में से दूसरे सदस्य का भी चयन करना चाहिए। इस रिपोर्ट में आयोग हालांकि किसी भी उप-लोकायुक्त की नियुक्ति का पक्ष नहीं लेता है। इसके अतिरिक्त यह इस बात पर ज़ोर देता है कि लोकायुक्त द्वारा केवल भ्रष्टाचार संबंधित प्रकरणों की ही सुनवाई की जायेगी। नागरिकों की सामान्य शिकायतों को लोकायुक्त के अधिकार क्षेत्र के बाहर रखा गया। लोकायुक्त के पास अपनी स्वयं की जाँच व्यवस्था होनी चाहिए (Second Administrative Reforms commission, 2007, https://darpg.gov.in/sites/default/files/ethics4.pdf)।

यहां तक कि अगर राज्यपाल संवैधानिक रूप से सही है, तो भी लोकायुक्त के समक्ष आग्रह करने और राज्य सरकार का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने की समस्या आ सकती है, विशेष रूप से इसे संदर्भित मामलों में निर्णयन के लिए आवश्यक सूचनाओं और अभिलेखों को प्राप्त करने में सहयोग चाहिए। इसी प्रकार, लोकायुक्त की सिफारिशों पर की जाने वाली कार्रवाई हेतु भी राज्य सरकार के सहयोग और समर्थन की आवश्यकता होती है।

प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों के आधार पर भारत के सभी राज्यों में समरूपता से लोकायुक्त प्रणाली को लागू करने हेतु संविधान में संशोधन किया गया ताकि कुप्रबंधन और प्रशासनिक अन्याय की समस्याएं सुलझाई जा सकें। कई प्रयासों के बाद, लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013 को, 1 जनवरी, 2014 को राष्ट्रपति से स्वीकृति प्राप्त हुई और 16 जनवरी, 2014 से यह अधिनियम लागू हुआ।

लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम 2013

लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013 को आमतौर पर लोकपाल अधिनियम के रूप में संदर्भित किया जाता है, जो संघ के लिए लोकपाल की स्थापना और राज्य के लिए लोकायुक्त का प्रावधान करता है; और जो सरकारी अधिकारियों के खिलाफ भ्रष्टाचार या भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच के लिए राज्य में लोकायुक्त है। यह अधिनियम पूरे भारत, और भारत के भीतर और बाहर कार्यरत ''लोक सेवकों'' पर भी लागू होता है।

लोकतंत्र में लोकायुक्त, आयकर विभाग तथा एंटी-करप्शन ब्यूरो के साथ मिलकर कार्य करेंगे और भ्रष्टाचार पर रोक लगाने के लिए भ्रष्टाचार के मामलों को उजागर करने में लोगों की मदद करेंगे। विभिन्न राज्यों में लोकायुक्त की संरचना; और उसकी भूमिका में विवेकाधीन अंतर है। 21वीं शताब्दी के प्रारम्भ में यह प्रयास किया गया कि सभी राज्यों में मॉडल विधान के तर्ज पर सभी लोकायुक्तों में समरूपता लाई जाए, परन्तु राज्यों ने इस प्रयास में अवरोध पैदा किए। जब तक केन्द्र सरकार नेतृत्व नहीं करती और राज्यों को इस एकरूपता की सहमति लिए तैयार नहीं कर लेती, तब तक ऐसी

एकरूपता संभव नहीं है। फिर भी, इस क्षेत्र में विशेषज्ञों द्वारा दिए गए निम्नलिखित सुझावों पर ध्यान देने की आवश्यकता है:

- पूर्व मंत्री और सिविल सेवकों को भी इस अधिनियम के अन्तर्गत लाया जाना चाहिए।
- मुख्यमंत्री को भी लोकायुक्त के क्षेत्राधिकार में लाया जाना चाहिए।
- लोकायुक्त के पास स्वयं से जांच आरम्भ करने की शक्ति (suo moto) होनी चाहिए।
- लोकायुक्त के पास स्वयं की जाँच एजेन्सी होनी चाहिए अथवा यदि वह अन्य एजेन्सी को जाँच सौंपता है, तो यह तीव्र गति से सम्पन्न की जानी चाहिए।
- सरकारी अधिकारियों द्वारा लोकायुक्त के सुझावों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। यदि कोई जानकारी देने में जानबूझकर बिलम्ब कर रहा है तो उसे दण्ड दिया जाना चाहिए।
- लोकायुक्त की सिफारिशों के क्रियान्वयन की मॉनिटरिंग हेतु समिति का गठन किया जाना चाहिए।

हालांकि वर्ष 2016 में, लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम, 2013 में कई संशोधन किये गये। एक प्रावधान यह किया गया कि यदि विपक्ष का नेता न हो तो लोक सभा/विधान सभा में विपक्ष के सबसे बड़े दल के नेता लोकायुक्त का चयन करने के लिए चयन समिति का सदस्य होगा। पारदर्शिता हेतु लोक सेवकों को अपनी संपत्ति और देनदारियों की घोषणा करनी होगी।

9.3 लोकायुक्तः संगठनात्मक संरचना

सभी राज्यों में लोकायुक्त का संगठनात्मक ढाँचा एक जैसा नहीं है। कुछ राज्य जैसे राजस्थान, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र में लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त का प्रावधान है, और वहीं कुछ अन्य राज्य जैसे उत्तर प्रदेश और हिमाचल प्रदेश में केवल लोकायुक्त के पद का प्रावधान है। जम्मू-कश्मीर में लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त नहीं है।

मध्य प्रदेश में, लोकायुक्त और उप-लोकायुक्त की सहायता के लिए, संगठन को चार कार्यात्मक भागों में विभाजित किया गया है:

i) प्रशासनिक और पूछताछ अनुभाग

इस अनुभाग की अगुवाई सचिव करता है, जो एक वरिष्ठ आई.ए.एस. अधिकारी है और वह पूरे संगठन के लिए विभाग के प्रमुख के रूप में कार्य करता है। इसे अनुभाग के उप सचिव, अवर सचिव, लेखा अधिकारी, अनुभाग अधिकारियों और अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा सहायता प्रदान की जाती है।

ii) कानूनी अनुभाग

कानूनी मामलों से निपटने और पूछताछ करने के लिए लोकायुक्त और उप-लोकायुक्त की सहायता करने के लिए, जिला न्यायाधीश के रैंक के अधिकारियों को कानूनी सलाहकार के रूप में तैनात किया जाता है और मुख्य न्यायिक

मजिस्ट्रेट रैंक के एक अधिकारी को उप-कानूनी सलाहकार के रूप में तैनात किया जाता है। वे उच्च न्यायालय से प्रतिनियुक्ति पर आते हैं।

iii) विशेष पुलिस प्रतिष्ठान

इस प्रतिष्ठान का गठन लोक प्रशासन को प्रभावित करने वाले कुछ अपराधों की जांच के लिए किया गया है, और भ्रष्टाचार अधिनियम की रोकथाम के प्रावधानों के तहत आने वाले लोगों के लिए "मध्य प्रदेश विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम 1947" नामक विशेष अधिनियम है, जोकि एक केंद्रीय अधिनियम है। इसका नेतृत्व महानिदेशक करता है, जो महानिदेशक या अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक, मध्य प्रदेश के पद पर होता है। उसे पुलिस महानिरीक्षक, पुलिस उप महानिरीक्षक, पुलिस अधीक्षक, पुलिस उपाधीक्षक, इंस्पेक्टर और अन्य रैंकों के कर्मचारियों द्वारा कार्यों में सहायता प्रदान की जाती है। यह ध्यान देने योग्य है कि मध्य प्रदेश पुलिस प्रतिष्ठान द्वारा जांच का अधीक्षण राज्य में लोकायुक्त के साथ निहित है।

iv) तकनीकी सेल

तकनीकी सेल तकनीकी प्रकृति की पूछताछ से संबंधित है। इसका नेतृत्व मुख्य अभियंता करते हैं, जिनके अधीन कार्यकारी अभियंता, सहायक अभियंता और तकनीकी सहायक हैं।

जिला सतर्कता समितियां

मध्य प्रदेश में, संभाग स्तर पर सात मंडल समितियों का गठन किया गया है, जो लोकायुक्त या उप-लोकायुक्त द्वारा संदर्भित शिकायतों की जांच करती हैं; और संबंधित प्राधिकरण को एक रिपोर्ट सौंपती हैं।

9.4 लोकायुक्त की नियुक्ति

लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त, दो स्वतंत्र तथा निष्पक्ष कार्यकर्त्ता हैं, जिनका प्रमुख कार्य लोक सेवकों के कार्य और निर्णय की जाँच पड़ताल करना है। यह उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायधीशों के समकक्ष होते हैं तथा विधायिका और कार्यकारी से स्वतंत्र होते हैं।

राज्यों में लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती हैं। नियुक्ति के समय राज्यपाल, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और राज्य विधान सभा में विपक्ष के नेता से परामर्श भी लेता है।

योग्यता तथा कार्यकाल

उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, आंध्र प्रदेश, गुजरात, ओडिशा तथा कर्नाटक में लोकायुक्त पद हेतु न्यायिक योग्यता निर्धारित है। हालांकि बिहार, महाराष्ट्र तथा राजस्थान में विशेष योग्यता निर्धारित नहीं है। सामान्यतः अधिकांश प्रदेशों में लोकायुक्त का कार्यकाल पाँच वर्ष, अथवा 70 वर्ष की आयु (हिमाचल प्रदेश), जो भी पहले हो; तथा लोकायुक्त दूसरे कार्यकाल के लिए पुनः नियुक्ति के लिए पात्र नहीं है।

अधिकार-क्षेत्र

राज्यों में लोकायुक्त के अधिकार-क्षेत्र को लेकर समरूपता नहीं है। इस संबंध में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य निम्नानुसार हैः

i) मुख्यमंत्री को हिमाचल प्रदेश, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा गुजरात में लोकायुक्त के अधिकार-क्षेत्र में शामिल किया गया है, जबकि उन्हें महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, और बिहार में इसकी परिधि के बाहर रखा गया है।

ii) अधिकांश राज्यों में, मंत्री और उच्च स्तरीय सिविल सेवक लोकायुक्त के घेरे में आते हैं। महाराष्ट्र राज्य में, पूर्व मंत्री और सिविल सेवक भी इसकी परिधि में आते हैं।

iii) राज्य विधान सभा के सदस्य भी आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, गुजरात और उत्तर प्रदेश में लोकायुक्त की परिधि में शामिल हैं।

iv) अधिकतर राज्यों में निगमों, कंपनियों और सोसाइटियों के प्राधिकारी भी लोकायुक्त के अधिकार क्षेत्र में आते हैं।

एक राज्य का लोकायुक्त आम तौर पर राज्य विधायिका के प्रति उत्तरदायी होता है। इसकी वार्षिक रिपोर्ट विधान–मंडल में प्रस्तुत की जाती है; और पारंपरिक रूप से इसकी सिफारिशें सदन द्वारा स्वीकार की जाती हैं।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थानों का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) लोकायुक्त की आवश्यकता और महत्व की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

2) भारत के किसी भी राज्य में लोकायुक्त की संगठनात्मक संरचना की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

....

3) भारत के विभिन्न राज्यों में लोकायुक्त के अधिकार की जांच कीजिए।

....

....

....

....

....

9.5 लोकायुक्तः शक्तियाँ एवं कार्य

लोकायुक्त की संस्था को भ्रष्टाचार-विरोधी एजेंसी के रूप में माना जाता है, जो कुशासन से उत्पन्न भ्रष्टाचार भाई-भतीजावाद तथा पक्षपात के खिलाफ जनता की शिकायतों को दूर करने के लिए उत्तरदायी है। इस संदर्भ में, लोकायुक्त के पास निम्नलिखित शक्तियां हैं:

- पर्यवेक्षी शक्तियाँ, यानी अधीक्षण की शक्तियाँ और प्रारंभिक जाँच या जाँच के लिए संदर्भित मामलों के बारे में दिशा-निर्देश देने के लिए;
- खोज और गिरफ़्त की शक्ति;
- कुछ मामलों में सिविल कोर्ट की शक्ति;
- राज्य सरकार के अधिकारियों की सेवाओं का उपयोग करने की शक्ति;
- संपत्ति के अनंतिम लगाव की शक्ति;
- संपत्ति कुर्की की पुष्टि के बारे में शक्ति;
- विशेष परिस्थितियों में, भ्रष्टाचार के माध्यम से उत्पन्न या प्राप्त की गई संपत्ति, आय, प्राप्तियों और लाभों को ज़ब्त करने से संबंधित शक्तियां;
- भ्रष्टाचार के आरोप से जुड़े लोक सेवक के स्थानांतरण या निलंबन की सिफारिश करने की शक्ति;
- प्रारंभिक जांच के दौरान, रिकॉर्ड को नष्ट करने से रोकने के लिए निर्देश देने की शक्ति; तथा
- प्रत्यायोजित करने की शक्ति। इस संदर्भ में, लोकायुक्त यह निर्देश भी दे सकता है कि उसे दी गई कोई भी प्रशासनिक या वित्तीय शक्ति का उसके अधिकारी द्वारा प्रयोग या निर्वहन भी किया जा सकता है। (Himachal Pradesh Lokayukta Act, 2014, http://www-bareactslive-com/HP/hp142-htm)

उपर्युक्त शक्तियों के आधार पर, लोकायुक्त लोक प्रशासन के मानकों में सुधार के लिए निम्नलिखित कार्य करता है:

- लोकायुक्त किसी भी नागरिक से प्रशासन के खिलाफ शिकायत स्वीकार कर सकता है।
- आरोपी व्यक्ति या व्यक्तियों के खिलाफ शिकायत को स्वीकार करते हुए, लोकायुक्त शिकायतकर्ता को उसके बारे में सूचित करने के बाद, बचाव के लिए अवसर देता है।

- लोकायुक्त विशेष जाँच एजेंसियों की सहायता लेकर आरोपी के विरुद्ध, तथ्यों के आधार पर निष्पक्ष जाँच करता है।
- यदि लोकायुक्त शिकायत की वैधता से संतुष्ट है, तो वह सक्षम प्राधिकारी को लिखित अनुरोध के माध्यम से अपने प्रस्ताव की सिफारिश कर सकता है।

लोकायुक्त के निष्पक्ष जाँच हेतु उसके पास अलग कार्यालय, कर्मचारी तथा बजट होता है, जो निष्पक्ष जाँच करने के लिए अनिवार्य है। वह समय-समय पर जाँच हेतु अथवा सूचना प्राप्त करने हेतु राज्य जाँच एजेन्सियों से सहायता लेता है; और जाँच के लिए आवश्यक प्रासंगिक फाइलों और दस्तावेजों तक पहुँच प्राप्त करता है। जिन सरकारी संगठनों की जाँच चल रही होती है, उनका स्वयं जाकर निरीक्षण करने की शक्ति भी इनके पास है। हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश को छोड़कर (केवल उदाहरण), अन्य राज्यों में लोकायुक्त स्वयं से भी जाँच प्रारम्भ कर सकता है।

लोकायुक्त शिकायतों और आरोपों के मामलों पर उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, बिहार और कर्नाटक में विचार कर सकता है। हालाँकि, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान और गुजरात में, लोकायुक्तों का काम भ्रष्टाचार के आरोपों की जाँच करने तक ही सीमित है; और कुप्रशासन के मामले में शिकायत से नहीं। ''महाराष्ट्र लोकायुक्त संस्थान 25 अक्टूबर, 1972 से अस्तित्व में आया और अब तक लगभग 60-70 प्रतिशत शिकायतों के निवारण में सफल रहा है'' (Lokayukta Maharashtra, lokayukta. Maharashtra.gov.in)।

कर्नाटक लोकायुक्त अधिनियम में जाँच करने; और लोक सेवकों के आचरण से संबंधित आरोपों या शिकायतों पर रिपोर्ट करने की शक्तियां हैं। लोकायुक्त के पास पुलिस और अभियोजन के दो विंग हैं। किसी भी जन सेवक, ग्रुप डी कर्मचारी से लेकर मुख्यमंत्री के कार्यालय तक के खिलाफ शिकायत मिलने पर कर्नाटक लोकायुक्त जाँच प्रारम्भ कर सकता है। अधिकारियों के प्रकरण में वह स्वयं से बिना किसी शिकायत के भी मामलों की जाँच कर सकता है। अधिकांश राज्यों में, लोकायुक्त अनुचित प्रशासनिक कार्रवाई के खिलाफ नागरिक से प्राप्त शिकायत के आधार पर जाँच शुरू कर सकता है अथवा अपनी ओर से कर सकता है। अभियोजन की पहल – यदि किसी शिकायत की जांच के बाद लोकायुक्त या उप लोकायुक्त संतुष्ट हो जाते हैं कि लोक सेवक ने कोई आपराधिक अपराध किया है और इस तरह के अपराध के लिए अदालत में मुकदमा चलाया जाना चाहिए, तो वह उस संबंधित लोक सेवक के खिलाफ एक आदेश पारित कर सकता है कि अभियोजन शुरू करना चाहिए और अगर इस तरह के अभियोजन के लिए किसी प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी की आवश्यकता है, तो इस तरह की मंजूरी को उचित प्राधिकारी द्वारा उचित समय पर दिया जाना चाहिए (Karnataka Lokayukta Act, 1984, http://dpal.kar.nic.in/pdf_files/4%20of%201985%20 (E).pdf)।

कर्नाटक अधिनियम लोकायुक्त तथा उप लोकायुक्त को न्यायिक और जाँच करने संबंधी शक्तियाँ और कार्य देकर नौकरशाह अधिकारी के निर्णयों की जाँच करने के लिए समर्थ बनाता है। हालाँकि कुछ ऐसे सरकारी पदाधिकारी हैं जो इन दोनों संस्थाओं के अधिकार क्षेत्र में नहीं आते हैं। वे न्यायाधीश, विधान सभा का सभापति, मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा कर्नाटक लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्य हैं।

लोकायुक्त प्रतिवर्ष, कार्य-निष्पादन पर एक समेकित रिपोर्ट राज्यपाल को प्रस्तुत करता है। वह इस रिपोर्ट को राज्य विधान–मंडल के समक्ष एक स्पष्टीकरण ज्ञापन के साथ पेश करता है। इसलिए, लोकायुक्त राज्य विधायिका के प्रति उत्तरदायी है। ''वास्तव में,

संगठन विधायिका द्वारा कार्यपालिका पर नियंत्रण के एक साधन के रूप में कार्य करता है क्योंकि इसकी वार्षिक रिपोर्ट राज्यपाल को सौंपी जाती है ताकि वह राज्य विधान सभा में रखी जा सके और उस पर चर्चा की जा सके। उल्लेखनीय है कि 2017 के 2952 मामलों के आधार पर 14 फरवरी से 31 मार्च 2018 तक (राजपत्रित) और 2533 (अराजपत्रित) लोक सेवकों को सिफारिशों पर दंडित किया गया था। (Madhya Pradesh, Lokayukta, Statistical Reports, Table 8, http://mplokayukt.nic.in/Org-back.htm)

पूछताछ करने के लिए, वह राज्य की जांच एजेंसियों की मदद लेता है। इस प्रक्रिया में, लोकायुक्त राज्य सरकार के विभागों से संबंधित फाइलें और दस्तावेज मंगवा सकता है। यह ध्यान देने योग्य है कि इसकी सिफारिशें केवल सलाहकारी हैं और सरकार के लिए बाध्यकारी नहीं हैं।

9.6 लोकायुक्त की भूमिका : आलोचनात्मक विश्लेषण

लोकायुक्त की रिपोर्ट के अनुसार, सबसे अधिक शिकायतें लोक कार्य विभाग, स्वास्थ्य विभाग, सिंचाई विभाग, नागरिक आपूर्ति, नगरपालिकाओं और सहकारी समितियों के बारे में हैं। इस संबंध में, शिकायतें, अधिकार क्षेत्र गुमनामी, और नगण्यता के आधार पर निरस्त कर दी जाती हैं। दूसरी तरफ, लोकायुक्त की यह शिकायत होती है कि सरकारी विभाग और राज्य जाँच एजेन्सी से उन्हें पर्याप्त सूचना प्राप्त नहीं होती है। परिणामस्वरूप, लोकायुक्त के पास दायर शिकायतों को शीघ्रता से दूर नहीं किया जाता है; और इस प्रकार, नागरिकों को शीघ्र न्याय नहीं मिलता है।

भारतीय राज्यों में लोकायुक्तों के प्रदर्शन से बहुत सकारात्मक छवि का सृजन नहीं होता। वास्तव में, कुछ राज्यों में, समग्र प्रदर्शन संतोषजनक नहीं रहा है। इसके कार्य से संबंधित सबसे बड़ी समस्याओं में से एक है, लोकायुक्त की एकल संस्था द्वारा भ्रष्टाचार की शिकायतों के साथ-साथ कुप्रशासन की शिकायतों को एक ही संस्था द्वारा निपटने से कार्य में बाधा, जो इसके कुशल कामकाज को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। ऐसा बहुत कुछ है जो किया जा सकता था, और बहुत कुछ जिसे टाला जाना चाहिए था।

वर्तमान समय में लोकायुक्त संस्था की बढ़ती लोकप्रियता देखी गई है। यह सरकारी गतिविधियों के बड़े पैमाने पर विस्तार; और भ्रष्ट आचारण के कारण हो सकता है। भ्रष्टाचार आर्थिक विकास विरोधी है, जो विकास को प्रभावित करता है और कई भ्रष्ट सरकारी अफसर देश की सुरक्षा ख़तरे में डालते हैं। इसलिए पारदर्शिता को बढ़ाने के लिए और जन कार्यों में ईमानदारी लाने हेतु कई नये उपाय सुझाए गये। नवम्बर 2012 में 11वीं अखिल भारतीय लोकायुक्त सम्मेलन के पश्चात्, 16 लोकायुक्तों ने भारत सरकार को निम्न सिफारिशें भेजी:

- लोकायुक्त को सभी भ्रष्टाचार संबंधी शिकायतें प्राप्त करने के लिए नोडल एजेन्सी बनाई जाए;
- राज्य स्तरीय जाँच एजेन्सियों पर लोकायुक्त का अधिकार क्षेत्र;
- नौकरशाहों को लोकायुक्त के क्षेत्राधिकार में लाना;
- खोज और गिरफ्त, और अवमानना कार्यवाही प्रारंभ करने की शक्तियाँ;

- बेहतर कामकाज के लिए लोकायुक्त को प्रशासनिक और वित्तीय स्वायत्तता प्रदान करना; तथा
- सरकार द्वारा प्रायोजित ग़ैर-सरकारी संस्थाओं को भी लोकायुक्त के क्षेत्राधिकार में लाना।

स्वाधीन भारत में लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम, 2013 पहला वह कानून है जिसकी संसद के सदन के अंदर और बाहर चर्चा की गयी; और इसी कारण से जन चेतना पैदा हुयी कि भ्रष्टाचार से निपटने के लिए लोकायुक्त जैसी प्रभावी संस्था की कितनी आवश्यकता है। हालाँकि पारित अधिनियम में कई ढीले छोर हैं, जिन्हें संबोधित करने की आवश्यकता है।

इस कानून में कुछ विशेषताएँ नहीं हैं, जो इसे सक्षम बनाने के लिए आवश्यक हैं, जिनमें:

- व्हिसलब्लोअर को कोई संरक्षण नहीं: यह जन लोकपाल बिल की सबसे बड़ी मांग थी। इस अधिनियम में अनियमित्तताओं की जानकारी देने वाले व्यक्ति के लिए संरक्षण का प्रावधान नहीं है। इसके लिए एक अलग कानून की आवश्यकता है।
- लोकायुक्त अधिनियम में केवल एक भाग वर्णित किया गया है कि राज्य को एक वर्ष के भीतर इस कानून को लागू करना होगा। उनकी रचना, शक्तियाँ आदि का कोई वर्णन नहीं है। राज्य यह परिभाषित करने के लिए स्वतंत्र है कि लोकायुक्त की नियुक्ति कैसे की जाएगी, कार्य कैसे करेगा और किस परिस्थिति में वह कार्य-निष्पादित करेगा।
- सिटीज़न चार्टर का कोई प्रावधान नहीं है।
- लोकायुक्त के खिलाफ अपील करने के लिए पर्याप्त प्रावधान नहीं है, क्योंकि यह खुद के खिलाफ जांच नहीं कर सकता है।

इसके पहले के भागों में, हमने विभिन्न राज्यों में लोकायुक्त के प्रदर्शन का विश्लेषण किया है, जो अनियमित रहा है। सभी राज्यों के लोकायुक्तों का अपनी भूमिका के प्रति उन्मुखीकरण अलग-अलग प्रकार का रहा है। कुछ दूसरों की तुलना में अधिक उत्साही और मुखर रहे हैं, वहीं कुछ अपनी भूमिका को लेकर अति सावधान और रूढ़िवादी रहे हैं। कुछ राज्यों में, जब राजनीतिक नेतृत्व का सहयोग मिला तो लोकायुक्त ने अच्छा कार्य किया; और वहीं सरकार के उदासीन रवैये के कारण कई लोकायुक्त कार्य नहीं कर पाये। यह सिद्ध करता है कि लोकायुक्त की सफलता लोकायुक्त की तटस्थता और व्यक्तिगत प्रतिभा पर निर्भर करती है।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थानों का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) लोकायुक्त की शक्तियों पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

2) राज्य में लोकायुक्त की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

3) लोकायुक्त को सुदृढ़ बनाने हेतु आवश्यक उपाय सुझाइए।

....

....

....

....

....

....

....

9.7 निष्कर्ष

लोकतंत्र का कार्यक्षेत्र तथा विकास, सरकारी तंत्र की दक्षता पर काफी हद तक निर्भर करता है। लोकतंत्र में, यह आवश्यक है कि नागरिक अपनी शिकायतें एक प्रभावशाली और कुशल निवारण प्रणाली के द्वारा दूर कर सकें। जनता की लोकतांत्रिक आकांक्षाएं और प्रशासन के सत्तावादी रवैये के कारण दोनों के बीच तनाव पैदा हुआ है। इस संबंध में, प्रशासन के खिलाफ नागरिकों की आम शिकायतों की पहचान भ्रष्टाचार, पक्षपात, भाई-भतीजावाद, कर्तव्य की उपेक्षा, भेदभाव, देरी और कुप्रशासन के आधार पर की गई है।

एक मज़बूत लोकायुक्त की स्थापना पर पूरी बहस सार्वजनिक जीवन में पारदर्शिता और ईमानदारी पर आधारित है। लोक प्रशासन में सर्वोत्तम प्रथाओं का एहसास तभी होगा, जब जन सेवा में सत्यनिष्ठा बनाए रखी जाएगी। विकासशील देशों में भ्रष्टाचार का प्रमुख मुद्दा विकास को पीछे छोड़ देता है, इसलिए इस इकाई का ध्यान इस बात पर केंद्रित रहा है कि कैसे भ्रष्टाचार को दूर किया जा सके। इस इकाई से हमें यह ज्ञात हुआ कि लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013 से राज्य स्तर पर लोकायुक्त का गठन करने के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ, इसके अतिरिक्त, लोकायुक्त के विकास, आवश्यकता और महत्व पर भी चर्चा की गयी है। इस अध्ययन में क्षेत्राधिकार, लोकायुक्त के ढाँचे, नियुक्ति, कार्य और भूमिका को उजागर किया गया है।

9.8 शब्दावली

भ्रष्टाचार : यह एक प्रकार की बेईमानी अथवा आपराधिक गतिविधि है, जो सत्ता में बैठे किसी व्यक्ति अथवा संगठन द्वारा की जाती है, ताकि अवैध लाभ प्राप्त कर सके।

कुशासन : यह सरकार अथवा प्रशासनिक ढाँचे द्वारा की गई वह कार्रवाई है जो प्रशासनिक विलम्ब, ग़लत कार्रवाई अथवा कार्रवाई न करने के कारण अन्याय उत्पन्न करती है।

नागरिकों की शिकायतें : यह नागरिकों की संतुष्टि की कमी के कारण नागरिकों की शिकायतों को संदर्भित करता है। जबकि ''शिकायत निवारण'' शब्द मुख्य रूप से नागरिकों की शिकायतों की प्राप्ति और प्रसंस्करण को दर्शाता है। इस संदर्भ में, व्यापक परिभाषा के अंतर्गत अधिक प्रभावी सेवाओं को प्राप्त करने के लिए उनके द्वारा उठाए गए किसी भी मुद्दे पर कार्रवाई शामिल है।

9.9 संदर्भ लेख

Arora, R.K. & Goyal, R. (2013). *Indian Public Administration: Institutions and Issues.* New Delhi. India: New Age International Publishers.

Chakrabarty, B. (2007). *Reinventing Public Administration: The Indian Experience.* India: Orient Longman.

Chaturvedi, T.N. (ed.). (1978). *Secrecy in Government*. New Delhi, India: IIPA.

Dhal, S. (2015). Indian Ombudsman. In Tapan Biswal (Ed.) *Governance and Citizenship*. New Delhi, India: Viva Publishers.

Dwivedi, O.P. & Englebert, E. A.(1983). Education and Training for Values and Ethics in Public Service: An International Perspective. In Kenneth Kernaghan and O.P. Dwivedi, *Ethics in the Public Service, Comparative Perspectives* (Eds.). Brussels: International Institute of Administrative Sciences.

Godbole, M. (2003). *Public Accountability and Transparency: The Imperatives of Good Governance*. New Delhi, India: Orient Blackswan.

Government of India. (2007). *Second Administrative Reforms Commission (4^{th} Report), Ethics in Governance*. Retrieved from https://darpg.gov.in/sites/default/files/ethics4.pdf

Government of India. (2009). *Second Administrative Reforms Commission (15^{th} Report), State and District Administration*. Retrieved from https://www.darpg.gov.in/sites/default/files/sdadmin15.pdf

Gupta, S.C. (1995). *Ombudsman: An Indian Perspective.* Delhi, India: Manak Publishers.

Himachal Pradesh Lokayukta Act, 2014. Retrieved from http://www.bareactslive.com/HP/hp142.htm

Karnataka Lokayukta. Retrieved from Act, 1984, dpal.kar.nic.in/4%20of%201985%20(E).pdf

Laxmikanth, M. (2020). *Indian Polity.* Chennai, India: McGraw Hill Education (India) Private Limited.

Lokayukta Maharashtra. Retrived from lokayukta.maharashtra.gov.in

Lokayukta- Rajasthan. Retrieved from http://lokayukta.rajasthan.gov.in

Madhya Pradesh Lokayukta. Retrieved from http://mplokayukt.nic.in/Org-back.htm

Pohekar, P.D. (2010). *A Study of Ombudsman System in India with Special Reference to Lokayukta in Maharashtra*. Delhi, India: Gyan Publishing House.

Rao, N.B. (2013). *Good Governance: Delivering Corruption-Free Public Services*. New Delhi, India: Sage Publishers.

Rao, P.P. (2001). *Control of Corruption in Public Functionaries.* Paper presented at the Sixth All India Seminar of LokAyuktas, 22-23 January 2001 (unpublished).

Sarkar, S. (2010). *Public Administration in India*. New Delhi, India: PHI Learning.

Singh, H. & Singh P. (2011). *Indian Administration*. New Delhi, India: Pearson.

The Constitution of India. Retrieved from https://www.india.gov.in/my-government/constitution-india/constitution-india-full-text

The Lokpal and Lokayuktas Act, 2013. Retrieved from *https://en.wikipedia.org/wiki/The_Lokpal_and_Lokayuktas_Act,_2013*

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:
   - भाग 9.2 देखिए।
2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:
   - भाग 9.3 देखिए।

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः

- हिमाचल प्रदेश, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश और गुजरात में मुख्यमंत्री लोकायुक्त के अधिकार क्षेत्र में आते हैं; और महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और बिहार में नहीं आते हैं।
- अधिकांश राज्यों में, मंत्री और उच्च सिविल सेवक लोकायुक्त के अधिकार क्षेत्र में आते हैं। जबकि महाराष्ट्र ने पूर्व मंत्री और सिविल सेवकों को भी क्षेत्राधिकार में रखा है।
- आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, गुजरात और उत्तर प्रदेश में विधान–मंडल के सदस्य लोकायुक्त के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं।
- अधिकांश राज्यों में निगमों, कम्पनियों और समितियों के प्राधिकारी लोकायुक्त के क्षेत्राधिकार में आते हैं, उदाहरण के लिए हिमाचल प्रदेश।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - भाग 9.5 देखिए।
2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - भाग 9.6 देखिए।
3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - लोकायुक्त को सभी भ्रष्टाचार संबंधी शिकायत प्राप्त करने के लिए नोडल एजेन्सी बनाएं।
   - राज्य स्तरीय जाँच एजेन्सी के ऊपर लोकायुक्त का अधिकार क्षेत्र।
   - नौकरशाहों को लोकायुक्त के क्षेत्राधिकार में लाना।
   - खोज और गिरफ्त, तथा अवमानना कार्यवाही प्रारंभ करने की शक्तियाँ।
   - लोकायुक्त के बेहतर कामकाज के लिए, प्रशासनिक और वित्तीय स्वयत्तता प्रदान करना।
   - सरकार द्वारा वित्त पोषित ग़ैर-सरकारी संगठनों को लोकायुक्त के क्षेत्राधिकार में लाना।

इकाई 10 न्यायिक प्रशासन*

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 भारत में न्यायिक प्रणाली

10.3 प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण का कार्यक्षेत्र

10.4 प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के रूप

- 10.4.1 न्यायिक समीक्षा
- 10.4.2 सांविधिक अपील
- 10.4.3 सरकार के विरुद्ध मुकदमा
- 10.4.4 सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध आपराधिक और सिविल मुकदमें
- 10.4.5 असाधारण निराकरण

10.5 प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण की सीमाएँ

10.6 जनहित याचिका

10.7 कानूनी सहायता

10.8 ग्राम न्यायालय

10.9 निष्कर्ष

10.10 शब्दावली

10.11 संदर्भ लेख

10.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आपः

- भारत में विद्यमान न्यायिक प्रणाली की चर्चा कर सकेंगे;
- प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के कार्यक्षेत्र और विधियों की व्याख्या कर सकेंगे; और
- प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण की सीमाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

भारत में न्यायपालिका का महत्वपूर्ण स्थान है। संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों के संरक्षण के लिए स्वतंत्र न्याय तंत्र की संकल्पना की गई है। लोकतांत्रिक

*योगदान : डॉ. विश्वरंजन मोहांती, सहायक प्रोफेसर, श्री गुरुतेग बहादुर खलसा कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय; तथा यह इकाई बी.पी.ए.ई.-102, भारतीय प्रशासन, खंड-5, इकाई-24 का अनुकूलित रूप है।

राजनीति में, इस प्रणाली के प्रभावी कार्यकरण के लिए एक स्वतंत्र न्यायपालिका अनिवार्य है। प्रशासन को कानून और संविधान के अनुसार काम करना होता है। प्रशासन के मनमाने ढंग से शक्ति-प्रयोग से नागरिकों की सुरक्षा करने में न्यायपालिका की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस इकाई में, हम भारत की न्याय प्रणाली की विशेषताओं, प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के कार्यक्षेत्र और विधियों तथा न्यायिक प्रशासन की सीमाओं की चर्चा करेंगे।

10.2 भारत में न्यायिक प्रणाली

जैसा कि इस इकाई की प्रस्तावना में कहा गया है कि भारत के संविधान में स्वतंत्र न्यायपालिका की संकल्पना की गई है। कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच शक्तियाँ पृथक-पृथक हैं। न्यायपालिका जो कानून तथा कार्यकारी कार्यों की वैधता की सांविधिक व्याख्या करती है, उसका पृथक अस्तित्व होना चाहिए। लार्ड ब्राइस (Lord Bryce) ने कहा है कि सरकार की न्यायिक प्रणाली की दक्षता और स्वतंत्रता की तुलना में सरकार की उत्कृष्टता का कोई बेहतर परीक्षण नहीं है। यहाँ, न्यायिक प्रशासन का अर्थ विशेष रूप से अदालतों की व्यवस्था के माध्यम से कानून के अनुसार न्याय का वितरण है (merriam-webster, https://www.merriam-webster.com/)।

भारतीय संविधान में भी न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने के लिए कई उपबंधों का समावेश किया गया है। यद्यपि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति कार्यकारी द्वारा की जाती है, परन्तु उनकी अवधि कार्यकारी की सीमा से अलग रखी गई है। न्यायाधीशों की नियुक्ति पर भी, कार्यकारी को कुछ मार्गदर्शी सिद्धान्तों का पालन करना होता है। एक बार जब वे नियुक्त किए जाते हैं तो वे अपने कार्यों के निर्वहन में किसी भी कार्यकारी नियंत्रण के अधीन नहीं होते हैं। ऐसा यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है ताकि न्यायालयों के निर्णय निष्पक्ष हों। भारतीय संघ में, न्यायालयों को केन्द्र और राज्यों के बीच उत्पन्न विवादों को निपटाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है। इस प्रकार, न्यायपालिका की स्वतंत्रता भारत में न्यायिक प्रणाली की महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है।

भारत में न्याय प्रणाली की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता, देश में विद्यमान एकल एकीकृत न्यायिक प्रणाली (single unified judicial system) है। एक साथ, अदालतों की पूरी प्रणाली को न्यायपालिका कहते हैं। भारतीय संघ में एकीकृत न्याय प्रणाली है। अगर हम अपने संघ में विधायिका और कार्यपालिका प्रणाली की तुलना न्यायपालिका की संरचना से करते हैं तो हमें अंतर स्पष्ट दिखाई देता है। हमारे यहाँ केन्द्र और राज्यों के लिए अलग-अलग विधायी और कार्यकारी प्राधिकरण हैं; और संविधान द्वारा उनके कार्य विभाजित किए गए हैं। परन्तु हमारी न्यायिक प्रणाली भिन्न है। यह स्थानीय स्तर पर अधीनस्थ न्यायालयों और ज़िला न्यायालयों से शुरू होती है, प्रत्येक राज्य के लिए उच्च न्यायालय है, और सबसे ऊपर भारत का उच्चतम न्यायालय है। इस प्रकार हमारी न्याय प्रणाली का आकार एक पिरामिड के समान है।

भारत में न्यायिक पदानुक्रम में उच्चतम न्यायालय का उच्चतम स्थान है। इसमें मुख्य न्यायाधीश और कुछ अन्य न्यायाधीश होते हैं, जिनकी भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति की जाती है। उच्चतम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के तीन भाग हैं– मौलिक, अपीलीय और सलाहकारी। मौलिक अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत निम्नलिखित विषय आते हैं: (क) भारत सरकार और एक या अधिक राज्यों के बीच विवाद, (ख) सांविधानिक रूप

से गारंटी दिए गए मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के दावे। न्यायालय के अपीलीय अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत चार प्रकार के केस/मामले आते हैं अर्थात् सांविधानिक, सिविल, आपराधिक और विशेष अनुमति। इस प्रकार के मामलों में, कुछ शर्तों के अधीन किसी भी राज्य के उच्च न्यायालय से उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है। भारत के राष्ट्रपति सार्वजनिक महत्व के प्रश्नों को सलाह के लिए उच्चतम न्यायालय में भेज सकते हैं।

न्यायपालिका का द्वितीय स्तर उच्च न्यायालय है। आम तौर पर प्रत्येक राज्य का उच्च न्यायालय है, परन्तु दो या अधिक राज्यों का भी एक उच्च न्यायालय हो सकता है। उच्च न्यायालय में भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त मुख्य न्यायाधीश तथा कुछ अन्य न्यायाधीश होते हैं। राज्यों के उच्च न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र तीन प्रकार का हैः मौलिक, अपीलीय, और प्रशासनिक। उसके मौलिक अधिकार क्षेत्र में नागरिकों के मौलिक अधिकार में वारंट जारी करने की शक्ति भी है। इसे सिविल और आपराधिक मामलों के प्रयास का अधिकार भी प्राप्त है। इसके अपीलीय अधिकार क्षेत्र में, निचले न्यायालयों से आए हुए सिविल और आपराधिक मामलों के बारे में अपील करने का अधिकार भी शामिल है। उच्च न्यायालयों के प्रशासनिक अधिकार क्षेत्र में, अधीनस्थ न्यायालयों पर अधीक्षण आता है।

उच्च न्यायालय : अधीनस्थ न्यायपालिका पर प्रशासनिक नियंत्रण

राज्य में अपीलीय और पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के अलावा उच्च न्यायालय का कुछ मामलों में अधीनस्थ न्यायपालिका पर प्रशासनिक नियंत्रण होता है। इस संबंध में, उच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों पर नियंत्रण करता है, जिसमें ज़िला न्यायाधीश, शहर के सिविल न्यायालयों के न्यायाधीशों के साथ-साथ मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट और राज्य की न्यायिक सेवा के सदस्य शामिल होते हैं। उच्च न्यायालय, निम्नलिखित तरीकों से अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों पर नियंत्रण रखता हैः

i) ज़िला न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदस्थापन और पदोन्नति के मामले में राज्यपाल को उच्च न्यायालय से परामर्श करना होता है;

ii) राज्य के न्यायिक सेवा के लिए व्यक्तियों (ज़िला न्यायाधीशों के अलावा) की नियुक्ति में राज्यपाल द्वारा राज्य लोक सेवा आयोग के साथ-साथ उच्च न्यायालय से परामर्श किया जाता है;

iii) उच्च न्यायालय का नियंत्रण ज़िला अदालतों और इन अदालतों के अधीनस्थ अदालतों पर होता है, जिसके अंतर्गत ऐसे व्यक्तियों का पदस्थापन और पदोन्नति, एवं अवकाश का अनुदान निहित है, जो न्यायिक सेवा से संबंधित हैं और ज़िला न्यायाधीश के पद से निचले स्तर के पद पर हैं; तथा

iv) उच्च न्यायालय के पास अपने क्षेत्र के संबंध में सभी न्यायालयों और अधिकरणों पर अधीक्षण की शक्ति होती है, जिसके संबंध में वह अधिकार क्षेत्र का उपयोग करता है, उस न्यायालय या न्यायाधिकरण को छोड़कर जिसका गठन सशस्त्र बलों द्वारा या सशस्त्र बलों से संबंधित किसी भी कानून के तहत होता है।

इस प्रकार, राज्य में अधीनस्थ अदालतों पर नियंत्रण उच्च न्यायालय की सामूहिक और व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी है। (Basu, 2020)

न्यायिक क्षेत्र में, अधीनस्थ न्यायपालिकाएँ अर्थात् ज़िला स्तर और इससे निचले स्तर के न्यायालय लोगों के निकटतम संपर्क में आते हैं। ज़िला न्यायालयों के न्यायाधीशों

की नियुक्ति उच्च न्यायालय के परामर्श से राज्यपाल द्वारा की जाती है। लोक सेवा आयोग राज्य न्यायिक सेवा में नियुक्ति के लिए उम्मीदवारों के चयन के लिए प्रतियोगी परीक्षा आयोजित करता है।

भारत में न्याय प्रणाली पर उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि संपूर्ण न्यायिक प्रणाली दो मुख्य विशेषताओं अर्थात् स्वतंत्र न्यायपालिका; और एकल एकीकृत न्यायिक प्रणाली पर आधारित है।

10.3 प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण का कार्यक्षेत्र

सरकार के निरंतर बढ़ते हुए कार्यकलाप और विभिन्न प्रशासनिक अभिकरणों तथा सरकारी अधिकारियों को दिए गए विवेकाधिकारों के संदर्भ में, नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करना तथा सुरक्षा प्रदान करना महत्वपूर्ण और प्रमुख कार्य है। विकासशील समाजों में समुदाय के अल्प-सुविधा प्राप्त वर्ग के लिए सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना न्यायपालिका की विशेष ज़िम्मेदारी है। फिर भी, यह बात स्वीकार की जानी चाहिए कि न्यायालय अपनी स्वयं की पहल पर प्रशासनिक कार्यकलाप में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है, भले ही ऐसे कार्यकलाप मनमाने हों। वे तभी कार्य करते हैं जब उनके हस्तक्षेप की माँग की जाती है। न्यायिक हस्तक्षेप निम्नलिखित मामलों तक ही सीमित होता है:

i) **अधिकार क्षेत्र की कमी:** यदि कोई सरकारी अधिकारी या प्रशासनिक अभिकरण अपने प्राधिकार या अधिकार क्षेत्र के बिना या उससे बाहर काम करता है तो न्यायालय ऐसे कार्यों को अधिकार से परे या अधिकारातीत (ultra-vires) घोषित कर सकता है। उदाहरण के लिए, सभी संगठनों में प्रशासनिक नियमों और कार्यविधियों के अनुसार निर्णय लेने और कार्रवाई करने के लिए सक्षम प्राधिकारी नियुक्त होता है। यदि सक्षम प्राधिकारी से भिन्न प्राधिकारी या व्यक्ति कार्रवाई करता है तो अधिकार क्षेत्र की कमी के प्रावधानों के अधीन न्यायालय के हस्तक्षेप की माँग की जा सकती है।

ii) **कानून की चूक:** इस श्रेणी के मामले तब आते हैं जब अधिकारी कानून का ग़लत अर्थ लगाते हैं और इस प्रकार नागरिक पर थोपते हैं जो कानून में है ही नहीं अर्थात् अनुपस्थित है। विधि शब्दावली में इसे अपकरण (misfeasance) कहा जाता है। न्यायालयों को ऐसे मामलों में हस्तक्षेप करने की शक्ति प्राप्त है।

iii) **तथ्य की गलती:** इस प्रकार के मामलों में, जाँच-पड़ताल में, अधिकारी द्वारा की गई गलती और ग़लत धारणा के आधार पर की गई कार्रवाई के फलस्वरूप हस्तक्षेप होते हैं। सरकारी अधिकारी के गलत निर्णय से प्रभावित कोई भी नागरिक निवारण के लिए न्यायालय में जा सकता है।

iv) **कार्यविधि की गलती:** लोकतंत्र में सरकारी कार्रवाई का आधार ''उचित प्रक्रिया'' है। उत्तरदायी सरकार का अभिप्राय ऐसी सरकार से है जो कार्यविधि के अनुसार कार्य करे। प्रशासन में कार्यविधि ज़िम्मेदारी, खुलापन और न्याय सुनिश्चित करती है। सरकारी अधिकारियों को प्रशासनिक कार्यकलाप के निष्पादन में कानून द्वारा निर्धारित कार्यविधि के अनुसार ही काम करना चाहिए। यदि निर्धारित कार्यविधि का पालन नहीं किया गया है तो न्यायालय के हस्तक्षेप की माँग की जा सकती है और प्रशासनिक कार्रवाइयों की वैधता को चुनौती दी जा सकती है।

v) **प्राधिकार का दुरुपयोगः** अंत में, यदि कोई सरकारी अधिकारी अपने प्राधिकार का प्रयोग प्रतिकार भावना से किसी व्यक्ति को नुकसान पहुंचाने के लिए करता है तो न्यायालय के हस्तक्षेप की माँग की जा सकती है। शब्दावली में, इसे दुष्कृत्य कहा जाता है। न्यायालय प्रशासनिक कार्यों के दुष्कृत्य को सही करने के लिए हस्तक्षेप कर सकते हैं।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थानों का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) भारत में न्यायिक प्रणाली की मुख्य विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

2) भारत में एकल एकीकृत न्यायपालिका किस प्रकार कार्य करती है?

....

....

....

....

....

3) प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के कार्यक्षेत्र पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

10.4 प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के रूप

प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के रूप और तरीके भिन्न-भिन्न देशों में अलग-अलग हैं। यह देश के संविधान के स्वरूप और कानून-प्रणाली पर निर्भर करते हैं। मोटे तौर पर नागरिकों के अधिकारों पर प्रशासनिक अतिक्रमण के विरुद्ध कानूनी उपायों की दो प्रणालियाँ हैं। एक को विधि सम्मत शासन प्रणाली कहा जाता है और दूसरी को प्रशासनिक विधि प्रणाली कहा जाता है। संक्षेप में, विधि सम्मत शासन प्रणाली का अभिप्राय है कि प्रत्येक व्यक्ति उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक भिन्नता को ध्यान में रखे बिना चाहे वह सरकारी अधिकारी हो या सामान्य नागरिक हो, एक ही कानून और देश

के सामान्य कानून के अधीन है। आधिकारिक क्षमता में की गई गलतियों के लिए अधिकारी राज्य की प्रभुसत्ता की आड़ नहीं ले सकता है। विधि सम्मत शासन प्रणाली के प्रमुख व्याख्याता ए. वी. डाइसी का कथन है कि विधि सम्मत शासन के अनुसार सभी व्यक्ति कानून के समक्ष समान हैं और एक ही कानून सभी पर समान रूप से लागू होता है। विधि सम्मत शासन प्रणाली भारत सहित सभी राष्ट्रमंडल देशों और इंग्लैंड में विद्यमान है।

आगे के अनुच्छेदों में, हम विधि सम्मत शासन प्रणाली के अधीन भारत में प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के कुछ रूपों की चर्चा करेंगे।

10.4.1 न्यायिक समीक्षा

न्यायिक समीक्षा में सरकारी अधिकारियों के प्रशासनिक कार्यों और कार्यकारी आदेशों तथा विधायी अधिनियमों की भी वैधता और सांविधानिकता का परीक्षण करने के लिए न्यायालयों को शक्ति प्राप्त है। यह न्यायिक नियंत्रण का बहुत महत्वपूर्ण तरीका है। यह सिद्धान्त उन देशों में विद्यमान है, जहाँ संविधान की श्रेष्ठता होती है जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत, ऑस्ट्रेलिया, आदि।

भारत में न्यायिक समीक्षा संविधान के कुछ उपबंधों द्वारा और किन्हीं खास मामलों में प्रशासनिक निर्णयों की निश्चियात्मकता घोषित करने वाले अधिनियमों द्वारा भी सीमित की गई है। फिर भी, यह कहा जा सकता है कि भारत में विधानमंडल अप्रभुतासम्पन्न निकाय होने के कारण वे बहुत मामलों में तब तक न्यायिक समीक्षा को शामिल कर सकते हैं, जब तक संविधान में इस आशय का उपबंध विद्यमान हो। आमतौर पर न्यायालय विशुद्धतः प्रशासनिक कार्य में हस्तक्षेप तभी करते हैं, जब उसका कार्यक्षेत्र या स्वरूप अधिकारातीत होता हो।

10.4.2 सांविधिक अपील

संसद और राज्य विधानमंडलों द्वारा बनाई गई संविधियों में यह व्यवस्था है कि कुछ विशेष प्रकार के प्रशासनिक कार्यों में व्यथित पक्ष को न्यायालयों या उच्च प्रशासनिक न्यायाधिकरणों में अपील करने का अधिकार होता है। कभी-कभी विधायी अधिनियमों में, स्वतः ही कुछ मामलों में न्यायिक हस्तक्षेप का प्रावधान होता है।

10.4.3 सरकार के विरुद्ध मुकदमा

सरकार के संविदात्मक दायित्व के लिए उसके खिलाफ मुकदमा दायर करने के बारे में भिन्न-भिन्न देशों में सीमाएँ अलग-अलग होती हैं। संघ और राज्य सरकारों का संविदात्मक दायित्व वैसा ही एक समान है, जैसा कि संविदाओं के सामान्य कानूनों के अधीन किसी नागरिक का होता है, परन्तु वे सीमाएँ किसी भी सांविधिक स्थिति में एक समान नहीं होती हैं, जिन्हें संविधान के अधीन संसद विनियमित कर सकती है। राज्य केवल ग़ैर-प्रभुसत्तासम्पन्न कार्यों के संबंध में ही अपने अधिकारियों के अत्याचारी कृत्य के प्रति उत्तरदायी होता है।

10.4.4 सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध आपराधिक और सिविल मुकदमें

भारत में सरकारी अधिकारी के खिलाफ उसकी आधिकारिक क्षमता में किए गए किसी भी कार्य के लिए दो महीने का नोटिस देने के बाद सिविल कार्रवाई की जा सकती

है। जब सरकारी अधिकारी की आधिकारिक क्षमता में किए गए कार्यों के लिए उसके विरुद्ध आपराधिक कार्रवाई की जानी होती है तब राज्य के प्रमुख, अर्थात् राष्ट्रपति या राज्यपाल की पूर्व-स्वीकृति लेनी आवश्यक है।

10.4.5 असाधारण निराकरण

हम जिन न्यायिक नियंत्रण की चर्चा पहले ही कर चुके हैं, उसके अलावा बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण और अधिकार पृच्छा रिटों के रूप में असाधारण उपाय भी हैं। इन्हें असाधारण उपाय कहा जाता है, क्योंकि न्यायालय के पास बंदी प्रत्यक्षीकरण के अलावा जब अपने विवेकाधिकार और अधिकार के रूप में तथा जब कोई अन्य समुचित उपाय उपलब्ध नहीं होता है, तो इन रिटों को मंजूर करते हैं। रिट न्यायालय का आदेश है, जो उनके पालन करने के लिए जारी किया जाता है जिनके विरुद्ध रिट जारी किया गया है। उच्चतम न्यायालय को इन रिटों या आदेशों या निर्देशों को केवल मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए जारी करने का अधिकार है जबकि उच्च न्यायालयों को न केवल इन रिटों को जारी करने का अधिकार है बल्कि अन्य रिटों को भी जारी करने का अधिकार प्राप्त है।

अब हम इन रिटों पर चर्चा करेंगे :

i) **बंदी प्रत्यक्षीकरण** (Habeas Corpus): बंदी प्रत्यक्षीकरण का शाब्दिक अर्थ व्यक्ति को प्रस्तुत करना है। यह रिट न्यायालय द्वारा उस व्यक्ति के विरुद्ध जारी किया गया आदेश होता है, जिसने किसी व्यक्ति को बंदी बनाया है। अगर यह पाया जाता है कि व्यक्ति कानून के विरुद्ध या ग़ैर-कानूनी ढंग से बंदी बनाया गया है तो उसे तत्काल रिहा कर दिया जाता है। बंदी बनाए गए व्यक्ति का दोस्त या संबंधी उसकी ओर से भी इस रिट के लिए अर्ज़ी दे सकता है। यह रिट व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए बहुत बड़ा बचाव है, और इसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता की आधारशिला के रूप में माना जा सकता है। प्रथम दृष्टया में अधिकार के मामले के रूप में यह रिट मंज़ूर की जाती है। यदि यह साबित हो जाए कि व्यक्ति को कानून के विरुद्ध बंदी बनाया गया है। फिर भी, निवारक निरोध अधिनियम के उपबंध को ध्यान में रखते हुए भारत में इसकी उपयोगिता सीमित की गई है।

ii) **परमादेश** (Mandamus):मैंडेमस का शाब्दिक अर्थ कमाण्ड (परमादेश) है। यदि कोई सरकारी अधिकारी अपने उस कार्य के निष्पादन में असफल होता है जो उसकी सरकारी ड्यूटी का भाग है और इससे किसी व्यक्ति के अधिकार का उल्लंघन होता है तो इस रिट के माध्यम से उसे कार्य करने का आदेश दिया जाएगा। प्रशासनिक त्रुटियों पर न्यायिक नियंत्रण के इस दृष्टिकोण से यह रिट प्रभावी है। भारत में यह न्यायालय या न्यायिक अधिकरण को अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए बाध्य करने के लिए भी जारी किया जा सकता है।

iii) **प्रतिषेध** (Prohibition): यह उच्च स्तर के न्यायालयों द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों को जारी किया गया न्यायिक रिट है, जिसमें अधीनस्थ न्यायालयों को ऐसे कार्य करने से रोका जाता है जो उनके अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं। यद्यपि परमादेश में कार्य करने के लिए आदेश दिया जाता है, परन्तु प्रतिषेध में केवल कार्य करने से रोका जाता है। यह रिट केवल न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्राधिकरणों के खिलाफ जारी किया जा सकता है, जिसमें अधीनस्थ न्यायालय को अपने अधिकार क्षेत्र से

बाहर जाने से रोका जाता है। इस प्रकार, प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के तरीके के रूप में इसका महत्व सीमित है।

iv) **उत्प्रेषण** (Certiorari):यद्यपि प्रतिषेध प्रतिबंधक हैं, परन्तु उत्प्रेषण प्रतिषेध और उपचारात्मक, दोनों है। यह अधीनस्थ न्यायालय या अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण से मामलों की कार्यवाही की वैधता का निर्धारण करने के लिए उच्च स्तर के न्यायालय में मामले की कार्रवाइयों का रिकार्ड हस्तांतरित करने के लिए उच्च स्तर के न्यायालय द्वारा जारी किया गया रिट है।

v) **अधिकार पृच्छा** (Quo warranto): शाब्दिक अर्थ के अनुसार अधिकार पृच्छा का अर्थ है किस प्राधिकार पर। जब कोई व्यक्ति ऐसे (सरकारी पद) पद पर काम करता है जिस पर वह काम करने का हकदार नहीं है, तो न्यायालय इस रिट को जारी करके उस पद पर व्यक्ति के दावे की वैधता की जाँच कर सकता है। यदि उक्त दावा सिद्ध न हो सका तो उसे उस पद से हटा दिया जाएगा। इस प्रकार, यह सरकारी पद/कार्यालय के अनुचित रूप से ग्रहण करने के विरुद्ध शक्तिशाली तंत्र हैं।

उपर्युक्त के अलावा, एक अन्य रिट है अर्थात् निषेधाज्ञा रिट (Injunction writ): यह दो प्रकार का होता है, अनिवार्य आज्ञापक और प्रतिबंधक। अनिवार्य आज्ञापक व्यादेश परमादेश के समान है, जबकि प्रतिबंधक व्यादेश प्रतिषेध रिट के समान है। इस रिट से सरकारी कर्मचारी को ऐसा काम करने से रोका जा सकता है, जिससे व्यक्तियों के अधिकारों को अपूर्णीय क्षति हो सकती है। जबकि प्रतिषेध न्यायिक प्राधिकारियों के विरुद्ध भी उपलब्ध है। निषेधाज्ञा ऐसी रिट है, जिसे कार्यकारी अधिकारियों के विरुद्ध जारी किया जाता है।

10.5 प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण की सीमाएँ

प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण की प्रभाविकता कई कारकों से सीमित है। उनमें से कुछ सीमाएँ इस प्रकार है:

i) **काम की अत्यधिक मात्रा:** काम का इतना भार है कि न्यायपालिका इन्हें निपटाने में असमर्थ है। एक वर्ष में न्यायालय के सामने आए हुए मामलों में से एक अंश तक ही मामलों को ही निपटाया जाता है। 1 जुलाई, 2020 तक, 60,444 मामले (Monthly Pending Cases - Types of matters pending in Supreme Court of India, https://www.main.sci.gov.in/statistics) उच्चतम न्यायालय में लंबित थे। राष्ट्रीय न्यायिक डेटा ग्रिड (NJDG) के अनुसार, अगस्त 2020 में उच्च न्यायालयों में (बॉम्बे और दिल्ली की छोड़कर) लगभग 45.41 लाख मामले; और ताल्लुका न्यायालयों में लगभग 3.36 करोड़ मामले लंबित थे (NJDG, https://www.njdg.ecourts.gov.in/njdgnow/?p=main/pend_dashboard)। जिस गति से मुकदमों के मामले बढ़ रहे हैं, उनके अनुरूप न्यायिक तंत्र का विस्तार नहीं हो रहा है। पुरानी कहावत, न्याय में देर का अर्थ न्याय न करना (Justice Delayed is Justice Denied) आज भी सार्थक सिद्ध हुई है। न्याय देने में इस अत्यधिक विलम्ब के कारण बहुत से व्यक्ति न्यायालय में नहीं आते हैं। इस निस्सहाय भावना के फलस्वरूप, बहुतों को न्याय नहीं मिल पाता है।

ii) **न्यायिक नियंत्रण का शव-परीक्षण स्वरूपः** अधिकांश मामलों में न्यायिक हस्तक्षेप तब किया जाता है, जब प्रशासनिक कार्रवाइयों से काफी नुकसान हो गया होता है। न्यायालय द्वारा गलत को ठीक किए जाने पर भी, नागरिकों की उन तकलीफों को दूर करने के लिए कोई तंत्र नहीं है जो उसने इस प्रक्रिया से गुजरते हुए झेली।

iii) **निषेधात्मक लागतः** न्यायिक प्रक्रिया बहुत खर्चीली होती है और केवल धनी वर्ग ही इसका खर्च उठा सकते हैं। इस आलोचना में कुछ सच्चाई है कि भारत में न्याय प्रणाली का झुकाव धनी वर्ग की ओर है। प्रशासनिक मनमानी और न्यायिक निष्क्रियता का शिकार असहाय निर्धन होता है।

iv) **पेचीदी कार्यविधिः** बहुत सी कानूनी कार्यविधियाँ आम आदमी की समझ से परे हैं। बहुत से लोग तो कार्यविधि संबंधी कठिनाइयों के कारण न्यायालय में जाना पसंद नहीं करते हैं। यद्यपि कार्यविधियों का सकारात्मक विस्तार न्याय को सुनिश्चित करता है, परन्तु इसकी अत्यधिकता से पूरी प्रक्रिया नकारात्मक हो जाती है।

v) **संवैधानिक सीमाएँः** कुछ क्षेत्रों में, न्यायालय संवैधानिक रूप से अपने अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकते हैं। कई ऐसे प्रशासनिक अधिनियम हैं, जिनकी समीक्षा न्यायालय नहीं कर सकते हैं।

vi) **प्रशासनिक कार्रवाइयों का विशेषज्ञ स्वरूपः** कुछ प्रशासनिक कार्रवाइयों का उच्च तकनीकी स्वरूप भी न्यायिक नियंत्रण को सीमित करने का कार्य करता है। न्यायाधीश जो केवल कानूनी विशेषज्ञ है, प्रशासनिक कार्यों की तकनीकी उलझनों को अच्छी तरह से नहीं समझ पाते हैं। इसलिए उनके निर्णय प्रामाणिक नहीं हो सकते हैं।

vii) **जागरूकता की कमीः** विकासशील समाजों में अधिकांश लोग निर्धन और निरक्षर होते हैं, उन्हें न्यायिक उपायों और न्यायालयों की भूमिका की जानकारी नहीं होती है। इसके फलस्वरूप वे अपनी कठिनाइयों के निराकरण के लिए न्यायालय में भी नहीं जाते हैं। न्यायालय भी तभी हस्तक्षेप करते हैं, जब उनसे इसके लिए प्रार्थना की जाती है। इस प्रकार न्यायालय भी बिना प्रार्थना किए ऐसी स्थिति में कुछ नहीं कर सकते हैं। सामान्य अज्ञानता के फलस्वरूप कई लोग न्याय से भी वंचित रहते हैं।

viii) **न्यायपालिका की स्वायत्तता का ह्रासः** न्यायपालिका के कार्यों में कार्यपालिका का हस्तक्षेप होता है। न्यायपालिका की गुणवत्ता अधिकतर न्यायाधीशों की योग्यता पर निर्भर करती है। विधि आयोग ने न्यायपीठ के न्यायिक स्तर को सुनिश्चित करने के बारे में कई सिफारिशें की हैं। न्यायाधीशों पर भ्रष्टाचार के कई आरोप लगाए गए हैं। इससे न्यायपालिका की प्रतिष्ठा और प्रभावशीलता में कमी आती है।

ऊपर बताई गई कुछ बाधाओं को दूर करने के लिए, कई पहलें की गई हैं। अगले अनुच्छेदों में हम इनमें से कुछ उपायों पर चर्चा करेंगे, विशेष रूप से जनहित याचिका, कानूनी सहायता और ग्राम न्यायालय।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थानों का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) न्यायिक समीक्षा के अभिप्राय और महत्व की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

2) भारत के संविधान के प्रावधानों में उपलब्ध विभिन्न रिटों की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

3) प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण की सीमाओं का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

10.6 जनहित याचिका

जनहित याचिका (Public Interest Litigation) का संबंध उस प्रणाली से है, जिसमें समाज के अन्यायपूर्ण व्यवहार से पीड़ितों, प्रताड़ितों और लाखों अनजान लोगों के लिए न्यायालय सुगम्य बनाने में सामाजिक कार्रवाई समूह हस्तक्षेप करता है। पहले स्थायित्व के नियम, जिसका अभिप्राय यह है कि केवल वही व्यक्ति न्यायालय में सहायता की याचना कर सकता है जिसके प्रति अन्याय किया गया है। यह नियम ग़रीबों तक पहुँचने में, न्यायपालिका के रास्ते में बाधक था। ग़रीब जिन्हें जानकारी नहीं होती है और जिनमें सामर्थ्य भी नहीं होता है, न्यायालयों के लिए उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। सृजनात्मक और सामाजिक दृष्टि से जागरूक न्यायाधीशों द्वारा न्यायिक प्रक्रिया की कल्पनाशील व्याख्या के फलस्वरूप जनहित याचिका प्रणाली विकसित हुई। इस प्रणाली से सामाजिक कार्य समूहों और जागरूक व्यक्तियों को ग़रीबों पर किए गए विभिन्न प्रकार के अन्यायों के मामले विचारण के लिए न्यायालय के सम्मुख ले जाने में सुविधा मिली है। एशियाड कामगारों के मामले में उच्चतम

न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति भगवती ने जो जनहित याचिका के प्रबल पक्षधर थे, कहा अब पहली बार गरीबों और पद-दलितों के लिए न्यायालय के दरवाज़े खुल रहे हैं। न्यायालयों को स्थापित व्यवस्था और यथापूर्व स्थिति समाप्त कर देनी चाहिए। अब समय आ गया है कि जब न्यायालयों को इस देश के गरीब और संघर्षरत जन-समुदाय का न्यायालय बनना है। कुछ जनहित याचिकाएँ पर्यावरण संरक्षण, जेल में पड़े विचाराधीन कैदियों, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों, महिलाओं और अन्य पिछड़े वर्गों पर हुए अत्याचार, नागरिक स्वतंत्रता का उल्लंघन, पुलिस की ज्यादतियों आदि से संबंधित हैं। सामाजिक कार्यकर्ताओं और नागरिक स्वतंत्रता समूहों की पहल पर ऐसे मामलों में न्यायालयों ने हस्तक्षेप किया है। इस प्रकार, न्यायिक सक्रियतावाद ने निश्चित रूप से गरीबों के लिए न्याय अधिक सुगम बनाया है।

10.7 कानूनी सहायता

भारत के संविधान में स्पष्ट रूप से यह संकल्पना की गई है कि आर्थिक या किसी अन्य प्रकार की असमर्थता के कारण किसी भी नागरिक को न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित नहीं किया जाएगा। कानूनी सहायता, मौलिक हकदारी के साथ-साथ चलने वाला अधिकार है। यह संविधान के अनुच्छेद 14 से विकसित हुआ है, जिसके अनुसार राज्य पर यह दायित्व है कि वह किसी भी व्यक्ति को कानून के आगे समानता या कानून के समान संरक्षण से वंचित न करे। बहुत से आयोगों ने हमारी न्याय प्रणाली में गरीबों को कानूनी सहायता प्रदान करके धनी वर्ग के प्रति अप्रत्यक्ष पूर्वग्रह समाप्त करने के सुझाव दिए। कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के अधीन राष्ट्रीय, राज्य और उप राज्य स्तरों पर प्राधिकरण स्थापित किए गए हैं। अधिनियम के अधीन उन नागरिकों के लिए एक मॉडल योजना है। मॉडल योजना के अधीन, एक ऐसी मॉडल योजना है जिसके अनुसार प्रत्येक नागरिक जिसकी सभी स्रोतों से वार्षिक आय कुछ निश्चित सीमा से अधिक नहीं है, वे सभी निःशुल्क कानूनी सहायता के पात्र हैं। आय की यह सीमा उन मामलों में लागू नहीं है, जिस विवाद के मामले में एक पक्ष अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, खानाबदोश जनजाति का हो या महिला या बालक हो।

अधिकांश राज्यों में, राष्ट्रीय कानून के प्रावधानों और संबंधित राज्य के विनियमों के अनुसार कानूनी सेवा प्राधिकरण स्थापित किए गए हैं। उच्च न्यायालय और ज़िला स्तरों पर कानूनी सहायता समितियाँ गठित की हैं, और अधिकांश स्थानों में ताल्लुका स्तर पर भी समितियाँ बनाई गई हैं। भारत के उच्चतम न्यायालय के समक्ष आने वाले मामलों में, कानूनी सहायता देने के लिए उच्चतम न्यायालय कानूनी सहायता समिति बनाई गई है।

कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के अधीन मैत्रीपूर्ण तरीके में विवादों के समाधान के लिए सभी स्तरों (राज्य, ज़िला और ताल्लुका) पर लोक अदालत का प्रावधान किया गया है। ये नियमित न्यायालय से बाहर मैत्रीपूर्ण तरीके से विवादों के समाधान के लिए उन मुवक्किलों या लोगों के निकट सफल वैकल्पिक मंच प्रदान कर रहे हैं, जो कानूनी सहायता तथा विवाद का शीघ्र समाधान चाहते हैं।

10.8 ग्राम न्यायालय

ग्राम न्यायालय मोबाइल अदालतें हैं, जो ग्रामीण क्षेत्रों में न्यायिक प्रणाली के त्वरित और आसान उपयोग के लिए ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 के तहत स्थापित किये गये हैं। यह अधिनियम 2 अक्टूबर 2009 से लागू किया गया था। इसका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण नागरिकों के लिए स्थानीय स्तर पर संवैधानिक प्रक्रिया के माध्यम से कम कीमत में न्याय प्रदान करना है। वर्ष 2017-18 की रिपोर्ट के अनुसार 2500 के लक्ष्य की तुलना में 204 कार्यात्मक ग्राम न्यायालय स्थापित किए गए (Economic Services Group National Productivity Council, 2017-18) हैं। ग्राम न्यायालय आपराधिक मामलों, सिविल मुकद्दमों, दावों या विवादों की सुनवाई करते हैं जो अधिनियम की पहली और दूसरी अनुसूची में निर्दिष्ट हैं। ज़िला न्यायालय या सेशन न्यायालय उन सभी सिविल या आपराधिक मामलों को ग्राम न्यायालयों को स्थानांतरित कर सकते हैं, जो अदालतों के पास कई समय से लंबित हैं। ग्राम न्यायालय के पास मामले की पुनःशुरुआत करने या उस चरण में आगे बढ़ने का अपना विवेक होता है जिस स्तर पर इसे स्थानांतरित किया गया था।

मामलों का दायरा, केंद्र के साथ-साथ राज्य सरकारों द्वारा अपनी विधायी क्षमता के अनुसार संशोधित किया जा सकता है। न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को एक डिक्री माना जाता है। इस संबंध में, इसके निष्पादन में देरी से बचने के लिए संक्षिप्त प्रक्रिया का पालन किया जा सकता है। ग्राम न्यायालय की अध्यक्षता एक न्यायाधिकारी द्वारा की जाती है।

एक ग्राम न्यायालय का अधिकार क्षेत्र एक क्षेत्र पर है, जो संबंधित उच्च न्यायालय के परामर्श से राज्य सरकार द्वारा एक अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट है। इन न्यायालयों से अपेक्षा की जाती है कि वे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण करें और उच्च न्यायालय द्वारा बनाये गये किसी भी नियम के अधीन निर्देशित हों। वे भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872, द्वारा प्रदान किये गये साक्ष्य के नियमों से बाध्य नहीं होंगे।

एक व्यक्ति अपराध के आरोप में याचिका के लिए आवेदन दायर करता है। ग्राम न्यायालयों के पास आपराधिक और सिविल न्यायालयों की शक्तियाँ होती हैं।

i) **आपराधिक मामलेः** इनकी अपील सेशन न्यायालय के पास होती है, जिसे दाखिल होने की तारीख से छह महीने के भीतर सुना और निपटाया जाना चाहिए।

ii) **सिविल मामलेः** इनकी अपील ज़िला न्यायालय के पास होती है, जिसे अपील दायर करने की तारीख से छह महीने के भीतर सुना और निपटाया जाना चाहिए।

ग्राम न्यायालय अधिनियम में प्रदान की गई विशेष प्रक्रियाओं का पालन करते हैं, और कुछ संशोधनों के साथ एक सिविल न्यायालय की शक्तियों का उपयोग कर सकते हैं। ये न्यायालय पक्षधारकों के बीच मतभेद दूर करके विवादों का निपटारा करते हैं। इस कार्य के लिए वह समझौताकार की सेवाएं ले सकते हैं। न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को एक डिक्री माना जाता है। इस संबंध में, इसके निष्पादन में देरी से बचने के लिए ग्राम न्यायालय संक्षिप्त प्रक्रिया का पालन करते हैं।

इस प्रकार, लंबित मामलों को कम करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम न्यायालय स्थापित करना एक महत्वपूर्ण उपाय है; तथा भारत में न्यायिक सुधारों का एक हिस्सा

है। ऐसी उम्मीद की जा रही है कि ग्राम न्यायालय, अधीनस्थ न्यायालयों में रुके हुए मामलों को कम करेंगे बल्कि छह महीने के भीतर नये मामलों का निपटान भी करेंगे, इसलिए प्रभावी कार्यों के लिए ग्राम न्यायालय को सुदृढ़ बनाने की तत्काल आवश्यकता है। इस संदर्भ में राजनीतिक नेताओं, प्रशासकों और नागरिकों के संयुक्त प्रयासों और सहयोग की आवश्यकता है, जो न्यायिक इच्छा को बढ़ाने में योगदान देगा ताकि गरीब से गरीब लोगों को न्याय की आसान पहुँच प्रदान की जा सके।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थानों का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) जनहित याचिका से क्या अभिप्राय है?

....

....

....

....

....

....

2) ग्राम न्यायालय पर एक टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

....

10.9 निष्कर्ष

लोकतंत्र में, न्यायिक प्रणाली का मुख्य उद्देश्य नागरिकों के अधिकारों को सुनिश्चित करना है। भारत में न्यायिक प्रणाली, कार्यपालिका से न्यायपालिका की स्वतंत्रता; और न्यायपालिका के एकल एकीकृत प्रणाली के सिद्धान्तों पर आधारित है। प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण का मुख्य प्रयोजन प्रशासनिक कार्रवाइयों की वैधता सुनिश्चित करना है। विधि सम्मत शासन के प्रयोग में, न्यायपालिका को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है। हमने इस इकाई में, न्याय प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ; तथा प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के तरीके और उनकी प्रभावशीलता पर चर्चा की है। न्यायिक प्रणाली में, कुछ चयनित प्रवृत्तियाँ जैसे जनहित याचिका, कानूनी सहायता तथा ग्राम न्यायालय प्रणालियों पर भी चर्चा की गई है।

10.10 शब्दावली

दुष्कृत्य : यह एक कानूनी शब्द है, जिसका अर्थ व्यक्तिगत लाभ के लिए सरकारी अधिकारी द्वारा अपने अधिकार का दुरुपयोग है।

अपकरण : जब सरकारी अधिकारी कानून की ग़लत व्याख्या करते हैं, और उसे नागरिकों के दायित्वों पर थोपते हैं जो कानून में नहीं हैं।

प्रथम दृष्टया : यह उसके लिए प्रयुक्त किया जाता है, जो सच प्रतीत होता है, जब आप इस पर पहली बार विचार करते हैं।

विशेष अनुमति : भारत में किसी न्यायालय या अधिकरण द्वारा दिए गए किसी भी निर्णय, डिक्री आदि के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने की विशेष छूट मंजूर करने की उच्चतम न्यायालय की शक्ति।

टॉर्ट : एक ऐसा कार्य जो एक व्यक्ति करता है या करने में विफल रहता है, जिससे किसी ओर को नुकसान पहुँचता है और जिसके लिए नुकसान पहुँचाने वाले पर मुकदमा किया जा सकता है।

अधिकारातीत/ अधिकार से परे : संवैधानिक उपबंधों का उल्लंघन।

10.11 संदर्भ लेख

Arora, R.K. & Goyal, R. (2013). *Indian Public Administration: Institutions and Issues.* New Delhi, India: New Age International Publishers.

Basu, D.D. (2020). *Introduction to the Constitution of India* (24th ed.). Gurugram, Haryana: Lexis Nexis.

Jha, S.N. (1999). *Decentralisation and Local Politics.* Delhi, India: Sage Publications.

Mathew, G. (2000). *Status of Panchayati Raj: The States of India*. New Delhi, India: Concept Publishing House.

Merriam-webster, Retrieved from https://www.merriam-webster.com/

Monthly Pending Cases- Types of matters pending in Supreme Court of India. Retrieved from https://www.main.sci.gov.in/statistics

NJDG, Pending Dashboard. Retrieved from https://www.njdg.ecourts.gov.in/njdgnow/?p=main/pend_dashboard

The Gram Nyayalayas Act, 2008. Retrieved from https://www.indiacode.nic.in/bitstream/123456789/2060/1/200904.pdf

Tyagi A.R. (1989), *Public Administration*, New Delhi, India: Atma Ram and Sons.

10.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:
   - कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच शक्तियों का पृथक्करण।
   - भारत की एकल एकीकृत न्याय प्रणाली है।
   - भारत में न्यायिक पदानुक्रम में उच्चतम न्यायालय का स्थान सबसे ऊपर है।
2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:
   - भारत में न्याय प्रणाली पिरामिड की तरह है, यह नीचे अधीनस्थ न्यायालयों से शुरू होती है, बीच में प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय है और सबसे ऊपर भारत का उच्चतम न्यायालय है।
   - उच्चतम न्यायालय न्यायिक पदानुक्रम का सर्वोपरि स्तर है, उच्च न्यायालय न्यायपालिका के अगले स्तर हैं, और ज़िला स्तर तथा निचले स्तर पर अधीनस्थ न्यायालय हैं।
   - उच्चतम न्यायालय के तीन अधिकार क्षेत्र हैं: मौलिक, अपीलीय और सलाहकारी; तथा उच्च न्यायालयों के मौलिक, अपीलीय तथा प्रशासनिक अधिकार-क्षेत्र हैं।
3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:
   - अधिकार क्षेत्र की कमी,
   - कानून की ग़लती,
   - तथ्यों की ग़लती,
   - कार्यविधि की ग़लती, तथा
   - प्राधिकार का दुरुपयोग।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:
   - न्यायिक समीक्षा में अधिकारियों के प्रशासनिक कार्यों, और कार्यकारी आदेशों तथा विधायी अधिनियमों की भी वैधता और सांविधानिकता की जाँच करने के लिए न्यायालयों की शक्ति अंतर्निहित है।
   - यह न्यायिक नियंत्रण का बहुत महत्वपूर्ण तरीका है।
   - यह सिद्धान्त उन देशों में हैं जहाँ संविधान को उच्चतम माना जाता है।
2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:
   - बंदी प्रत्यक्षीकरण

- परमादेश
- प्रतिषेध
- उत्प्रेषण
- अधिकार पृच्छा
- निषेधाज्ञा

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः

- कार्य का अत्यधिक भार।
- न्यायिक नियंत्रण का शव-परीक्षण स्वरूप।
- प्रतिरोधात्मक लागत।
- जटिल कार्यविधि।
- प्रशासनिक कार्रवाइयों का विशेषज्ञ स्वरूप।
- जागरूकता की कमी।
- न्यायपालिका की स्वायत्तता का अपक्षरण।

बोध प्रश्न 3

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः

- जनहित के मुकदमों का संबंध उस प्रणाली से है, जिसमें समाज के अन्यायपूर्ण व्यवहार से पीड़ितों, प्रताड़ितों और लाखों अनजान लोगों के लिए न्यायालय सुगम्य बनाने में सामाजिक कार्रवाई समूह हस्तक्षेप करता है।
- इससे न्यायालयों से गरीबों को न्याय दिलाने में सामाजिक कार्रवाई समूहों और जागरूक व्यक्तियों को सुविधा प्राप्त होती है ।
- इसने गरीबों तक न्याय की पहुँच को सक्षम किया है।

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः

- भाग 10.8 देखिए।

इकाई 11 ज़िला कलेक्टर*

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 कलेक्टर के कार्य

11.3 कलेक्टर और पंचायती राज संस्थाएँ

11.4 प्रशासनिक सहायता

11.5 कलेक्टर का कार्य : कुछ दबाव

11.6 ज़िला कलेक्टर की भूमिकाः आगामी वक्तव्य

11.7 निष्कर्ष

11.8 शब्दावली

11.9 संदर्भ लेख

11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आपः

- ज़िला प्रशासन में कलक्टर/कलेक्टर/जिला समाहर्ता के कार्यालय के महत्व की व्याख्या कर सकेंगे;
- कलेक्टर के परम्परागत और विकासात्मक कार्यों का वर्णन कर सकेंगे; और
- वे दबाव जिनके अंतर्गत ज़िला प्रशासन में कलेक्टर को कार्य करना पड़ता है, उनकी चर्चा कर सकेंगे; तथा
- ज़िला प्रशासन में ज़िला कलेक्टर की भूमिका की जाँच कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

कलेक्टर के पद का सृजन 200 वर्षों से अधिक समय पहले किया गया था। यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण पदों में से है। यह पद स्वतंत्र भारत की लोक प्रशासन प्रणाली को उपनिवेशी शासकों से विरासत में मिला है। वह देश में ज़िला/जिला प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी होता है। इस पद को संबोधित करने के लिए आम तौर पर "अन्नदाता'', ''टीम का कैप्टेन'', ''सरकार की आँख और कान" जैसे संबोधनों का प्रयोग भी किया जाता है। उसे, "प्रशासन का प्रमुख व्यक्ति", कुछ समय से उसके लिए अधिक सद्भावनापूर्ण सम्बोधनों जैसे "मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक'', ''सलाहकार, शिक्षक और सहायक'', ''ग्रासरूट लोकतंत्र का आधार'' ''विकास का प्रमुख स्रोत'' का

---

* *योगदानः* प्रो. दुर्गेश नन्दिनी; तथा यह इकाई बी.पी.ए.ई.-102, भारतीय प्रशासन, खंड-4, इकाई-17 का अनुकूलित रूप है।

भी प्रयोग किया जाने लगा है। स्वतंत्रता के बाद भी, यह ज़िला प्रशासन में सर्वश्रेष्ठ स्थिति संभाले हुए है और राज्य सरकार का प्रमुख अधिकारी है। ज़िला कलेक्टर/उपायुक्त/ज़िला समाहर्ता के पद के महत्व को ध्यान में रखते हुए, यह इकाई ज़िला प्रशासन में उसकी भूमिका; और कलेक्टर के कार्यों के निष्पादन में आने वाली कठिनाइयों को उजागर करती है।

11.2 कलेक्टर के कार्य

कलेक्टर का कार्यालय एक महत्वपूर्ण संस्था है, जो ब्रिटिश शासकों से भारतीय प्रशासन प्रणाली को मिली। वह परम्परागत राजस्व संबंधी कार्य और विकास संबंधी कार्य भी करता है। पूरे देश में कलेक्टर की शक्तियाँ और कार्य वैसे ही रहे जैसे पहले थे। यद्यपि व्यापक रूप में कुछ भिन्नताएँ हैं, फिर भी मोटे तौर पर कलेक्टर निम्नलिखित कार्य करता है।

i) कलेक्टर ने राजस्व अधिकारी के रूप में कार्य आरंभ किया, और वह अब भी प्रधान राजस्व अधिकारी तथा जिले के राजस्व प्रशासन का प्रमुख है। स्वतंत्रता के बाद यद्यपि विकास प्रशासन पर अधिक बल दिए जाने के कारण राजस्व प्रशासन का महत्व गौण हो गया है, फिर भी राजस्व संबंधी कार्य अभी भी ज़िला कलेक्टर के पास हैं। राजस्व संग्रह करने के अलावा, कलेक्टर भूमि सुधारों और राजस्व प्रशासन (सरकारी भूमि की अभिरक्षा सहित) से संबंधित सभी मामलों का प्रहस्तन करता/करती है। राजस्व प्रशासन के कार्यों में कई अधिकारी जैसे अपर कलेक्टर/संयुक्त कलेक्टर उसकी सहायता करते हैं। वह राज्य उत्पाद शुल्क अधिनियम के अधीन ज़िले का प्रभारी अधिकारी है।

ii) ज़िला कलेक्टर, ज़िला आपदा प्रबंधन समिति का अध्यक्ष है जो आपदाओं के प्रभाव को दूर करने तथा प्रभावित क्षेत्रों में पीड़ित लोगों को तात्कालिक तथा दीर्घावधिक सहायता प्रदान करने के लिए अग्रिम योजना बनाने के लिए उत्तरदायी है। वह जिले में राहत कार्य का प्रमुख अधिकारी होता है। बाढ़ जैसी आपात स्थिति में कलेक्टर बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आपात स्थिति के संबंध में, अधिकतर कलेक्टर के आकलन के आधार पर सरकार राहत की मात्रा/राशि और वितरण के तरीकों पर निर्णय लेती है।

iii) ज़िला कलेक्टर, ज़िला मजिस्ट्रेट के रूप में भी कार्य करता है, और वह जिले में कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए उत्तरदायी होता है। कार्यकारी से न्यायपालिका अलग होने के बाद कलेक्टर दंड प्रक्रिया संहिता (Criminal Procedure Code) के निवारक अनुभाग से संबंधित है। वह विशेष अपराध-रोधी सुरक्षा अधिनियमों या राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन अभिरक्षा/कैद में रखने का वारंट जारी करने वाला/वाली प्राधिकारी है। उसके कार्य में, जिले में पुलिस प्रशासन का प्रमुख – पुलिस अधीक्षक उसकी सहायता करता है। पुलिस अधीक्षक सभी महत्वपूर्ण मामलों में, कलेक्टर से आदेश लेता है। बिहार पुलिस अधिनियम, 2007 के अधीन कलेक्टर ज़िला ज़िम्मेदारी प्राधिकरण का अध्यक्ष है, जो विभागीय और कनिष्ठ पुलिस कर्मियों के विरुद्ध कदाचार की शिकायतों की जांच से संबंधित मुद्दों का अनुवीक्षण करता/करती है। कलेक्टर और पुलिस अधीक्षक के बीच तनावपूर्ण संबंधों की घटनाएं सामने आई हैं। कुछ परिस्थितियों में, इन दोनों में यथोचित तालमेल की कमी सम्पूर्ण ज़िला प्रशासन को प्रभावित करती है।

iv) ज़िला कलेक्टर, ज़िला प्रशासन का प्रमुख है। ज़िला मजिस्ट्रेट के रूप में, वह कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए उत्तरदायी है। मुख्य राजस्व अधिकारी के रूप में, वह भूमि सुधारों तथा राजस्व प्रशासन (सरकारी भूमि की अभिरक्षा सहित) से संबंधित सभी मामलों का प्रहस्तन करता है। वह कई अन्य विभागों जैसे ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज, सामाजिक कल्याण, आदि से भी संबद्ध है। कई राज्यों में, पंचायती राज निकायों से उसके बहुत महत्वपूर्ण संबंध हैं। ज़िला प्रशासन के प्रमुख के रूप में, वह विभिन्न विभागों जैसे राजस्व, पुलिस और अन्य विभागों के बीच समन्वयकारी भूमिका निभाता/निभाती है। यदि स्थानीय निकाय सार्वजनिक शान्ति का खतरा बनते हैं तो उसे उनके प्रस्तावों को निलम्बित करने की शक्ति प्राप्त है। वह जिले के कई आधिकारिक तथा गैर-आधिकारिक निकायों का अध्यक्ष होता है। ज़िला कलेक्टर, ज़िला राष्ट्रीय सूचना केन्द्र पर अधीक्षण का कार्य करता है। वह उन्हें कितना समय देता है, यह उसकी अपनी व्यक्तिगत रुचि पर निर्भर करता है।

v) उसे ज़िला स्तर पर सरकार के प्रतिनिधि के रूप में देखा जाता है। वह स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र दिवस पर राष्ट्रीय झंडा फहराता है। उसे कई नयाचार (प्रोटोकॉल) के कार्य भी करने होते हैं, जैसे जिले में मंत्रियों और अति-विशिष्ट व्यक्तियों के दौरों के समय उनसे मुलाकात करना। बाढ़ जैसी आपात स्थिति में, वह बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह प्रभावित व्यक्तियों को सहायता देने के लिए ज़िला प्रशासन की किसी भी शाखा को किसी भी विशिष्ट कार्य करने के लिए आदेश दे सकता है। जनगणना कार्य और संसद से ग्राम पंचायत तक विभिन्न लोकतंत्रीय निकायों का निर्वाचन कराना उसका एक और महत्वपूर्ण कार्य है। कलेक्टर उन कुछ जिलों में, जहाँ अनुसूचित जनजाति के लोग रहते हैं, राज्यपाल के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। ऐसे कई अन्य कार्य हैं, जिनसे कलेक्टर पूर्णतः संबद्ध होता है जैसे सामाजिक सुरक्षा, पेंशन, लाइसेंस प्रदान करना, आदि। अनिवार्य वस्तुओं की कमी और बढ़ते हुए मूल्य के कारण सार्वजनिक वितरण प्रणाली ज़िला प्रशासन का महत्वपूर्ण भाग बन गई है। वह प्रत्यक्ष रूप से, सभी अनिवार्य वस्तुओं के वितरण और सामग्री के नियंत्रण के लिए उत्तरदायी होता है। अधिकांश राज्यों में, कलेक्टर के अधिकार क्षेत्र में ज़िला स्तर पर खाद्य और नागरिक आपूर्ति विभाग के कार्यकरण में वह प्रत्यक्ष भूमिका निभाता है। वितरण प्रणाली के प्रमुख के रूप में, उससे यह आशा की जाती है कि वह दुर्लभ सामग्री का समय पर और समान रूप से वितरण सुनिश्चित करे। ज़िला कलेक्टर सार्वजनिक वितरण प्रणाली के कार्यान्वयन की निगरानी करता है और उसे अनिवार्य वस्तु अधिनियम के उपबंधों तथा संबद्ध नियमों और आदेशों को लागू करने की शक्तियां प्राप्त है। कलेक्टर कृषि, पशुपालन, पशु चिकित्सा, हथकरघा, सिंचाई और उद्योग विभागों की बहुत-सी समितियों की बैठकों की अध्यक्षता करता है। कलेक्टर के लिए ये समितियाँ उत्कृष्ट मंच सिद्ध होती हैं, क्योंकि इन समितियों की बैठकों के माध्यम से उसे नीति कार्यान्वयन के तरीकों; और स्थानीय लोगों की समस्याओं को समझने का अवसर मिलता है।

ज़िला कलेक्टर के कार्यों की, कार्यात्मक क्षेत्र तथा भूमिका के अधार पर, विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न स्थितियों की अधिक जानकारी को तालिका 11.1 में दर्शाया गया है, जो आपके लिए गहन अध्ययन में सहायक होगी।

तालिका 11.1 : ज़िला कलेक्टर/उपायुक्त/ज़िला समाहर्ता के प्रमुख कार्य

क्रम संख्या	कार्यात्मक क्षेत्र	ज़िला कलेक्टर/ज़िला समाहर्ता/उपायुक्त की भूमिका	राज्यों में भिन्नता
1	राजस्व प्रशासन	कलेक्टर/समाहर्ता भूमि सुधारों और राजस्व प्रशासन (सरकारी भूमि की अभिरक्षा सहित) से संबंधित सभी मामलों का प्रहस्तन करता है। उसकी सहायता अपर कलेक्टर/संयुक्त कलेक्टर द्वारा की जाती है। कलेक्टर राज्य उत्पाद शुल्क अधिनियम के अधीन ज़िले का प्रभारी अधिकारी होता है।	विभिन्न राज्यों में समान
2	कार्यपालक दंडनायकता और कानून तथा व्यवस्था का रख–रखाव	ज़िला मजिस्ट्रेट के रूप में आपराधिक दंड संहिता के विभिन्न उपबंधों के अधीन कार्यों और शक्तियों का प्रयोग करता है। वह ज़िले में कानून और व्यवस्था तथा आंतरिक सुरक्षा का समग्र रूप से प्रभारी अधिकारी है। वह विशेष अपराध–रोधी/सुरक्षा अधिनियमों अर्थात् राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन अभिरक्षा/कैद में रखने का वारंट जारी करने वाला/वाली प्राधिकारी है। वह पुलिस के मामलों में भी महत्व रखता है, अर्थात् बिहार पुलिस अधिनियम, 2007 के अधीन कलेक्टर/समाहर्ता ज़िला जिम्मेवारी प्राधिकरण, जो विभागीय और कनिष्ठ पुलिस कर्मियों के विरूद्ध कदाचार की शिकायतों की जांच से संबंधित मुद्दों का अनुवीक्षण करता है, का अध्यक्ष है।	यद्यपि आपराधिक दंड संहिता के कार्य मोटे तौर पर समान होते हैं फिर भी यह राज्य–दर–राज्य भिन्न है।
3	लाइसेंसीकरण और विनियामक प्राधिकारी	कलेक्टर/समाहर्ता ज़िले के शस्त्र और सिनेमेटोग्राफी अधिनियम आदि जैसे विभिन्न विशेष कानूनों के अधीन लाइसेंसीकरण और विनियामक प्राधिकारी है।	विभिन्न राज्यों में समान
4	आपदा प्रबंधन	कलेक्टर/समाहर्ता के कार्यालय की राहत/आपदा शाखा इन कार्यों का	विभिन्न राज्यों में समान

		निर्वहन सीधे करती है।	
5	निर्वाचन	कलेक्टर/समाहर्ता संसद, राज्य विधायिका और स्थानीय निकायों के लिए ज़िला निर्वाचन अधिकारी है।	विभिन्न राज्यों में समान
6	खाद्य और नागरिक आपूर्ति	अधिकांश राज्यों में कलेक्टर/समाहर्ता को ज़िला स्तर पर खाद्य और नागरिक आपूर्ति विभाग के कार्यकरण में प्रत्यक्ष भूमिका निभानी होती है। वह सार्वजनिक वितरण प्रणाली के कार्यान्वन की निगरानी करता है और उसे अनिवार्य वस्तु अधिनियम के उपबंधों तथा संबद्ध नियमों और आदेशों को लागू करने की शक्तियां प्राप्त हैं।	विभिन्न राज्यों में समान
7	कल्याण	कलेक्टर/समाहर्ता अपंगता, वृद्धावस्था पेंशन आदि जैसे कल्याण कार्यक्रमों को या तो प्रत्यक्ष अधीक्षण या निगरानी के माध्यम से निष्पादन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।	स्थानीय निकायों के लिए इस संबंध में संकल्पित भूमिका पर निर्भर करते हुए राज्य–दर–राज्य भिन्न–भिन्न होता है। महाराष्ट्र में ज़िला परिषद् की आंध्र प्रदेश अथवा राजस्थान से भिन्न कल्याण कार्यकलापों में अधिक सुदृढ़ भूमिका होती है।
8	जनगणना	कलेक्टर/समाहर्ता, प्रधान जनगणना अधिकारी है।	विभिन्न राज्यों में समान
9	समन्वय	कलेक्टर/समाहर्ता की महत्वपूर्ण भूमिकाओं में से एक ज़िला स्तर पर अन्य एजेंसियों/विभागों के कार्यकलापों का समन्वय करना है।	विभिन्न राज्यों में समान
10	आर्थिक विकास (कृषि, सिंचाई, उद्योग आदि)	यद्यपि, इन क्षेत्रों के कई कार्यकलापों/कार्यों को पंचायती राज संस्थाओं तथा स्थानीय	स्थानीय निकायों के लिए इस संबंध में

		निकायों को अंतरित कर दिया गया है, फिर भी अभी तक कलेक्टर/समाहर्ता की इन कई कार्यक्रमों में कुछ भूमिका है। वह कृषि, पशुपालन, पशु चिकित्सा, रेशम उद्योग, हथकरघा, वस्त्र सिंचाई और उद्योग विभागों की कई समितियों की बैठकों की अध्यक्षता करता है। वह मासिक/द्विमासिक बैठकों में उनके कार्यकलापों की समीक्षा भी करता है और विभागों के बीच समन्वय करता है।	संकल्पित भूमिका पर निर्भर करते हुए राज्य–दर–राज्य भिन्न होता है। महाराष्ट्र और हिमाचल प्रदेश में ज़िला परिषद की आंध्र प्रदेश अथवा राजस्थान से भिन्न प्राथमिक आर्थिक विकास के कार्यकलापों में सुदृढ़ भूमिका होती है।
11	मानव संसाधन विकास	यद्यपि, इस विषय (प्राथमिक शिक्षा) का मुख्य भाग पंचायती राज संस्थाओं को अंतरित किया गया है, फिर भी ज़िला कलेक्टर/ समाहर्ता को कुछ ज़िला–स्तरीय समितियों में अध्यक्ष/सह–अध्यक्ष के रूप में बनाए रखा गया है।	स्थानीय निकायों के लिए इस संबंध में संकल्पित भूमिका पर निर्भर करते हुए राज्य–दर–राज्य भिन्न होता है। महाराष्ट्र और हिमाचल प्रदेश में स्वास्थ्य और प्राथमिक शिक्षा से संबद्ध मामलों में पंचायती राज संस्थाओं को शक्तियां दी गई हैं।
12	ग्रामीण विकास	यद्यपि इस विभाग के मुख्य कार्यकलाप पंचायती राज संस्थाओं/शहरी स्थानीय निकायों को अंतरित कर दिए गए हैं फिर भी कुछ राज्यों में कलेक्टर/समाहर्ता अभी भी कुछ कार्यक्रमों के लिए नोडल प्राधिकारी बना हुआ है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम के अधीन कलेक्टर/समाहर्ता को कुछ राज्यों	आंध्र प्रदेश में उपायुक्त ज़िला ग्रामीण विकास एजेंसी का कार्यकारी निदेशक है। महाराष्ट्र और हिमाचल प्रदेश में ज़िला ग्रामीण विकास एजेंसी

		में जिला कार्यक्रम संयोजक के रूप में नामोदिष्ट किया गया है।	जिला परिषद के अधीन है। हिमाचल प्रदेश में, जिला परिषदों को जिला ग्रामीण विकास एजेंसी में सहायक इंजीनियरों की नियुक्ति करने का अधिकार दिया गया है।
13	स्थानीय स्व–शासन (पंचायती राज संस्थाएं/शहरी स्थानीय निकाय)	स्थानीय स्व–शासन संस्थाओं के संबंध में जिला कलेक्टर/समाहर्ता/उपायुक्त की भूमिका विभिन्न राज्यों में भिन्न–भिन्न है। अधिकांशतः ये पंचायती राज संस्थाओं की तुलना में राज्य सरकार की शक्तियों से संबद्ध हैं। (निलंबन, संकल्प, अतिक्रमण आदि की शक्तियां)	आंध्र प्रदेश में उपायुक्त ग्राम पंचायतों पर प्रत्यक्ष नियंत्रण रखता है; उड़ीसा में उपायुक्त जिला परिषद का मुख्य कार्यकारी अधिकारी है; और महाराष्ट्र में उपायुक्त की सीमित भूमिका है।
14	विकास योजना तैयार करना	यद्यपि अनुच्छेद 243 सघ और 243 यङ के अधीन जिले में योजना बनाने का कार्य डीपीसी/एमपीसी को दिया गया है, फिर भी कलेक्टर/समाहर्ता विभिन्न कार्यों के निष्पादन में शामिल विभागों/एजेंसियों के साथ समन्वय करता है।	विभिन्न राज्यों में समान
15	सूचना प्रौद्योगिकी	समाहर्ता ज़िला राष्ट्रीय सूचना केन्द्र पर अधीक्षण का कार्य करता है।	विभिन्न राज्यों में समान

Source: Government of India, (2009), *Second Administrative Reforms Commission (15th Report), State and District Administration*, pp. 65-68, https://www.darpg.gov.in/sites/default/files/sdadmin15.pdf

उपरोक्त श्रेणियों में वर्णित कार्य, क्षेत्र स्तर पर सरकार के प्रभावी कार्यकरण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं और इन कार्यकलापों के सीमा क्षेत्र में शामिल कार्यभार ज़िला कलेक्टर तथा उनके प्रत्यक्ष अधीनस्थों से पर्याप्त समय और ध्यान की मांग करते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, द्वितीय प्रशासनिक आयोग ने इस संबंध में कहा है

कि राज्य सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कलेक्टर को इन कार्यकलापों से न तो विपथित किया जाए और न ही उनका महत्व कम किया जाए।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी: i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थानों का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) ज़िला प्रशासन में कलेक्टर के महत्व की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

2) ज़िला कलेक्टर की ज़िला प्रशासन के प्रमुख के रूप में भूमिका का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

3) ज़िला कलेक्टर के प्रमुख कार्यों पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

11.3 कलेक्टर और पंचायती राज संस्थाएँ

स्वतंत्रता के पश्चात्, कलेक्टर ज़िले में विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी बन गये। सामान्यतः प्रशासक के रूप में, उससे यह अपेक्षा की जाती थी कि वह ज़िले में कार्यान्वित किए जा रहे सभी विकास कार्यक्रमों का समन्वय करे। पंचायती राज संस्थाओं के मामले में, कलेक्टर की भूमिका विकास प्रशासन में अधिक प्रत्यक्ष रही है। वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इन संस्थाओं से जुड़ा रहता है। पंचायती राज संस्थाओं से इस प्रकार की सम्बद्धता प्रायः सभी राज्यों में दिखाई देती है। भारत में पंचायती राज की स्थापना से ज़िला प्रशासन के ढाँचे में कई परिवर्तन हुए हैं। यह विशेष रूप से ज़िला कलेक्टर की भूमिका और कार्यों के मामले में हुआ है। वास्तविक व्यवहार में, भिन्न-भिन्न राज्यों में कलेक्टर और पंचायती राज संस्थाओं

के बीच अलग-अलग किस्म के संबंध स्थापित हुए हैं। उदाहरण के लिए, राजस्थान में कलेक्टर को मताधिकार के बिना ज़िला परिषद् का संबद्ध सदस्य बनाया गया था। आंध्र प्रदेश में, उसे ज़िला परिषद् का पूर्ण सदस्य और सभी स्थायी समितियों का अध्यक्ष बनाया गया था। परन्तु बाद में, आंध्र प्रदेश में कलेक्टर को ज़िला परिषद् से अलग रखा गया। महाराष्ट्र में कलेक्टर को ज़िला परिषद् से बाहर रखा गया। परन्तु आम तौर पर, यह महसूस किया गया कि पंचायती राज संस्थाओं की सफलता के लिए कलेक्टर को अधिक ज़िम्मेदारी लेनी चाहिए।

कलेक्टर और पंचायती राज संस्थाओं के बीच संबंध का अध्ययन विभिन्न विषयों के अंतर्गत किया जा सकता है, जैसे कि स्टाफ पर नियंत्रण, प्रस्ताव निलंबित करने की शक्ति, अधिकारियों को हटाने की शक्ति और पंचायती राज संस्थाओं को निलम्बित और भंग करने की शक्ति। इन क्षेत्रों में, भिन्न-भिन्न राज्यों में कलेक्टर की भूमिका अलग-अलग है। इनके कुछ और पहलुओं पर, "पंचायती राज" नाम की इकाई 12 में बाद में चर्चा की जाएगी। कलेक्टर को गोपनीय रिपोर्ट लिखने और विभिन्न दंड देने की शक्ति भी प्राप्त है। सभी राज्यों में ये शक्तियाँ एक समान नहीं हैं। इसी प्रकार, कलेक्टर पंचायतों के प्रस्तावों को निलम्बित कर सकता है। इस प्रकार की सम्बद्धता, कलेक्टर को जनता के प्रतिनिधियों से निकटतम संबंध बनाने में सहायक होती है। इससे उसे ज़िला स्तर पर विकास प्रशासन की गति को समझने का अवसर मिलता है।

73वें संविधान संशोधन के पश्चात् पंचायती राज संस्थाओं से ज़िला कलेक्टर का संबंध बहुत बदल गया है। 1993 में विभिन्न राज्यों द्वारा संविधान संशोधन और पंचायती राज कानूनों के बनाए जाने से विकास कार्य के संबंध में ज़िला कलेक्टर का कार्यभार कम हुआ है। इस अधिनियम ने राज्य सरकारों को पंचायती राज सस्थाओं और कलेक्टर के संबंधों के मानदंड निर्धारित करने की गुंजाइश दी है। इस संदर्भ में, कुछ राज्यों ने मुख्य कार्यकारी अधिकारी के पद का सृजन किया है और कुछ राज्यों ने ज़िला विकास अधिकारी अथवा उप-ज़िला आयुक्त का पद सृजित किया है।

तमिलनाडु में कलेक्टर को सौंपे गए नियंत्रण प्राधिकार के बारे में अद्वितीय विशेषता यह है कि ज़िला कलेक्टर के पास ज़िले में पंचायतों के निरीक्षक के रूप में सम्पूर्ण नियंत्रण प्राधिकार हैं। ज़िला ग्राम विकास एजेंसी का परियोजना निदेशक विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में उसकी सहायता करता है। हरियाणा में, ज़िला कलेक्टर, जिसे उपायुक्त (Deputy Commissioner) पदनाम से जाना जाता है, वह गुरूग्राम में ज़िला ग्राम विकास एजेंसी (डी.आर.डी.ए.) का अध्यक्ष है। केरल, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में वह ज़िला योजना समिति का सचिव है। पंचायती राज पर टास्क फोर्स द्वारा किए गए अध्ययन से ज्ञात होता है कि केरल और पश्चिम बंगाल जैसे कुछ राज्यों को छोड़कर, विकेन्द्रीकृत शासन में अधिकारी वर्ग प्रबल भागीदार है।

इस प्रकार 73वें संविधान संशोधन के बाद भी पंचायती राज संस्थाओं के संबंध में ज़िला कलेक्टर की स्थिति के बारे में कोई एक समान पैटर्न नहीं है।

11.4 प्रशासनिक सहायता

विभिन्न स्तरों के कई अधिकारियों द्वारा कलेक्टर की सहायता की जाती है। आम तौर पर संयुक्त या अपर कलेक्टर रैंक के दो या तीन अधिकारी होते हैं। ये अधिकारी राजस्व, कानून और व्यवस्था, तथा विकास संबंधी कार्य देखते हैं। कलेक्टरेट में कई

उप कलेक्टर/उप समाहर्ता द्वारा कलेक्टर की सहायता की जाती है। ये अधिकारी विभिन्न कार्यों जैसे राजस्व, कानून, राहत, स्थापना और अन्य कार्य देखते हैं। तकनीकी अधिकारी, जैसे ज़िला कृषि अधिकारी, ज़िला शिक्षा अधिकारी, ज़िला सहकारिता अधिकारी आदि कलेक्टर के सीधे पर्यवेक्षण में कार्य करते हैं, परन्तु कुछ राज्यों में वे ज़िला परिषद् के साथ काम करते हैं। जिले को उप-मंडल में विभाजित किया गया है। प्रत्येक उप-मंडल का प्रमुख उप-मंडल अधिकारी होता है। कुछ राज्यों में, उन्हें राजस्व मंडल अधिकारी कहा जाता है। संयुक्त कलेक्टरों और उप-मंडल अधिकारियों को कलेक्टर मार्गदर्शन एवं नेतृत्व प्रदान करता है। ताल्लुका और खंड स्तर पर, तहसीलदार और खंड विकास अधिकारी क्रमशः राजस्व और विकास कार्यों को देखते हैं। उनका लोगों से नियमित रूप से संपर्क बना रहता है, और वास्तव में सभी सरकारी कार्यक्रमों के निष्पादनकर्ता वे ही हैं। विषय से संबंधित मामलों के कई विशेषज्ञ खंड स्तर पर कार्य करते हैं। वे विशिष्ट कार्यक्रमों को शुरू करते हैं, तथा उनका कार्यान्वयन करते हैं।

कलेक्टर दौरों, निरीक्षणों और समीक्षा बैठकों के माध्यम से क्षेत्र के अधिकारियों पर नियंत्रण रखता है। इन तकनीकों से, वह कार्यक्रम के कार्यान्वयन की निगरानी करता है, और क्षेत्र के अधिकारियों का मार्गदर्शन करता है। उसके निरीक्षणों और समीक्षाओं से न केवल कलेक्टर को प्रत्यक्ष जानकारी मिलती है, बल्कि क्षेत्र अधिकारियों को अपनी शंकाओं के समाधान का अवसर भी मिलता है और कलेक्टर से नीतियों और प्राथमिकताओं की जानकारी भी मिलती है। उसके दौरों के समय, लोग पेयजल, सिंचाई के लिए पानी, खराब सड़कों, खराब आवास स्थिति, अनिवार्य वस्तुओं की कमी, और कृषि उत्पादन के लिए आदानों (इनपुट्स), भ्रष्टाचार तथा अधिकारियों की असंवेदनशीलता आदि के बारे में शिकायतें करते हैं। इन निरीक्षणों और दौरों के आधार पर कलेक्टर उन समस्याओं का आकलन कर सकता है, जिनसे ज़िला प्रभावित हो रहा है और वह उन्हें दूर करने की पहल कर सकता है। इससे कलेक्टर को प्रशासनिक प्रणाली से व्यक्तिगत संपर्क स्थापित करने के अतिरिक्त स्थानीय समस्याओं की स्पष्ट जानकारी भी मिलती है।

कलेक्टर का महत्वपूर्ण कार्य, जिले में विभिन्न विभागों के बीच समन्वय स्थापित करना है। वह विकास के लिए उत्प्रेरक के रूप में कार्य करता है। कुछ राज्यों में ज़िला-स्तर के सभी अधिकारियों को कलेक्टर के नियंत्रणाधीन रखा गया है, परन्तु कुछ राज्यों में उन्हें कलेक्टर के नियंत्रण से बाहर रखा गया है। ज़िला में उच्चतम अधिकारी के रूप में, सरकार उससे इन अधिकारियों को अपेक्षित मार्गदर्शन तथा दिशा-निर्देश देने की आशा रखती है।

11.5 कलेक्टर का कार्य : कुछ दबाव

ज़िला प्रशासन में कलेक्टर एक महत्वपूर्ण अधिकारी बन गया है। नियामक और विकास कार्यों, दोनों में उसकी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अपने कार्य-निष्पादन में उसे कई ऐसी समस्याओं और दबावों का सामना करना पड़ता है जो उसके काम में बाधा पैदा करते हैं। इस संबंध में बार-बार स्थानांतरण, बढ़ता हुआ कार्यभार, राजनीतिक दबाव, संकट की स्थितियाँ और कलेक्टरों का व्यक्तिगत उन्मुखीकरण जैसी कुछ ऐसी समस्याएँ हैं जिनकी जाँच इस संदर्भ में की जानी चाहिए।

सिविल कर्मचारियों का कार्यकाल ऐसा होना चाहिए, जो माहौल समझने, और सुचारू कामकाज के लिए राजनीतिक नेताओं तथा प्रशासकों के साथ रचनात्मक सहयोगात्मक एवं सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करने के लिए पर्याप्त हो। एक सुस्थापित एवं मान्य नीति यह है कि अधिकारी को तीन से पाँच वर्ष की अवधि के लिए एक स्थान विशेष में रखा जाए। दुर्भाग्यवश ऐसा प्रतीत होता है कि कलेक्टरों के मामले में यह नीति नहीं अपनाई जा रही है। इस मुद्दे पर कुछ अध्ययन किए गए थे। इससे यह ज्ञात हुआ कि कलेक्टरों के कार्यों के उचित निष्पादन में बार-बार होने वाले स्थानांतरण बाधक रहे हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि उन्हें जिले की समस्याओं से परिचित होने से पहले ही स्थानांतरित कर दिया गया। कुछ कलेक्टरों का कार्यकाल तो चार महीने से भी कम रहा है, और ऐसे बहुत कम कलेक्टर थे, जिनका कार्यकाल तीन वर्ष का रहा है। इस प्रकार के बार-बार स्थानांतरण से कलेक्टरों पर प्रतिकूल प्रभाव तो होता ही है, इसके अलावा इससे ज़िला प्रशासन भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित होगा।

राजनीतिक हस्तक्षेप और दबाव अन्य क्षेत्र हैं, जो कलेक्टर के कार्य में बाधा उत्पन्न करते हैं। ज़िला प्रशासन पर इस प्रकार के दबाव आम तौर पर सरकार द्वारा भूमि अधिग्रहण अथवा ज़िला में अपने समर्थकों की सहायता के लिए कलेक्टरों को अपनी न्यायिक शक्ति प्रयोग करने का अनुरोध लाइसेंस जारी करने अथवा दुर्लभ/कमी वाली सामग्री का परमिट जारी करने के लिए होते हैं। ऐसे मामलों में, कलेक्टरों पर भारी दबाव पड़ता है और उन्हें कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। यदि वे अनुरोध को स्वीकार कर लेते हैं तो उन पर पक्षपात का आरोप लगाया जाता है, और यदि वे दबाव का प्रतिरोध करते हैं तो उन पर जनता के प्रतिनिधियों के अनुरोध के प्रति असंवेदनशील का आरोप लगाया जाता है। बहुधा दबावों के प्रतिरोध को राजनीतिक रंग दिया जाता है और इसके परिणामस्वरूप कलेक्टरों का स्थानांतरण भी किया जाता है। परिवर्तन के एजेंट के रूप में कार्य कर रहे कलेक्टर के कर्तव्यों के निर्वहन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसका प्रतिकूल प्रभाव कार्य-निष्पादन पर भी पड़ता है।

कलेक्टर के कार्य में बहुधा ज़िले में मंत्रियों जैसे महत्वपूर्ण व्यक्तियों के दौरों से भी बाधा पड़ती है। नयाचार (प्रोटोकॉल) की यह अपेक्षा है कि कलेक्टर स्वयं अगवानी करे और दौरे पर आए अति-महत्वपूर्ण व्यक्ति से चर्चा के लिए उपलब्ध रहे। इस प्रकार नयाचार ड्यूटी एक और क्षेत्र है, जो कुछ हद तक कलेक्टर के कार्य को प्रभावित करता है। बहुधा यह शिकायत की जाती है कि कलेक्टर के पास बहुत अधिक कार्य है। यद्यपि इस क्षेत्र में कम शोध अध्ययन किए गए हैं।

जिले में कानून और व्यवस्था की स्थिति बनाए रखना कलेक्टर की ज़िम्मेदारी है। परन्तु पुलिस अधीक्षक जो पुलिस बल का प्रमुख है, ज़िले में कलेक्टर के समग्र पर्यवेक्षण के अधीन इस कार्य को करता है। बहुधा लोग, पुलिस के पक्षपातपूर्ण व्यवहार और उनकी असफलताओं की शिकायत लेकर कलेक्टर के पास आते हैं। कार्यकारी से न्यायिक कार्य अलग होने के फलस्वरूप, कलेक्टर की सम्बद्धता अप्रत्यक्ष और न्यूनतम है। पुलिस के साथ कलेक्टर के संबंध सदैव ही बहुत ही नाजुक और संवेदनशील रहे हैं। पुलिस ने कानून और व्यवस्था बनाए रखने में कलेक्टर के नियंत्रण पर अप्रसन्नता दिखाई है। इन दोनों के बीच तनावपूर्ण संबंधों के कुछ मामले भी सामने आए हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती हुई अशांति के कारण, इन क्षेत्रों में शान्ति और सद्भावना बनाए रखने में कलेक्टर की भूमिका का महत्व बढ़ रहा है।

संकट की स्थिति से निपटना कलेक्टर का एक और महत्वपूर्ण तथा आवश्यक कार्य है। संकट की स्थिति में साम्प्रदायिक दंगे, बाढ़, डकैती, आतंकवाद, दुर्घटनाएँ और क्षेत्रीय दंगे शामिल हैं। इस प्रकार की संकट की स्थितियाँ अचानक उत्पन्न होती हैं और कलेक्टर का तत्काल हस्तक्षेप अपेक्षित होता है। इससे उसके सामान्य कार्यों पर भी प्रभाव पड़ता है, और तत्काल आपात विकास कार्यों की उपेक्षा है जिसका तत्काल ही प्रभाव पड़ता है।

अंत में, कलेक्टर जो विकास और परिवर्तन के लिए प्रतिबद्ध है, अपने क्षेत्र और कार्य की प्राथमिकता स्वयं ही चुन लेता है; और उसी पर अधिक ध्यान देता है। कुछ अधिकारी कमज़ोर वर्गों के कल्याण पर अधिक ध्यान देते हैं; कुछ स्वास्थ्य संबंधी कार्यों पर; और अन्य स्वास्थ्य संबंधी गतिविधियों पर ध्यान देते हैं। कुछ कलेक्टर विशेष कार्यक्रमों और अपनी इच्छा के अनुरूप गतिविधियों पर अधिक ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस प्रकार, कई शेष कार्यों को कम महत्व दिया जाता है। इससे साधारणतः उनकी भूमिका और कार्य-निष्पादन भी कुछ क्षेत्रों में सीमित हो जाता है।

ज़िला कलेक्टर को राजनीतिज्ञों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाकर; समय की समुचित व्यवस्था कर; अपने अधीनस्थ अधिकारियों को कार्य के साथ कुछ अधिकार सौंप कर इन दबावों पर काबू पाने की कोशिश करनी चाहिए। कुछ अधिकारी विकास प्रशासन की समस्याओं को हल करने के लिए ज़िला और राज्य स्तरों के राजनीतिक कार्यकारियों का उपयोग करते हैं; और इस प्रकार वे राजनीतिज्ञों से अपने संबंधों का सकारात्मक उपयोग करते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं जो हस्तक्षेप को अपने कार्य में अवांछित हस्तक्षेप समझते हैं और आशाहीन महसूस करते हैं।

11.6 ज़िला कलेक्टर की भूमिकाः आगामी वक्तव्य

ज़िला कलेक्टर की संस्थागत ताकत का पूर्ण उपयोग करके ज़िला सरकार को सशक्त बनाया जा सकता है। इसके अलावा, यह देखा गया है कि 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधन (1992) ने ग्रामीण और शहरी स्थानीय निकायों को कार्य करने के लिए प्रभावी रूप से सशक्त बनाया है। एक नये प्रशासनिक और विकास के माहौल के अनुसार, पंचायती राज संस्थाएँ/शहरी स्थानीय निकाय सरकार का तीसरा स्तर हैं। वह स्थानीय विकास के मामलों में, कलेक्टर के दायित्व को पूरी तरह से मिटा नहीं पाए हैं। यहाँ तक कि भू-राजस्व के घटते महत्व ने भी भू-अभिलेखों के प्रबंधन, कानून और व्यवस्था तथा सामान्य प्रशासन के रखरखाव; और एक प्रभावी शिकायत निवारण प्राधिकारी के रूप में कलेक्टर का महत्व कम नहीं होने दिया है। द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने अभिव्यक्त किया, ''ये बने हुए हैं और यहाँ तक कि स्थानीय स्वशासन के पूर्ण फलीभूत होने पर भी ज़िला स्तर पर राज्य कार्यकलापों के केन्द्रीय और मुख्य क्षेत्र बने रहेंगे।'' इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि ज़िला कलेक्टर ज़िला स्तर पर मानव दक्षता में सुधार, समाज के सीमांतिक वर्गों के लिए आर्थिक अवसरों में सुधार, भौतिक अवसंरचना सृजित करना और आपदाओं द्वारा खड़ी की गई चुनौतियों का सामना करने जैसे कार्यों की बहुलता के लिए उत्तरदायी बना रहेगा। उसकी ज़िला प्रशासन में एक संयोजक, सुविधादाता और ऐसे व्यक्ति की भूमिका है जो आधारभूत प्रशासन के विभिन्न कार्यकलापों के अंतर-क्षेत्रीय समन्वय के लिये ज़िम्मेदार होगा। वह राष्ट्र-निर्माण के कार्य में जिले में समग्र नेतृत्व प्रदान करेगा। इसलिए यह स्पष्ट है कि कलेक्टर क्षेत्रीय स्तर पर प्रशासन की योजना में प्रमुख बना रहेगा (Second

Administrative Reforms Commission, 2009, https://www.darpg.gov.in/sites/default/files/sdadmin15.pdf, pp. 63-64)।

विकास संबंधी लक्ष्यों के प्रति कलेक्टर का कार्य-निष्पादन उसकी अपनी अभिरुचि तथा अभिविन्यास पर निर्भर करता है। यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि वह अपना कार्य शुरू करने के लिए ज़िले में विद्यमान सकारात्मक और रचनात्मक वातावरण का उपयोग करने के लिए उसमें कितनी क्षमता है। अतः बाधाओं को दूर करके प्रभावी रूप में कार्य-निष्पादन के लिए, केवल एक उदाहरणस्वरूप, लखीना प्रयोग ने सबसे अच्छा समाधान प्रस्तुत किया है, जो आज भी प्रासंगिक है।

प्रशासनिक दक्षता की आवश्यकता तथा समुदाय के लिए उत्तरदायित्व ने श्री अनिल कुमार लखीना, ज़िला कलेक्टर को ज़िला प्रशासन में सुधार के लिए एक ऐसा ही प्रयोग करने के लिए प्रेरित किया था। यह प्रयोग महाराष्ट्र के सतारा जिले में अहमदनगर के कलेक्टरेट में किया गया। ज़िला प्रशासन में कुछ परिवर्तन लाए गए, जिनमें कलेक्टरेट के आगंतुकों का विनियमन, कार्य के अनुसार कार्यालय की रूपरेखा बनाना, संबंधित कर्मचारियों को प्रलेख उपलब्ध करना, डेस्क नियम पुस्तिकाएँ तैयार करना, पुराने और अनुपयोगी प्रलेखों को नष्ट करना, धूलरोधी और अग्निशमन उपकरणों की व्यवस्था, अभिप्रेरण और प्रशिक्षण आदि शामिल हैं। यह प्रयोग इस संकल्पना पर केन्द्रित रहा कि प्रशासक के व्यवहार में परिवर्तन से प्रभावी प्रशासन में कार्यकुशलता बढ़ सकती है। इसमें व्यवहार में परिवर्तनों को भौतिक कार्य के माहौल से जोड़ा गया है। यह प्रयोग एक ही ज़िले में शुरू किया गया था और अन्य ज़िलों में इसे अपनाने की संभावनाएं भी सकारात्मक परिणाम लाएंगी। परन्तु लखीना प्रयोग इस बात का सूचक है कि संरचनात्मक परिवर्तनों के साथ-साथ यदि व्यवहार में भी परिवर्तन आए और सुधार अपनाने की "इच्छा" हो तो ज़िला प्रशासन में कार्यकुशलता लाई जा सकती है। जो कलेक्टरेट के लिए सही है, वह ज़िला स्तर के अन्य प्रशासनिक अंगों के लिए भी समान रूप से सही है। ज़िला कलेक्टर के योगदान के संबंध में, हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा अग्रणी पथ दिखाया गया है, जिसमें ज़िलों के प्रदर्शन के आकलन हेतु ज़िला सुशासन सूचकांक को तैयार किया गया है, जो 7 महत्त्वपूर्ण विषयों, 18 फोकस विषयों और 45 संकेतकों के आधार पर महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों (आवश्यक बुनियादी ढांचा; मानव विकास के लिए सम्बल; सामाजिक सुरक्षा; महिलायें और बाल; अपराध, कानून और व्यवस्था; पर्यावरण; तथा पारदर्शिता और जवाबदेही के प्रदर्शन अंतराल को पहचानने और पाटने में सहायक सिद्ध हुआ है। इस संदर्भ में, 2019 में बिलासपुर ज़िले को प्रथम स्थान प्राप्त हुआ था। यह एक सर्वोत्तम प्रथा है, जिसे विशेष रूप से संसाधनों के आवंटन; तथा विकास और समीकृत वृद्धि, न्यायपरस्ता तथा सततता के लिए नीतियों और योजनाओं की संरचना से संबंधित निर्णयन के महत्त्व को बढ़ाने के लिए अन्य राज्यों द्वारा भी पालन करने की आवश्यकता है।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी: i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) पंचायती राज संस्थाओं में कलेक्टर की भूमिका का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

2) लखीना प्रयोग के महत्व का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

3) उन समस्याओं पर चर्चा कीजिए जिनका सामना कलेक्टर अपने कार्य-निष्पादन में करता है।

....

....

....

....

11.7 निष्कर्ष

कलेक्टर पहले भू-राजस्व, कानून और व्यवस्था बनाए रखने तथा अन्य नियामक कार्यों का प्रभारी था। स्वतंत्र भारत में समाज का समाजवादी पैटर्न अपनाने और विकास पर अधिक बल देने के फलस्वरूप अधिकांश राज्यों में कलेक्टर विकास कार्यों से संबंधित अधिकारी और परिवर्तन के एजेंट बन गए। इस इकाई में, हमने ज़िला कलेक्टर के कार्यालय के विकास पर चर्चा की है। राजस्व प्रशासन, पुलिस प्रशासन, ज़िला प्रशासन के प्रमुख और सरकार के प्रतिनिधि के रूप में ज़िला कलेक्टर की भूमिका और कार्यों का वर्णन किया गया है। पंचायती राज जैसी विकास संस्थाओं से उसकी सम्बद्धता बहुत नज़दीकी और गहरी रही है। फिर भी, 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के पश्चात् विकास प्रशासन में कलेक्टर की भूमिका बदल गई है। परन्तु ज़िला कलेक्टर, ज़िला प्रशासन की महत्वपूर्ण कड़ी प्रतीत होता है। अंत में, उन समस्याओं और दबावों का वर्णन किया गया है जो कलेक्टर के कार्य-निष्पादन को प्रभावित करते हैं, जैसे कार्य का भार, बार-बार स्थानांतरण, राजनीतिक दबाव आदि। कलेक्टरों को अन्य अधिकारियों, राजनीतिक नेताओं और नागरिकों से अपने संबंध सुधार कर इन समस्याओं को दूर करने; और कार्य के माहौल को सुधारने का प्रयास करना चाहिए। अगली इकाई में, हम पंचायती राज संस्थाओं पर चर्चा करेंगे।

11.8 शब्दावली

अपीलीय क्षेत्राधिकार : निचले न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपीलों पर सुनवाई करने और निर्णय करने का प्राधिकार।

उत्प्रेरक : वह व्यक्ति जो प्रणाली में आवश्यक परिवर्तन तेज़ करने के लिए उत्तरदायी होता है।

उपनाम	:	किसी व्यक्ति या वस्तु के गुणों को व्यक्त करने वाला या कुछ आदर्शों को अभिव्यक्त करने वाला विवरणात्मक शब्द या वाक्यांश। इसका प्रयोग बहुधा किसी व्यक्ति या वस्तु के नाम के स्थान पर नामित किया जाता है।
नयाचार	:	राजनायिक मिशन पर अपनाए जाने वाले या उपयोग में लाया जाने वाला व्यवहार या शिष्टाचार।

11.9 संदर्भ लेख

Arora, R.K. & Goyal, R. (2013). *Indian Public Administration: Institutions and Issues.* New Delhi, India: New Age International Publishers.

Bava, N. (2000). *Development Policies and Administration in India,* New Delhi. India: Uppal Publishing House.

Government of India. (2009). Second Administrative Reforms Commission (15^{th} Report), *State and District Administration*. Retrieved from https://www.darpg.gov.in/sites/default/files/sdadmin15.pdf

Jain, R.B. (Ed.). (1980). *District Administration*. New Delhi, India: Indian Institute of Public Administration.

Lakhina, A. K. (1984). Reforms in the Collectorate of Ahmadnagar (Maharashtra - A Report). *The Indian Journal of Public Administration*, 30(2).

Mathew, C.K., Kannan, D. & Dutta U. (2018). *7 Themes/18Focus Subjects/45 Indicators* ***Districts Good Governance Index*** *Governance in the Districts of Himachal Pradesh/2018.* Retrieved from https://himachal.nic.in/writeReadData/1892s/25_1892s/1551172400.pdf

Maheshwari, S.R. (2001). *Indian Administration*. New Delhi, India: Orient Blackswan Private Limited.

Mishra, S. (2003). District Administration and Panchayati Raj Institutions Interface. In S.N. Mishra, A.D. Mishra & S. Mishra (Eds.). *Public Governance and Decentralisation (Essays in Honour of T.N. Chaturvedi).* New Delhi, India: Mittal Publications.

The Constitution of India. Retrieved from https://www.india.gov.in/my-government/constitution-india/constitution-india-full-text.

11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए :

- ज़िला प्रशासन में कलेक्टर उच्चतम अधिकारी है।
- राज्य स्तर पर, कलेक्टर राजस्व प्रशासन का प्रमुख अधिकारी है।

- जिले में कानून और व्यवस्था बनाए रखना कलेक्टर की ज़िम्मेदारी है।
- ज़िला प्रशासन के प्रमुख के रूप में, कलेक्टर विभिन्न विभागों जैसे राजस्व, पुलिस, आदि के बीच समन्वयकारी भूमिका निभाता है।

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए :

- भाग 11.2 देखिए।

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- राजस्व प्रशासन
- आपदा प्रबंधन
- कानून एवं व्यवस्था
- ज़िला प्रशासन
- ज़िला स्तर पर सरकार का प्रतिनिधि।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- भाग 11.3 देखिए।

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए :

- ज़िला स्तर पर संरचनात्मक सुधार और जनता के साथ व्यवहार करने में अभिवृत्तिक परिवर्तन लाने के लिए महाराष्ट्र राज्य के सतारा जिले में कलेक्टर द्वारा किए गए प्रयास।
- प्रशासनिक दक्षता लाने और जनता की ओर उत्तरदायित्व की भी आवश्यकता महसूस की गई।
- ज़िला प्रशासन में, कुछ सुधार किए गए थे। भौतिक कार्य के माहौल में भी सुधार किए गए थे।
- इस प्रयोग से यह सिद्ध हुआ है कि संरचनात्मक सुधारों के साथ-साथ अभिवृत्तिक परिवर्तनों, और परिवर्तन करने के लिए आवश्यक ''इच्छा शक्ति'' से ज़िला प्रशासन में कार्य-कुशलता लाई जा सकती है।

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- कलेक्टरों के बार-बार स्थानांतरण से उनके कार्य-निष्पादन में बाधा आती है।
- राजनीतिक हस्तक्षेप और दबाव भी उनके कार्य-निष्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।
- कलेक्टर की नयाचार ड्यूटियाँ भी उसके कार्य में बाधा डालती हैं।
- निरंतर बढ़ता हुआ कार्यभार।
- पुलिस और कलेक्टर के बीच तनावपूर्ण संबंध।
- संकट की स्थिति से निपटने के लिए, कलेक्टर के हस्तक्षेप की आवश्यकता तत्काल होती है। इससे भी उनके सामान्य कार्य में बाधा पड़ती है।

इकाई 12 पंचायती राज*

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 पंचायती राज की पृष्ठभूमि

12.3 तेहत्तरवां संविधान संशोधन

12.4 पंचायती राज संस्थाएँ

12.5 शक्ति और कार्य

12.6 प्रशासनिक संरचना

12.7 वित्त

12.8 मूल्यांकन

12.9 निष्कर्ष

12.10 शब्दावली

12.11 संदर्भ लेख

12.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात्, आपः

- पंचायती राज की पृष्ठभूमि के बारे में जान सकेंगे;
- तेहत्तरवें संविधान संशोधन के कारण पंचायती राज संस्थाओं की बदलती हुई भूमिका का वर्णन कर सकेंगे;
- पंचायती राज संस्थाओं की संरचना, शक्ति और कार्यों की व्याख्या कर सकेंगे;
- पंचायती राज संस्थाओं की प्रशासनिक संरचना पर चर्चा कर सकेंगे; और
- पंचायती राज संस्थाओं के वित्तीय संसाधनों की पर्याप्तता की जांच कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

स्वतंत्र भारत में, पंचायती राज की घोषणा सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तनों में से एक है। इसे क्रांतिकारी कदम के रूप में भी माना जाता था। पंचायती राज स्थानीय स्वशासन की एक ऐसी प्रणाली है, जिसमें लोग विकास के लिए स्वयं ज़िम्मेदारी लेते हैं। यह लोगों की पहल और सहभागिता द्वारा ग्राम विकास के लिए संस्थागत व्यवस्था प्रणाली भी है। विकास कार्यक्रमों का प्रबंधन इन स्थानीय स्वशासी संस्थाओं को सौंपा गया जिनका उद्देश्य सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास करना है। पंचायती

---

*यह इकाई बी.पी.ए.ई.-102, भारतीय प्रशासन, खंड-4, इकाई-20 का अनुकूलित रूप है।

राज में ग्राम, खंड और ज़िला स्तरों पर लोकतांत्रिक संस्थाओं की त्रिस्तरीय संरचना अर्थात् क्रमशः ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और ज़िला परिषद् शामिल की गई हैं। इन संस्थाओं को लोकतंत्र का प्रशिक्षण क्षेत्र और राजनीतिक शिक्षा की संस्था भी माना गया है। ग्राम विकास योजनाएँ इस स्तर पर कार्यान्वित की जाती हैं ताकि विकास के लाभ सीधे ही समाज को मिल सकें। भारत में 2,76,718 पंचायती राज संस्थाएं हैं, जिनमें 2,69,347 ग्राम पंचायतें, 6,717 ब्लॉक (खंड) पंचायतें/पंचायत समितियाँ और 654 ज़िला पंचायतें/ज़िला परिषद् सम्मिलित हैं। इस संदर्भ में, पंचायती राज संस्थाओं के 30.45 लाख निर्वाचित सदस्य ग्रामीण स्थानीय शासन में योगदान दे रहे हैं। यहाँ, यह ध्यान देने योग्य है कि 13.79 लाख (45 प्रतिशत) महिला निर्वाचित प्रतिनिधि हैं (Ministry of Panchayat Raj, Annual Report, 2019-20, p. 9)। इन संस्थाओं की स्थापना 1959 में विकेन्द्रीकरण और ग्राम स्वराज दर्शन के आधार पर की गई थी। इस इकाई में, हम पंचायती राज संस्थाओं की पृष्ठभूमि, संरचना, शक्ति और कार्यों की चर्चा करेंगे। इसके अतिरिक्त, हम नौकरशाही की भूमिका, वित्तीय संसाधनों और तिहत्तरवें संविधान संशोधन का विवेचन करेंगे।

12.2 पंचायती राज की पृष्ठभूमि

देश में ग्रामीण संस्थाएँ प्राचीन काल से ही किसी न किसी रूप में विद्यमान रही हैं। गाँव आदिकाल में, ग्रामीण स्वशासन के केन्द्र के रूप में होता था। उन्होंने प्राचीन, मध्य और मुगलकाल के दौरान प्रगति की। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान, आधारभूत स्तर पर स्वशासी संस्थाओं की स्थापना राष्ट्रीय विचारधारा का अंग था। महात्मा गांधी, जिन्होंने स्वतंत्रता के लिए अहिंसा का मार्ग दिखाया था, ने कहा था कि ग्राम स्वराज से मेरा अभिप्राय अपनी अत्यंत महत्वपूर्ण आवश्यकताओं के लिए अपने पड़ोसियों से स्वतंत्र पूर्ण गणराज्य से है, परन्तु जहाँ निर्भरता एक आवश्यकता है वहाँ वे एक-दूसरे पर परस्पर आश्रित हैं। गांधीजी के विचारों का व्यापक प्रभाव हुआ, जो संविधान सभा की बहसों में प्रतिबिम्बित हुआ। संविधान के प्रारूप में, स्वशासन इकाई के रूप में ग्रामों का कोई उल्लेख नहीं किया गया था। परन्तु संविधान सभा में कई ऐसे सदस्य भी थे, जिन्होंने महसूस किया कि आर्थिक और सामाजिक विकास में गाँव को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। पर्याप्त बहस और चर्चा के बाद, राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों संबंधी अध्याय में अनुच्छेद 40 शामिल किया गया। यह अनुच्छेद राज्य को "ग्राम पंचायतों के गठन के लिए आवश्यक कदम उठाने और उन्हें ऐसी शक्ति और प्राधिकार देने का निर्देश देता है जो उनके लिए स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक हों।" विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों का सहयोग प्राप्त करना तथा विकास के लिए कार्यनीति के रूप में योजना अपनाना आवश्यक है।

देश में सामुदायिक विकास कार्यक्रम अक्टूबर, 1952 में शुरू किया गया था। सीमित कर्मचारियों और निधियों से विकास खंडों की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य यह था कि खंड विकास अधिकारी के नेतृत्व में तकनीकी विशेषज्ञों का एक व्यापक संगठन बनाकर उसकी सहायता से क्षेत्र का समन्वित विकास किया जाएगा। आधारभूत स्तर पर बहु-प्रयोजनीय कार्यकर्ता उपलब्ध थे। समुदाय के योगदान के बराबर वित्त उपलब्ध किया गया। अभिप्राय यह था कि अपनी सहायता स्वयं करने की भावना को जागृत करने के लिए सीमित सरकारी धन का उपयोग किया जाए।

विकास कार्यक्रमों के लिए धन का आबंटन करने के बारे में सलाह देने के लिए प्रत्येक खंड में सलाहकार समितियाँ गठित की गई। सामुदायिक विकाय कार्यक्रमों के कामकाज की समीक्षा करने के लिए योजना परियोजना समिति ने एक दल गठित किया। जिसका कार्य कार्यक्रमों के निष्पादन में बेहतर कार्य-कुशलता सुनिश्चित करने के लिए कार्यक्रम का अध्ययन करने और कार्यक्रम की विषय-वस्तु, तथा कार्यक्रम की प्राथमिकताएँ सुनिश्चित करना था। भारत में पंचायती राज, मोटे तौर पर, इसी समिति की सिफारिशों पर आधारित है। यह समिति अपने अध्यक्ष के नाम से, श्री बलवंत राय मेहता समिति के रूप में जानी जाती है। इस समिति ने इस विषय पर गहराई से विचार किया और यह महसूस किया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम पर्याप्त प्रगति नहीं कर सका, क्योंकि इन निकायों के पास न तो पर्याप्त शक्ति है और न ही आवश्यक नेतृत्व। उन्होंने महसूस किया कि इन संस्थाओं का प्रतिनिधित्व स्वरूप होना चाहिए, यदि उन्हें प्रगति करनी है। समिति का विश्वास था कि जब तक उसमें प्रतिनिधित्व तथा लोकतांत्रिक संस्थाओं का सृजन नहीं कर पाते और उन्हें पर्याप्त शक्ति और वित्त के साथ संपन्न नहीं कर पाते, तब तक स्थानीय हितों ओर क्षेत्रीय विकास में स्थानीय लोगों की पहल को जागृत करने में कठिनाई होगी। इस बुनियादी संकल्पना के आधार पर दल ने कई सिफारिशें की, जो देश में पंचायती राज की त्रिस्तरीय संरचना की स्थापना के आधार बने।

टीम ने महसूस किया कि योजना और विकास की इकाई के रूप में ज़िला बहुत बड़ा और गाँव बहुत छोटा है। इसलिए विकास कार्य के लिए गाँव से बड़ा और ज़िले से छोटा क्षेत्राधिकार वाला क्षेत्र बनाया जाना चाहिए। समिति ने खंड बनाने का प्रस्ताव दिया, और वर्ष 1952 में ज़िले के बदले खंड बनाए गए। सामुदायिक विकास खंडों के अनुभव ने समिति को खंडों के पक्ष में प्रभावित किया। खंड में ''कार्यों का क्षेत्र पर्याप्त बड़ा होता है, जिन्हें ग्राम-पंचायतें पूरा नहीं कर सकती हैं, परन्तु निवासियों के हित और सेवा की दृष्टि से काफी छोटा होता है।" समिति ने नीचे ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, और प्रत्येक ज़िले में समिति से ऊपर ज़िला परिषद् की सिफारिश भी की।

समिति ने महसूस किया कि ग्राम पंचायत का गठन प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित प्रतिनिधियों से किया जाए, जबकि ज़िला परिषदों और पंचायत समितियों का गठन अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदस्यों से किया जाए। सिद्धान्त रूप में, यह स्वीकार किया गया कि कार्यकारी और विचारात्मक कार्यों को अलग-अलग रखा जाए। समिति के विचार में विकास कार्यों के लिए पंचायत समिति उत्तरदायी होनी चाहिए और ज़िला परिषद् समन्वय और पर्यवेक्षण कार्यों के लिए। उसने त्रिस्तरीय संरचना की सिफारिश की। उसने संगठन, आंतरिक संगठन, कार्य, वित्त, कार्मिक ढाँचा और इन संस्थाओं पर नियंत्रण की व्यवस्था के बारे में भी कई सिफारिशें की।

अधिकांश राज्य सरकारों ने, मेहता समिति की सिफारिशें स्वीकार की हैं, और पंचायती राज संस्थाएँ स्थापित की हैं। देश में पंचायती राज स्थापित करने वाले आंध्र प्रदेश और राजस्थान पहले राज्य थे। पंचायती राज का जो स्वरूप बाद में उभरकर सामने आया, यह मेहता समिति की सिफारिशों के अनुसार था, जबकि एक राज्य से दूसरे राज्य में इसके स्वरूप में काफी अंतर है। महाराष्ट्र सरकार ने यद्यपि वी.पी.नाईक की अध्यक्षता में पृथक समिति गठित की। नाईक समिति की सिफारिशों के आधार पर महाराष्ट्र और गुजरात में त्रिस्तरीय पंचायती राज स्थापित किया गया। इन दोनों राज्यों में खंड विकास के लिए खंड के बदले ज़िला को विकास की उपयुक्त इकाई समझा गया। इसलिए योजना और विकास की इकाई के रूप में ज़िले स्थापित किए

गए, और विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए ज़िला परिषदों के विस्तारित अंगों के रूप में समितियों को कार्य करना था। परन्तु, पंचायती राज की मूल इकाई ग्राम ही रहने दी गई।

इस प्रकार देश में, पंचायती राज के दो पृथक-पृथक पैटर्न विकसित हुए। पहला था, आंध्र प्रदेश पैटर्न जिसमें खंड योजना और विकास की इकाई है। विकास संबंधी कार्य इसे सौंपे गए थे। दूसरा पैटर्न, महाराष्ट्र पैटर्न कहलाता है, जिसमें योजना और विकास की इकाई ज़िला थी। इन दो पैटर्नों में पंचायती राज संस्थाओं की संरचना में भिन्न-भिन्न राज्यों में उनके गठन, शक्तियाँ और कार्य तथा विभिन्न स्तरों के स्वरूप और आकार में विभिन्नताएँ थीं।

पंचायती राज को सुदृढ़ करने के लिए सुधारों की समीक्षा करने और सिफारिश करने के लिए केन्द्रीय तथा राज्य, दोनों सरकारों ने कई समितियाँ और आयोग नियुक्त किए हैं। केन्द्रीय सरकार द्वारा 1978 में श्री अशोक मेहता की अध्यक्षता में गठित पंचायती राज संबंधी समिति बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस समिति ने देश के विभिन्न राज्यों में पंचायती राज प्रणाली की समीक्षा की और पंचायती राज की भिन्न संरचना की सिफारिश की। समिति ने देश में पंचायती राज को कमज़ोर करने वाले विभिन्न कारकों की सावधानीपूर्वक जांच करने के बाद गाँव और ज़िले के बीच मंडल पंचायतों के गठन की सिफारिश की। उसके विचार में इसे विकास कार्यकलाप का केन्द्र बनाया जाना चाहिए। समिति ने महसूस किया कि 15,000 से 20,000 तक आबादी में पंचायत मंडल आवश्यक संपर्क बनाने के लिए सुविधाजनक होंगे। समिति ने गठन, समिति प्रणाली, कार्य, वित्त आदि के बारे में कई सिफारिशें की। उसने पंचायती राज में राजनीतिक दलों की प्रत्यक्ष भागीदारी की उपयोगिता को स्वीकार किया है। उसकी सिफारिशों में मानव संसाधन विकास, अधिकारियों और ग़ैर-अधिकारियों का प्रशिक्षण, स्वैच्छिक एजेंसियों की भूमिका, शहर और गाँव के संबंधों को सुदृढ़ करने के उपाय सम्मिलित हैं। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों ने अशोक मेहता समिति द्वारा सुझाए गए सुधारों को कार्यान्वित करने के लिए कुछ प्रयास किए। इस प्रकार, बलवंत राय मेहता समिति ने त्रिस्तरीय पंचायत प्रणाली लागू की और अशोक मेहता समिति ने प्रणाली को सशक्त बनाने का प्रयास किया।

जनता पार्टी को, जो थोड़े ही समय के लिए सत्ता में थी, अशोक मेहता समिति की रिपोर्ट को कार्यांवित करने का समय नहीं मिला। इंदिरा सरकार ने इसमें अधिक रुचि नहीं ली। परन्तु राजीव गांधी सरकार ने पंचायती प्रणाली को पुनः सक्रिय करने का इरादा किया और इसलिए 1989 में संसद में 64वाँ संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया। विधेयक का उद्देश्य ग्रामीण स्वशासन इकाइयों को सांविधानिक स्वीकृति देना था। लोक सभा ने विधेयक पारित कर दिया, परन्तु राज्य सभा की स्वीकृति प्राप्त करने में असफल रही। नरसिम्हा राव सरकार ने भी उसी उद्देश्य से मामले को उठाया और ससंद में 72वां संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया, तथा यह 1992 में तेहत्तरवां/73वां संविधान संशोधन विधेयक बना।

इस संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान में भाग IX के रूप में एक नया अध्याय जोड़ा गया है। मुख्य प्रावधान हैंः ग्राम, मध्यवर्ती और ज़िला स्तर पर पंचायती राज की त्रिस्तरीय प्रणाली शुरू की जाएगी; पंचायत क्षेत्र के सभी मतदाताओं से ग्राम सभा का गठन किया जाएगा; पंचायतों में सभी स्तरों पर सीटें प्रत्यक्ष मतदान द्वारा भरी जाएंगी; संसद के सदस्य, विधान सभा के सदस्य और विधान परिषद् के सदस्य मध्यवर्ती

अथवा ज़िला स्तर पर पंचायतों के सदस्य होंगे; अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के लिए तथा महिलाओं के लिए भी सीटें आरक्षित की गई हैं। इस संशोधन के आलोक में, सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में पंचायत अधिनियम बदले गए हैं। 73वें संविधान संशोधन के प्रावधानों पर अब विस्तार से चर्चा की जाएगी।

12.3 तेहत्तरवां संविधान संशोधन

तेहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 के अधीन पंचायतों के "स्वशासन" को सांविधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। 24 अप्रैल, 1993 से अधिनियम के अधिनियमन और प्रवर्तन के साथ, राज्यों को अपने-अपने कानूनों को संशोधित करने के लिए कहा गया, जिससे यह 24 अप्रैल 1994 तक अधिनियम के अनुरूप हो सके। इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताओं पर चर्चा नीचे की गई है।

भारत का संविधान ग्राम, मध्यवर्ती और ज़िला स्तरों पर त्रिस्तरीय पंचायत की एक समान प्रणाली प्रदान करता है। परन्तु मध्यवर्ती स्तर पर पंचायतें उन राज्यों में गठित नहीं की जा सकती हैं जिनकी जनसंख्या बीस लाख से अधिक नहीं हैं। भारत में नागालैंड, मेघालय और मिजोरम को छोड़कर सभी राज्यों में; और दिल्ली को छोड़कर सभी केंद्र शासित प्रदेशों में पंचायती राज व्यवस्था मौजूद है।

पंचायत में सभी सीटें पंचायत क्षेत्र में क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्र से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने गए व्यक्तियों से भरी जाती हैं। राज्य का विधान–मंडल कानून द्वारा मध्यवर्ती और ज़िला स्तर पर पचायतों में संसद के सदस्यों, विधान सभा के सदस्यों और विधान परिषद् के सदस्यों के प्रतिनिधित्व का प्रावधान कर सकते हैं। राज्य मध्यवर्ती स्तर और ज़िला स्तर पर ग्राम पंचायतों के सभापतियों के प्रतिनिधित्व का प्रावधान कर सकते हैं। इससे त्रिस्तरीय पंचायतों में पारस्परिक संबंध पैदा होगा।

प्रमुख कारणों में से एक, जिसने पंचायती राज संस्थाओं के विकास में बाधा उत्पन्न की है, समय सीमा के अंदर नियमित तथा आवधिक निर्वाचन न करना रहा है। इसलिए, इन संस्थाओं का कार्यकाल अस्थिर रहा है। यही कारण है कि अधिनियम ने पाँच वर्ष के एक समान कार्यकाल का प्रावधान किया है, और कार्य-काल समाप्त होने से पहले निर्वाचन अनिवार्य है। भंग होने की स्थिति में, नए निकाय के गठन के लिए छः महीने के अंदर चुनाव करना राज्य के लिए बाध्यकारी बनाया गया है। इससे इन संस्थाओं को निरंतरता और शक्ति प्राप्त होगी; और वे अपने आपको जनता की प्रभावी, तथा दृढ़ संस्था के रूप में स्थापित कर सकेंगे।

समाज के कमज़ोर वर्गों की वास्तविक और सार्थक भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए अधिनियम में सभी त्रिस्तरों पर इन निकायों के सदस्यों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या में अनुपात के अनुसार आरक्षण का प्रावधान किया है। सदस्यता स्तर पर, केवल भागीदारी सार्थक सिद्ध नहीं हो सकती है। इसलिए राज्यों में उनकी जनसंख्या के अनुपात में इन श्रेणियों के लिए सभापति के पदों का भी प्रावधान है। यह अद्वितीय प्रावधान है, और आगे चलकर सभी स्तरों पर निर्णय करने में इन कमज़ोर वर्गों की उचित आवाज़ होगी।

महिलाएँ हमारी जनसंख्या की आधे के बराबर हैं। स्थानीय कार्यालयों में उन्हें सहभागिता का अवसर देने के लिए, सभापति के कम से कम एक तिहाई पद उनके

लिए आरक्षित किए गए हैं। इस प्रावधान से, ग्राम विकास में महिलाओं और कमज़ोर वर्गों की भागीदारी बराबर होगी।

इस संशोधन ने ग्राम सभा को महत्वपूर्ण भूमिका सौंपी है। एक ग्राम पंचायत क्षेत्र में सभी मतदाता इसके सदस्य हैं। यह ग्राम स्तर पर ऐसी शक्ति का प्रयोग करेगा और ऐसे कार्यों का निष्पादन करेगा, जैसा कानून द्वारा, राज्य का विधान–मंडल करता है। सभी राज्यों में तिहत्तरवें संशोधन से पहले भी ग्राम सभाएँ विद्यमान थीं, परन्तु वे केवल कागज़ पर थीं, और उनकी भूमिका नगण्य थी। परन्तु ग्राम सभा संस्था को पुनःसशक्त किया जाना चाहिए, ताकि लोग इसमें अपनी भागीदारी दे सकें और इसी आधार पर ही कार्यक्रम को तैयार कर सकें।

पंचायती राज संस्थाएँ आगे बढ़ सकती हैं तथा प्रगति कर सकती हैं, यदि उन्हें दृढ़ वित्तीय आधार प्रदान किया जाए। इसी प्रयोजन के लिए, अधिनियम अनिवार्य आधार पर वित्तीय हस्तांतरणों की प्रणाली प्रदान करता है। प्रत्येक राज्य में पाँच वर्ष में एक बार राज्य वित्त आयोग गठित किए जाते हैं, आयोग पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करता है, और इन संस्थाओं के संसाधन आधार को सुदृढ़ करने के लिए उपयुक्त सिफारिशें करता है। लोकतंत्र में निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनाव किसी भी संस्था के लिए लोगों का विश्वास तथा सम्मान प्राप्त करने में सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटक हैं। इसलिए अधिनियम में अधीक्षण, निर्देशन तथा सभी पंचायत चुनावों के संचालन के लिए राज्य निर्वाचन आयोग का प्रावधान है।

ग्यारहवीं अनुसूची में 29 मदें है, जैसे कृषि, लघु सिंचाई, मछली पालन, ग्रामीण आवास आदि, ये पंचायती राज संस्थाओं को कार्य प्रत्यायोजन के लिए राज्य सरकारों के मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है। पंचायतों को आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएँ तैयार करनी पड़ती हैं। पंचायतों द्वारा तैयार की गई योजनाओं को ज़िला योजना समिति द्वारा समेकित किया जाएगा।

संशोधन अधिनियम का एक अन्य महत्वपूर्ण प्रावधान, ज़िले में पंचायतों और नगर–पालिकाओं द्वारा तैयार की गई योजनाओं को समेकित करने के लिए ज़िला योजना समिति का गठन करना है।

तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 का वास्तविक प्रभाव हैः क) पंचायती राज संस्थाओं का सांविधानिक दर्जा; ख) इन संस्थाओं के सामाजिक विस्तार में वृद्धि; ग) पंचायतों को योजना की आधरशिला बनाना; और घ) पंचायती राज संस्थाओं द्वारा शुरू किए जाने वाले विकास कार्य के लिए सांविधानिक रूप से आबंटित फंड का प्रावधान; और ङ) एक समय सीमा के भीतर नियमित और आवधिक चुनावों के लिए प्रावधान।

पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों के विस्तार) अधिनियम, 1996

तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम के प्रावधान, संविधान के अनुच्छेद 244 के खंड (i) के तहत् आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, उड़ीसा और बिहार में स्थित अनुसूचित क्षेत्रों पर लागू नहीं होते हैं। संसद ने अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायत (अनुसूचित क्षेत्र का विस्तार) अधिनियम, 1996 द्वारा 24 दिसम्बर 1996 को इन क्षेत्रों तक तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम का विस्तार किया। पंचायतों के प्रावधानों का बुनियादी प्रारंभ ग्राम सभा को सशक्त बनाकर आदिवासी क्षेत्रों में सहयोगात्मक लोकतंत्र को सुकर बनाना, भूमि, जल, वन और

खनिज जैसे प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंध करने के लिए समुदाय की शक्ति बहाल करना; और उसकी क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार के अंदर विकास के लिए प्रभावी; वितरण प्रणाली विकसित करना था। परन्तु राज्य सरकार की ओर से व्यापक उदासीनता चिन्ताजनक प्रवृत्ति है क्योंकि बहुत से राज्यों ने ग्राम सभा की अपेक्षा ग्राम पंचायत को अधिक शक्ति देकर अधिनियम के उद्देश्य को मन्दित कर दिया है।

12.4 पंचायती राज संस्थाएँ

तिहत्तरवें संविधान संशोधन के पश्चात् हमारे प्रत्येक राज्य में ग्राम, खंड और ज़िला स्तर पर त्रिस्तरीय पंचायती राज ढाँचा है।

ग्राम सभा

ग्राम स्तर पर पंचायतों के ढाँचे की महत्वपूर्ण विशेषता ग्राम सभा है। यह सर्वोच्च ग्राम सभा और ऐसी पंचायती राज संस्था है, जिसे कानून के अधीन कानूनी हैसियत प्राप्त है। इसमें ग्राम पंचायत के क्षेत्र के अंतर्गत गाँव की मतदाता सूची में मतदाता के रूप में पंजीकृत सभी वयस्क होते हैं। ग्राम सभा के लिए प्रत्येक वर्ष में दो से चार आम बैठकें आयोजित करना बाध्यकारी बनाया गया है। ग्राम सभा इस प्रकार की शक्ति का प्रयोग कर सकती है, और ऐसे कार्यों का निष्पादन कर सकती हैं जैसा राज्य का विधान–मंडल कानून द्वारा प्रदान करता है। अधिकांश राज्यों में, ग्राम सभाओं का गठन समाज के अंतिम छोर पर लोकप्रिय भागीदारी के साधन के रूप में किया गया है। उन्हें पंचायत के खातों और प्रशासन पर विचार करने की शक्ति दी गई है, और विभिन्न योजनाओं के अधीन लाभार्थियों की पहचान करने तथा विकास के लिए कर लगाने तथा योजनाओं के प्रस्तावों का अनुमोदन करने की शक्ति प्राप्त है।

ग्राम पंचायत

देशभर में पंचायती राज के ढाँचे की बुनियादी इकाई ग्राम पंचायत है। चूंकि प्राचीन काल से देश में ग्राम पंचायतें रही हैं, इसलिए प्रायः सभी राज्यों ने उनके महत्व को स्वीकार किया है। यह भी अनुभव किया गया कि चूंकि पंचायतें समुदाय के अधिक समीप हैं, इसलिए वे विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में स्थानीय लोगों की अधिक प्रत्यक्ष भागीदारी सुनिश्चित करेंगे। ग्राम पंचायत में, सभी सीटें पंचायत क्षेत्र में क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुने गए व्यक्तियों द्वारा भरी जाती हैं। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित की गई हैं।

पंचायत समिति

पंचायती राज की संरचना में अगला महत्वपूर्ण निकाय पंचायत समिति है। प्रायः सभी राज्यों में, समितियों को महत्वपूर्ण भूमिका दी गई है। क्षेत्र के मतदाता समिति में अपने प्रतिनिधियों को सीधे चुनते हैं। राज्य ग्राम पंचायतों के अध्यक्ष, संसद सदस्यों, विधान सभा सदस्यों और विधान परिषद् सदस्यों को प्रतिनिधित्व दे सकता है। इस प्रकार पंचायत समितियों की संरचना राज्यों में भिन्न-भिन्न है। हालाँकि, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित की गई हैं।

ज़िला परिषद्

ज़िला परिषद् सभी राज्यों में ज़िला स्तर पर तृतीय स्तर के रूप में स्थापित की गई है। ज़िला परिषद् का संरचनात्मक पैटर्न वैसा ही है जैसा कि पंचायत समिति में होता

है। मतदाता अपने निर्वाचन क्षेत्रों से अपने प्रतिनिधियों को सीधे चुनते हैं। ये सीटें अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिए भी आरक्षित की गई हैं। राज्य विधान मंडल, पंचायत समिति के अध्यक्षों, संसद के सदस्यों, विधान सभा के सदस्यों और विधान परिषद् के सदस्यों का कानून द्वारा प्रतिनिधित्व का प्रावधान कर सकता है।

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण

आंध्र प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, केरल, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा और राजस्थान आदि ने महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण लागू किया है।

12.5 शक्ति और कार्य

ग्राम पंचायत

ग्राम स्तर पर ग्यारहवीं अनुसूची में उल्लिखित विषयों की योजना और कार्यावयन के लिए पंचायतें उत्तरदायी हैं। इन निकायों को अपने अधिकार में उपलब्ध निधियों की सीमाओं के अंदर विभिन्न प्रकार के कार्य सौंपे गए हैं। सभा के क्षेत्र की आवश्यकताओं के निर्वहन की व्यवस्था करने संबंधी कार्य इन्हें सौंपे गए हैं। ग्राम पंचायतों के सामान्य कार्यों में उसके क्षेत्राधिकार के अधीन गाँव के आवश्यक आँकड़ों का रखरखाव, पंचायत क्षेत्र के विकास के लिए वार्षिक योजना तैयार करना, वार्षिक बजट की तैयारी, आपदा के दौरान राहत कार्य का संचालन, सार्वजनिक स्थान पर अतिक्रमण को हटाना और सामुदायिक कार्यों के लिए स्वैच्छिक श्रम और सहयोग की व्यवस्था करना शामिल हैं। अन्य महत्वपूर्ण कार्य निम्नलिखित से संबंधित हैः कृषि, पशुपालन, मत्स्य पालन, ग्रामीण आवास, पेयजल, ग्रामीण विद्युतीकरण, ग़ैर-पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों, प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों, पुस्तकालयों के सुधार एवं विकास से संबंधित हैं। सांस्कृतिक गतिविधियों बाज़ार और मेलों, ग्रामीण स्वच्छता, सार्वजनिक स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, महिला और बाल विकास, कमज़ोर वर्गों का कल्याण, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, सामुदायिक परिसम्पत्तियों की देखभाल, धर्मशालाओं, गौशालाओं बूचड़खानों, सार्वजनिक पार्कों का निर्माण और रखरखाव आदि। ग्राम पंचायतों को अनिवार्य और स्वविवेकी दोनों प्रकार के काम सौंपे गए हैं। ये नागरिक और विकास संबंधी हैं। कृषि, प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई तथा स्थानीय सुविधाओं जैसे विकास कार्यों पर मुख्य बल दिया जाता है। आम तौर पर यह महसूस किया जाता है कि उन्हें पर्याप्त संसाधनों के बिना बहुत काम सौंपे गए हैं।

पंचायत समिति

पंचायत समिति योजनाओं के निर्माण तथा कार्यान्वयन के लिए आवश्यक कार्यों का निष्पादन करती हैं। पंचायत समिति की शक्ति और मुख्य कार्य निम्न प्रकार हैं:

i) उसे सौंपी गई योजनाओं के संबंध में वार्षिक योजना को तैयार करना और ज़िला योजना समिति के विचारार्थ उन्हें उसकी प्राप्ति के दो महीने के अंदर मुख्य कार्यकारी अधिकारी को प्रस्तुत करना;

ii) खंड में सभी ग्राम पंचायतों की योजनाओं पर विचार करना, और उन्हें समेकित करना तथा ज़िला परिषद् को सौंपना;

iii) खंडों का वार्षिक बजट तैयार करना और ज़िला परिषद् की समय सीमाओं में उन्हें प्रस्तुत करना;

iv) प्राकृतिक आपदाओं अथवा संकट में राहत प्रदान करना;

v) वे प्रकार्य करना तथा कार्य-निष्पादन करना जो उसे सरकार या ज़िला परिषद् द्वारा सौंपे गए हैं।

इसके अतिरिक्त, पंचायत समिति को कई शक्तियाँ और कार्य सौंपे गए हैं जैसे सुधार और वाटरशेड विकास, लघु सिंचाई, पशुपालन, मत्स्यपालन, डेयरी और मुर्गी पालन, ग्राम और कुटीर उद्योग, पेय जल, ग्रामीण विद्युतीकरण, खादी, आदि।

ज़िला परिषद्

ज़िला परिषद् मुख्य रूप से पंचायत प्रणाली की सलाहकारी, पर्यवेक्षी और समन्वय एजेंसी है। यह सरकार की आवश्यकता पर या पंचायत समितियों के अनुरोध पर या स्वयं अपने ही प्रस्ताव पर पंचायत समिति को सलाह देती है; पंचायत समिति के संबंध में ज़िले में दो या अधिक पंचायत समितियों की विकास योजनाओं, परियोजना योजनाओं का निष्पादन सुनिश्चित करती है; ज़िले में विकास कार्यों और सेवाओं के रखरखाव से संबंधित सभी मामलों पर सरकार को सलाह देती है। ग्राम पंचायतों तथा पंचायत समितियों में कार्य आबंटन पर सरकार को सलाह देती है और उनके कार्य का समन्वय करती है; किसी भी वैधानिक या कार्यकारी आदेश के कार्यान्वयन से संबंधित सरकार द्वारा भेजे गए मामलों पर सरकार को सलाह देती है और हरियाणा पंचायती राज अधिनियम, 1994 की धारा 102 में निर्धारित तरीके में पंचायत समितियों के बजट की जांच करती है और स्वीकृति देती है। ज़िला परिषद् सरकार के लिखित आदेश के अधीन ज़िले के अंदर या उसके किसी भाग में ग्राम पंचायत और पंचायत समिति के सभी या किसी भी प्रशासनिक कार्य के निष्पादन का पर्यवेक्षण और नियंत्रण का प्रयोग कर सकती है।

पंचायतों के कार्यों के हस्तांतरण के संबंध में सांविधानिक स्थिति पर दो विचारधाराएँ हैं। साधारणतया यह माना जाता है कि पंचायतों को केवल विकास संबंधी ज़िम्मेदारियाँ सौंपी जा सकती हैं और ऐसी ज़िम्मेदारियाँ ग्यारहवीं अनुसूची द्वारा सीमित की गई हैं। एक अन्य दृष्टिकोण है, जो अनुच्छेद 243 (जी) के पर्याप्त भाग पर विश्वास करता है, जो स्थानीय स्वशासन की संस्था के रूप में उन्हें कार्य करने योग्य बनाने के लिए ऐसी शक्ति और प्राधिकार देने का सुझाव देता है जो संभव हो सकता है (The Constitution of India, pp. 133-134, https://www.india.gov.in/my-government/constitution-india/constitution-india-full-text)। इस विचारधारा से यह निष्कर्ष निकलता है कि ग्यारहवीं अनुसूची की अधिकतम सीमा नहीं है और यह निर्णय करना राज्य विधान–मंडल का काम है कि पंचायतों की क्या शक्ति और उत्तरदायित्व होना चाहिए ताकि वे स्वशासन की संस्थाओं के रूप में कार्य कर सकें।

ई-ग्राम स्वराज पोर्टल और मोबाइल ऐप के माध्यम से पंचायती राज मंत्रालय ग्राम पंचायतों को अपनी ग्राम पंचायत विकास योजना को तैयार करने और कार्यान्वित करने के लिए एकल इंटरफेस प्रदान करेगा। अब, विकेंद्रीकृत योजना, प्रगति रिपोर्टिंग और कार्य-आधारित लेखांकन पर जानकारी एकत्र करना सुविधाजनक और आसान होगा।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणीः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थानों का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) बलवंत राय मेहता समिति की मुख्य सिफारिशें क्या हैं?

....

....

....

....

....

2) पंचायती राज की त्रिस्तरीय संरचना का वर्णन कीजिए?

....

....

....

....

....

3) पंचायती राज संस्थाओं की शक्तियों और कार्यों की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

12.6 प्रशासनिक संरचना

इस बात को शुरू से ही स्वीकार किया गया है कि पंचायती राज संस्थाओं में दक्ष और सक्षम कार्मिक होने आवश्यक हैं। स्थानीय स्वशासन एजेंसियों को कई कार्य करने होते हैं। वे हरियाणा जैसे राज्यों में क्षेत्र स्तर पर योजनाओं के आयोजन, निष्पादन तथा मॉनिटरिंग के लिए पूरी तरह से शामिल हैं, जिसमें तकनीकी और प्रशासनिक कर्मियों की आवश्यकता होती है। इन निकायों की नीतियों और कार्यक्रमों को वे निरंतरता प्रदान करते हैं क्योंकि राजनीतिक कार्यकारी समय-समय पर बदलते रहते हैं। अतः वे सक्षम कार्मिक निष्पक्षता और उद्देश्य-मूलक निर्णयन के लिए आवश्यक हैं।

पंचायती राज संस्थाओं के कार्मिक की दो श्रेणियाँ होती हैं। पहला पंचायती राज के नियंत्रणाधीन राज्य संवर्ग के अधिकारी हैं, जैसे– खंड विकास अधिकारी एवं राज्य के विभागों से अन्य तकनीकी अधिकारी। उनकी भर्ती, स्थानांतरण और अनुशासन संबंधी समस्त कार्रवाई राज्य सरकार करती है। दूसरा, पृथक पंचायती राज संवर्ग का गठन है। यह महाराष्ट्र, गुजरात, आंध्र प्रदेश और राजस्थान में पाया जाता है। पंचायती राज

में मोटे तौर पर दो प्रकार के अधिकारी होते हैं, अर्थात् सामान्यज्ञ अधिकारी और तकनीकी अधिकारी। सामान्यज्ञ श्रेणी के अंतर्गत मुख्य कार्यकारी अधिकारी, खंड विकास अधिकारी, ग्राम सेवक आते हैं। तकनीकी श्रेणी में ज़िला स्तर के तकनीकी अधिकारी आते हैं। एक अन्य वर्गीकरण के अन्तर्गत राज्य संवर्ग के अधिकारी और स्थानीय संवर्ग के अधिकारी हैं। मुख्य कार्यकारी अधिकारी, खंड विकास अधिकारी, तकनीकी अधिकारी, विस्तार अधिकारी आदि राज्य संवर्ग के होते हैं। वे राज्य स्तर के विभागों में से किसी न किसी विभाग के अधिकारी होते हैं। उनकी सेवा शर्ते, राज्य सरकार द्वारा विनियमित होती हैं। प्रगति प्रसार अधिकारी, पंचायत विस्तार अधिकारी, लोअर डिवीज़न क्लर्क, ग्राम सेवक आदि, मोटे तौर पर, स्थानीय कैडर के अधिकारियों का गठन करते हैं, उन्हें ज़िला स्तर पर नियुक्त किया जाता है, जिन्हें पंचायती राज संस्था के कर्मचारी के रूप में माना जाता है।

पंचायती राज संस्थाओं के कर्मचारी भर्ती संरूप में काफी हद तक एकरूपता है। स्वशासन स्तर पर पंचायत के प्रशासनिक कार्य को देखने के लिए सचिव या कार्यकारी अधिकारी होता है। कुछ गाँवों के लिए एक ग्राम सेवक की नियुक्ति की जाती है। वह मुख्य रूप से अपने अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले गाँवों में विकास कार्यक्रमों से संबंधित बहु-उद्देश्यीय कर्मचारी है। खंड विकास अधिकारी, खंड स्तर पर मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में कार्य करता है और अपने अधीनस्थ अधिकारियों के कार्य का समन्वय करता है। खंड स्तर पर प्रत्येक विकास कार्यकलाप के लिए विस्तार अधिकारी नियुक्त होता है। वह खंड विकास अधिकारी के प्रशासनिक नियंत्रणाधीन और ज़िला स्तर के अधिकारियों के तकनीकी नियंत्रण में कार्य करता है। खंड स्तर पर इस प्रकार के दुहरे नियंत्रण में कई समस्याएं उत्पन्न होती हैं। ज़िला परिषदों में, मुख्य कार्यकारी अधिकारी या ज़िला विकास अधिकारी ज़िला परिषद् का प्रमुख अधिकारी होता है। ज़िला तकनीकी अधिकारी विकास कार्यों में उसकी सहायता करते हैं।

पंचायती राज में विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारी काम करते हैं, इसलिए कार्मिकों से संबंधित कई समस्याएँ होती हैं। उनका चयन भिन्न-भिन्न एजेंसियों द्वारा किया जाता है और उनकी सेवा शर्तों और पदोन्नति की श्रृंखला भी भिन्न है। पंचायती राज के लिए उनकी उपयुक्तता पर संदेह प्रकट किया जाता है। कई राज्य स्तर के अधिकारी प्रतिनियुक्ति पर होते हैं, इसलिए वे एक राही की तरह पंचायती राज के प्रति किसी प्रकार की प्रतिबद्धता के बिना कार्य करते हैं। अधिकारियों का बार-बार स्थानांतरण, कागज़ी कार्रवाई में निरंतर वृद्धि, प्रगति और प्रोन्नति के अपर्याप्त अवसर कुछ ऐसे कारण हैं, जो पंचायती राज के कार्मिकों को प्रभावित कर रहे हैं। इस प्रकार पंचायती राज के स्टाफ में एकीकृत पैटर्न का अभाव, असंतोषजनक सेवा-शर्ते और प्रभावी प्रशिक्षण कार्यक्रम का अभाव दिखाई देता है।

12.7 वित्त

मोटे तौर पर, पंचायती राज के वित्तीय स्रोतों को चार श्रेणियों अर्थात् "कर", "अनुदान" और "सार्वजनिक अंशदान" तथा "उत्पादनकारी उद्यमों से आय" व "ऋण" में विभाजित किया जा सकता है। पंचायतों द्वारा लगाए गए कर अनिवार्य और विवेकाधीन दोनों प्रकार के होते हैं। कुछ राज्यों में पंचायतें वाहन कर, व्यवसाय कर आदि भी वसूल करते हैं। परन्तु पंचायतों द्वारा कर लगाने और वसूल करने के बारे में आमतौर पर

अनिच्छा रही है। पंचायत की आय का दूसरा स्रोत सरकारी अनुदान है। परन्तु अनुदान के स्वरूप और परिमाण में एकरूपता नहीं है। पंचायतें उत्पादनकारी उद्यमों जैसे– सिनेमाघरों, आटा मिलों आदि से आय प्राप्त करती हैं।

बहुत से राज्यों में, पंचायत समितियों को कर लगाने की भी शक्ति प्राप्त है। वे गृहकर, सिंचाई कर, शिक्षा कर आदि की उगाही कर सकती है। परन्तु कर लगाने की इस शक्ति का प्रयोग शायद ही किया गया है। पंचायतों की तरह इन समितियों को भी सरकार से अनुदान मिलता है, और भिन्न-भिन्न राज्यों में अनुदान का स्वरूप और मात्रा अलग-अलग होती है। कुछ राज्यों में, जहाँ शिक्षा जैसे कुछ कार्य समितियों को हस्तांतरित किए गए हैं, उन्हें इन कार्यों के लिए अनुदान दिया जाता है। इसलिए उनके वित्तीय स्रोत, अधिकतर राज्य सरकार से प्राप्त अनुदान और नियत राजस्व होता है। परिषदों की निधि, मुख्य रूप से भू-राजस्व के हिस्से से और सरकार द्वारा उन्हें निर्दिष्ट अन्य करों से आती है।

पंचायती राज संस्थाओं की गंभीर समस्या यह है कि वे हमेशा वित्तीय अभाव से ग्रस्त रहती हैं। धन की कमी बुनियादी कारणों में से एक है, जिसके फलस्वरूप वे विकास कार्य शुरु नहीं कर पाती हैं। यद्यपि उन्हें ग्राम विकास की प्रधान एजेंसी के रूप में समझा जाता है, परन्तु उन्हें पर्याप्त संसाधन नहीं दिए जाते हैं। प्रायः सभी राज्यों में पंचायती राज संस्थाएँ, राज्य के अनुदान पर ही पूरी तरह से आश्रित रहती हैं। अनुदान की मात्रा, अधिकतर राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है।

पंचायतों द्वारा लगाए जाने वाले करों, शुल्क, और फीस उन्हें सौंपी जाती है, और उन्हें दिए जाने वाला सहायता अनुदान राज्य सरकार के विवेक पर छोड़ दिया जाता था। परन्तु तिहत्तरवें संविधान संशोधन के पश्चात्, प्रत्येक राज्य में राज्य वित्त आयोग है, और यह प्रत्येक पाँच वर्ष में गठित किया जाता है। वित्त आयोग का उद्देश्य राज्य और पंचायतों के बीच और सभी स्तरों पर पंचायतों के बीच भी करों, शुल्कों, और फीस के वितरण को शासित करने के सिद्धान्तों के बारे में सिफारिशें करना है। आयोग उन्हें सौंपे जाने वाले करों, शुल्कों, और फीस, तथा राज्य के संचित फंड से दिए जाने वाले सहायता अनुदान के निर्धारण के लिए सिद्धान्तों का भी सुझाव देता है। इसे पंचायती राज संस्थाओं की वित्तीय स्थिति सुधारने के उपायों का सुझाव देने का आदेश प्राप्त है।

पंचायतें मुख्य रूप से साझा करों और अनुदान के रूप में राज्य सरकार से राजकोषीय हस्तांतरण पर निर्भर करती हैं। चूंकि राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार करों को साझा किया जाता है, इसलिए पांच वर्षों के नियमित अंतराल पर राज्य वित्त आयोग का गठन (अधिक विवरण के लिए, पढ़ें इकाई 7, राज्य वित्त आयोग का अध्ययन करें) एक अनिवार्य आवश्यकता है। इस संबंध में, आयोग का सबसे महत्वपूर्ण कार्य राजस्व साझाकरण और अनुदान सहायता के रूप में राज्य से स्थानीय सरकार को राजकोषीय हस्तांतरण निर्धारित करना है। यह उल्लेखनीय है कि चौदहवें वित्त आयोग (2015-20) ने पंचायतों को 2,00,292 करोड़ रुपये का अनुदान आबंटित किया था। इस प्रकार, ग्राम पंचायतों के लिए संसाधनों की हिस्सेदारी में वृद्धि हुई है। जहां तक राज्यों का संबंध है, तमिलनाडु में, चौथे वित्त आयोग (2012-17) ने 10,337.58 करोड़ रुपये की सिफारिश ग्राम पंचायतों के लिए, रु. 5,620.04 पंचायत यूनियनों के लिए और रु. 1,405.02 ज़िला पंचायतों के लिए, यानी कुल रु. 17,362.64 करोड़ (Panchayati Raj: Funds Release to Rural Local Bodies, https://tnrd.gov.in/

fundsrelease. htm)। स्थानीय सरकारों के लिए संसाधनों के हस्तांतरण में वृद्धि के साथ, ग्राम पंचायतों ने निधियों का विवेकपूर्ण उपयोग किया है।

12.8 मूल्यांकन

भारत में पंचायती राज संस्थाओं ने लगभग छः दशक पूरे कर लिए हैं। इसे लागू करते समय, सामाजिक क्रांति के रूप में माना गया और ग्रामीण समाज को प्रभावित करने वाली कई समस्याओं का समाधान कहा गया था। एक प्रश्न बहुधा उठाया जाता है कि पंचायती राज सफल रहा है या नहीं? इस पर दो प्रकार की विचारधाराएँ हैं: पंचायती राज के समर्थक यह तर्क देते हैं कि यह सफल रहा है, और इसने अपने उद्देश्य प्राप्त कर लिए हैं; दूसरी ओर, आलोचकों का तर्क है कि यह अपना लक्ष्य प्राप्त करने में असफल रहा है। पिछले तकरीबन छः दशकों के दौरान पंचायती राज ने कई उतार-चढ़ावों का सामना किया है। यह आरोह, निष्क्रियता और अवरोह के दौर से गुज़रा है। समर्थकों का यह तर्क है कि पंचायती राज से लोगों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा हुई है। इस प्रकार ये संस्थाएँ लोकतंत्र की भावना पैदा करने में सहायक सिद्ध हुई हैं। इसने अधिकारी वर्ग और लोगों के बीच की दूरी कम करने में सेतु का काम किया है। इसने ऐसा नया नेतृत्व भी प्रदान किया है, जो युवा उत्साही और आधुनिकतावादी है। इसने लोगों में विकास भावना भी उत्पन्न की है। इसने विकास कार्यक्रमों को शुरू करने और कार्यान्वित करने में सकारात्मक भूमिका अदा की है। कई मामलों में, विकास कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने में आवश्यक समर्थन देने के लिए राजनीतिक आधार का भी उपयोग किया गया है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में नए किस्म का नेतृत्व उभरा है। इन संस्थाओं में लोकतांत्रिक संस्थाओं की कला में प्रशिक्षित नेताओं ने निरंतर प्रगति की है, और वे लोकतांत्रिक संस्थाओं के उच्च स्थानों पर राजनीतिक कार्यकारी बन गए हैं।

बहुधा यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या स्थानीय निकायों को पर्याप्त सत्ता का हस्तांतरण है या नहीं? पंचायती राज के नियामक अधिनियमों में निस्संदेह पंचायती राज के प्रत्येक स्तर की शक्ति और कार्य निर्दिष्ट हैं। उनसे स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार योजना तैयार करने और उन्हें कार्यान्वित करने की आशा की गई थी। परन्तु दुर्भाग्यवश, स्थानीय निकाय स्थानीय आवश्यकताओं पर ध्यान दिए बिना यंत्रवत् और नेमी तरीके में योजना बनाने लगे। इसका कारण यह है कि पंचायती राज संस्थाओं का संसाधन आधार बहुत सीमित है। इसलिए समस्त स्थानीय आवश्यकताओं और योजना को पूरा करने में असमर्थ हैं। परन्तु मुख्य आलोचना यह है कि नेतृत्व बहुत संकीर्ण सामाजिक आधार से लिया जाता है। यह भी आरोप लगाया गया है कि उनमें अधिकतर नेता प्रभावशाली भूमिधारी जातियों या वर्गों से होते हैं। इस प्रकार, कुछ क्षेत्रों में आर्थिक और सामाजिक रूप से विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग लाभ उठा रहा है, और कमज़ोर वर्गों को कोई लाभ नहीं मिलता है।

विकास कार्यक्रमों के कुशल प्रशासन के लिए समन्वय अनिवार्य है। दुर्भाग्य से यह उन गंभीर समस्याओं में से एक समस्या है, जिसका पंचायती राज सामना कर रहा है। विस्तार अधिकारी पर दुहरा नियंत्रण, विकास विभागों और पंचायती राज संस्थाओं के पूर्ण एकीकरण का अभाव, कुछ ऐसे कारण हैं, जिनकी वजह से समन्वय कार्य असफल रहा है। बोझिल प्रशासनिक प्रक्रिया पर बल दिया गया है, जिससे पहल शक्ति क्षीण हुई है और कार्यान्वयन प्रक्रिया शिथिल हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि कार्य-निष्पादन

की भूमिका की अपेक्षा नियमों के अनुसरण पर अधिक ज़ोर दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप, विकास कार्यक्रमों के निष्पादन में विलम्ब हुआ है। लालफीताशाही भी जनप्रतिनिधियों के उत्साह को शिथिल कर रही है।

पंचायती राज संस्थाएँ विशेषकर आधारभूत स्तर पर नागरिक सुविधाओं पर अधिक ध्यान देती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि स्कूल प्रभावी ढंग से चलाने की अपेक्षा स्कूल के भवन-निर्माण में अधिक ध्यान दिया जाता है। यद्यपि नागरिक सुविधाएँ और बुनियादी ढाँचा महत्वपूर्ण है फिर भी, विस्तार की पूर्णतः उपेक्षा नहीं की जा सकती है। एक अन्य समस्या यह है कि कमज़ोर वर्गों के कल्याण पर पंचायती राज संस्थाओं ने समुचित ध्यान नहीं दिया है, चाहे यह प्रतिबद्धता की कमी या संसाधनों की कमी के कारण हो।

इन बाधाओं के होते हुए भी पंचायती राज ने ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं को लोकतांत्रिक बनाने में अपेक्षित प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान किया है। इसने ग्रामीण लोगों में रुचि और उत्साह पैदा किया है। परन्तु उच्चतर स्तरों पर, दुर्भाग्यवश, इस उत्साह को अपेक्षित समर्थन नहीं मिला है और उपयुक्त संसाधनों की सहायता भी नहीं की गई।

पंचायतों को स्व-शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने के लिए राज्यों ने जो सक्षम वातावरण बनाया था, उसका आकलन करने के लिए एक अध्ययन किया गया है। विश्लेषण एक परीक्षण के साथ शुरू हुआ कि क्या राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों ने संविधान के चयनित अनिवार्य प्रावधानों को पूरा किया है, जो निम्नलिखित हैं:

i) राज्यों में पंचायतों के नियमित चुनाव आयोजित करना;
ii) राज्यों में राज्य निर्वाचन आयोग की स्थापना;
iii) राज्यों में ज़िला योजना समितियों की स्थापना;
iv) राज्यों में नियमित अंतराल पर राज्य वित्त आयोग की स्थापना; तथा
v) राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं के सभी स्तरों पर अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण।

जब किसी राज्य द्वारा बनाए गए सक्षम माहौल की तुलना अन्य राज्यों के साथ की जाती है, तो यह देखा जा सकता है कि मॉनिटर किए गए संकेतकों के मामले में, ''महाराष्ट्र 69.65 के साथ पहले स्थान पर है, उसके बाद केरल (60.87), कर्नाटक (60.82), और तमिलनाडु (56.05) हैं। महाराष्ट्र 70 के करीब अंक के साथ बाकी से आगे है, जबकि, केरल और कर्नाटक लगभग 61 अंक के साथ एक दूसरे के बेहद करीब हैं। तमिलनाडु के लगभग 55 अंक हैं। इसके अलावा, छत्तीसगढ़, पश्चिम बंगाल और राजस्थान; छठे, सातवें और आठवें स्थान पर 53 अंक के पास हैं। यहाँ ध्यान दिया जा सकता है कि त्रिपुरा एकमात्र उत्तर पूर्वी राज्य है, जिसके अंक 45 के पास है, जो कि 43.36 के राष्ट्रीय औसत से ऊपर है।'' (Alok, pp 45-46))। इस प्रकार, उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि 73वें संविधान संशोधन के लागू होने के ढाई दशक से अधिक समय के बाद भी, राज्यों में से किसी ने भी राज्यों से पंचायतों तक पूर्ण हस्तांतरण हासिल नहीं किया था।

यदि हम लोकतंत्र के सिद्धान्तों के लिए समर्पित हैं तो स्थानीय स्तर पर स्वशासन संस्थाएँ आवश्यक हैं। पंचायती राज की सफलता देश में लोकतंत्र को सुदृढ़ करेगी,

और उनकी असफलता से यह कमज़ोर होगा। लोकतंत्र राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर ही सीमित नहीं रह सकता। यदि लोकतंत्र को जीवित रखना है तो लोकतांत्रिक संस्थाओं को मज़बूत करना और आधारभूत स्तर पर उनका उचित कार्य करना एक अनिवार्य आवश्यकता है। कुशल और प्रभावी सेवा वितरण, पहुंच को सुनिश्चित करने के लिए नागरिकों के प्रति स्थानीय निकायों की जवाबदेही में सुधार लाने की तत्काल आवश्यकता है। ऐसी जवाबदेही को निम्नलिखित के माध्यम से बढ़ाया जा सकता है:

- कार्यों का उचित प्रत्यायोजन;
- लोक शिकायतों के निवारण के लिए इन हाउस (संस्थानिक) तंत्र;
- प्रशासनिक प्रणाली में अधिक पारदर्शिता; तथा
- पंचायती राज संस्थाओं में जवाबदेही और पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए स्थानीय स्वशासन के सभी स्तरों पर सामाजिक ऑडिट की प्रभावी प्रणाली।

इस संबंध में, प्रत्येक ग्राम पंचायत स्तर पर एक कॉमन सर्विस सेंटर स्थापित करने से संधारणीय ग्रामीण उद्यमिता का सृजन और शासन को पुनर्परिभाषित करने में योगदान मिलेगा; और भारत डिजिटल और सामाजिक रूप से सशक्त समाज में परिवर्तित होगा। पंचायती राज मंत्रालय का प्रयास राज्य सरकार, पंचायती राज संस्थाओं और नागरिकों के संयुक्त प्रयासों के आधार पर ग्रामीण जनता को डिजिटल रूप से सशक्त बनाएगा। इस प्रकार, आधारभूत स्तर पर प्रभावी योजना और शासन को बढ़ावा देने के लिए लोगों को डिजिटल अनुकूल और पंचायतों को तकनीकी रूप से जागरूक बनाने के लिए निरंतर प्रयासों; और स्वशासन की संस्थाओं के रूप में पंचायती राज संस्थाओं को मज़बूत करने की आवश्यकता है।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी: i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थानों का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) पंचायती राज संस्थाओं की प्रशासनिक संरचना की व्याख्या कीजिए.

....

....

....

....

....

....

2) पंचायती राज संस्थाओं के विभिन्न वित्तीय संसाधन क्या हैं? क्या वे इनके कार्य करने के लिए पर्याप्त हैं?

....

....

....

....

3) पंचायती राज प्रणाली के कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन कीजिए।

....

....

....

....

12.9 निष्कर्ष

देश में पंचायती राज की घोषणा सामाजिक क्रांति के रूप में की गई थी। देश में इसकी स्थापना बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर की गई थी। इस इकाई में बलवंत राय मेहता समिति, अशोक मेहता समिति और तिहत्तरवें संविधान संशोधन पर बल दिया गया है। ये संस्थाएँ वर्षों से मरनासन्न अवस्था में थीं। तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 से पंचायतों को सांविधानिक हैसियत दी गई है। इसके अलावा, पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका, प्रशासनिक संरचना और वित्तीय संसाधनों की भूमिका का वर्णन किया गया है। फिर भी, प्रसन्न्ता की बात यह है कि लोकतंत्र को सुदृढ़ करने के लिए पंचायती राज की आवश्यकता और महत्व को महसूस किया गया है। यह कहा जा सकता है कि हालाँकि अधिकांशतः राज्यों में से, किसी ने राज्यों से पंचायतों तक पूर्ण हस्तांतरण हासिल नहीं किया, लेकिन 73वें संवैधानिक संशोधन ने इन संस्थाओं में कमज़ोर समूहों और महिलाओं के लिए सातत्य और स्थान प्रदान किया है। अध्ययनों से पता चला है कि ये संस्थाएँ अधिकांश राज्यों में प्रभावी प्रदर्शन नहीं कर सकीं। यहां तक कि राज्यों ने भी ग्रामीण स्वशासन के रूप में पंचायतों को मज़बूत करने के लिए अपने कर्तव्यों का पालन नहीं किया। इस संदर्भ में, केंद्र सरकार और राज्य सरकारों को संयुक्त प्रयासों के माध्यम से स्वशासन की संस्थाओं को मज़बूत करने के लिए नागरिकों, प्रशासकों, राजनीतिक नेताओं और नागरिक समाज को प्रभावी रूप से योगदान देने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, निधि का उचित हस्तांतरण सार्वजनिक सेवाओं के वितरण में प्रभावशीलता, जवाबदेही और दक्षता लाएगा। ग्राम पंचायत और ग्राम सभा पर राज्य सरकार का विश्वास; और निधि के उचित उपयोग से संधारणीय विकास लक्ष्यों और सर्वांगीण विकास की प्राप्ति होगी।

12.10 शब्दावली

राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्त : भारतीय संविधान के भाग-IV में ये सिद्धान्त दिए गए हैं। वे नागरिकों के प्रति राज्य के दायित्व हैं। यद्यपि इन्हें न्यायालय द्वारा लागू नहीं किया जा सकता है, फिर भी कानून बनाते समय राज्य से इन सिद्धान्तों के अनुप्रयोग की आशा की जाती है।

ग्राम सभा : यह ग्राम स्तर पर, निम्नतम प्रशासनिक निकाय है। इसमें उस क्षेत्र के रहने वाले वयस्क सदस्य होते हैं।

आवधिक लेखा परीक्षा : नियमित अंतराल पर पंचायती राज निकायों के लेखा/खाता की जांच यह सुनिश्चित करने के लिए की जाती है कि धन केवल उन्हीं प्रयोजनों पर व्यय किया गया है, और यह उचित ढंग से उसी प्रयोजन के लिए खर्च किया गया है, जिसके लिए माँगा गया था।

12.11 संदर्भ लेख

Alok, V.N. (July 2018). *Strengthening of Panchayats through Devoltion. Kurukshetra: A Journal of Rural Development.* 66 (9), pp. 45-46.

Arora, R. K. (1999). *Indian Administration: Perceptions and Perspectives.* Jaipur: Aalekh Publishers.

Arora, R. K. and Goyal, R. (2013). *Indian Public Administration: Institutions and Issues.* New Delhi, India: New Age International Publishers.

Bhattacharya, M. (2000). *Indian Administration: Structure, Process and Behaviour.* Kolkata: World Press.

Choudhury, R.C. & Rajakutty, S. (Eds.) (1998). *Fifty Years of Rural Development in India: Retrospect and Prospect.* Volume I & II. Hyderabad : National Institute of Rural Development.

Government of India. (2007). Second Administrative Reforms Commission (Sixth Report). *Local Governance: An inspiring journey into the future.* Retrieved from https://darpg.gov.in/sites/default/files/local_governance6.pdf

Government of Tamil Nadu, Rural Development & Panchayat Raj Department*, Panchayati Raj: Funds Release to Rural Local Bodies.* Retrieved from https://tnrd.gov.in/fundsrelease.htm

Jha, S.N. & Mathur, P.C. (1999). *Decentralization and Local Politics (eds.),* New Delhi: Sage Publications.

Maheshwari, S.R. (2001). *Indian Administration,* New Delhi: Orient Blackswan Pvt. Ltd.

Mishra, S.N, Mishra, A.D. & Mishra, S. (2003). *Public Governance and Decentralisation* (Eds.). New Delhi: Mittal Publications.

Nandini, D. (2005). *Relationship between Political Leaders and Administrators.* New Delhi: Uppal Publishing House.

The Constitution of India. Retrieved from https://www.india.gov.in/my-government/constitution-india/constitution-india-full-text

12.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - भारत में पंचायती राज की त्रिस्तरीय संरचना का आधार बलवंत राय मेहता दल की सिफारिशें थीं।
   - गाँव से बड़े और ज़िले से छोटे क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के साथ नए स्थानीय निकाय का निर्माण।
   - समिति ने खंड के निर्णय का सुझाव दिया जो उन कार्यों को करेगा जिन्हें ग्राम पंचायत नहीं कर सकती है, और इससे विकास कार्यों के प्रति वहाँ के निवासियों में रुचि पैदा होगी तथा उनकी सेवा भी उपलब्ध होगी। उसने प्रत्येक खंड के लिए, पंचायत समिति बनाने की सिफारिश की।
   - ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और ज़िला परिषद् होने चाहिए।
   - कार्यकारी और विचारशील कार्यों को अलग-अलग करना।
2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - पंचायती राज संरचना में ग्राम पंचायत बुनियादी इकाई है। अधिकांश राज्यों में, इसे नागरिक और विकासात्मक, दोनों कार्य सौंपे गए हैं। ग्राम पंचायत का मुखिया सरपंच होता है। यह प्रतिनिधिक और निर्वाचित निकाय है, जिसमें प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदस्य होते हैं।
   - खंड स्तर पर पंचायत समिति है, जो एक महत्वपूर्ण इकाई है। इसे योजना और विकास कार्य सौंपे गए हैं। समिति के सदस्य, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष. दोनों तरीकों से चुने जाते हैं।
   - ज़िला स्तर पर ज़िला परिषद् स्थापित की गई है, इन्हें पर्यवेक्षी और समन्वय कार्य सौंपे गए हैं।
3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - भाग 12.5 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - पंचायती राज संस्थाओं में दो श्रेणियों के कार्मिकों की उपस्थिति।
   - पहली श्रेणी में पंचायती राज के नियंत्रणाधीन नियुक्त राज्य संवर्ग के अधिकारी आते हैं। इनमें राज्य स्तर के विभागों से सामान्यज्ञ अधिकारी जैसे खंड विकास अधिकारी, तथा अन्य तकनीकी अधिकारी शामिल हैं।
   - दूसरी श्रेणी में वे कर्मचारी आते हैं जो पृथक पंचायती राज संवर्ग के होते हैं। ये ज़िला स्तर पर नियुक्त स्थानीय संवर्ग के अधिकारी होते हैं, जो पंचायती राज संस्थाओं के कर्मचारी माने जाते हैं। इस श्रेणी में, ग्राम सेवक, स्कूल शिक्षक आदि आते हैं।
2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - भाग 12.7 देखिए।
3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिएः
   - भाग 12.8 देखिए।

इकाई 13 नगरपालिका प्रशासन*

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 भारत में शहरीकरण

13.3 चौहत्तरवां संविधान संशोधन

13.4 शहरी स्थानीय स्वशासन

13.5 शहरी विकास प्राधिकरण

13.6 प्रशासनिक ढाँचा

13.7 वित्त

13.8 मूल्यांकन

13.9 निष्कर्ष

13.10 शब्दावली

13.11 संदर्भ लेख

13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आपः

- भारत में शहरीकरण की प्रवृत्तियों का वर्णन कर सकेंगे;
- भारत में नगरपालिकाओं के गठन और संरचना की चर्चा कर सकेंगे;
- राजनीतिक कार्यकारियों और आयुक्तों की भूमिका का विवेचन कर सकेंगे;
- नगरपालिका कार्मिकों की स्थिति उजागर कर सकेंगे; तथा
- नगरपालिका प्रशासन के वित्तीय संसाधनों की पर्याप्तता की जाँच कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

विकासशील देशों में औपनिवेशिक सरकारों ने अपने शासन काल में अनेकों वैधानिक संस्थाओं की स्थापना की जिनमें शहरी स्थानीय स्वशासन संस्थाएँ प्रमुख हैं। आज से चार शताब्दी पूर्व जब मद्रास (चेन्नई) नगर निगम की स्थापना की गई, तब से लेकर अब तक शहर और नगर के प्रबंधन के लिए नगरपालिका निकायों की स्थापना में विशेष रूप से वृद्धि हुई है। लॉर्ड रिपन के 1882 के प्रस्ताव ने इन शहरी स्थानीय सरकारी संस्थाओं को ठोस संगठनात्मक आधार दिया। तब से ही वे, शहर के प्रशासन में सफलता के साथ कार्य कर रही हैं। इस इकाई में, हम भारत में शहरीकरण की

---

*यह इकाई बी.पी.ए.ई-102, भारतीय प्रशासन, खंड-4, इकाई-19 का अनुकूलित रूप है।

प्रकृति, शहरी स्थानीय निकायों के विभिन्न प्रकारों, प्रशासनिक ढाँचा, नगरपालिका संबंधी वित्त, और 74वें संविधान संशोधन के प्रभाव और सेवा वितरण में नगरपालिकाओं की प्रभावशीलता पर चर्चा करेंगे।

13.2 भारत में शहरीकरण

शहरी क्षेत्र वह है, जो नगरपालिका निकाय के उस क्षेत्र में निश्चित विधायन द्वारा अधिसूचित क्षेत्र या छावनी में सांविधानिक स्थापना के माध्यम से ऐसा घोषित किया गया है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न राज्यों में नगरपालिका अधिनियम हैं, जिनके अधीन विनिर्दिष्ट क्षेत्र में राज्य सरकारों द्वारा नगरपालिका निकाय स्थापित किए जाते हैं। छावनी क्षेत्र केन्द्रीय विधायन द्वारा शासित होते हैं। अन्य क्षेत्र भी हो सकते हैं, जिन्हें जनगणना अधिकारियों द्वारा "शहरी" घोषित किया जा सकता है।

शहरी जनसंख्या जो उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में 3 प्रतिशत के आसपास थी, बीसवीं शताब्दी के आरंभ में यह बढ़कर 10 प्रतिशत हो गई। सन् 1901 और 1921 की अवधि में शहरी जनसंख्या में बहुत कम बढोत्तरी हुई अर्थात 2 करोड़ 56 लाख से बढ़कर केवल 2 करोड़ 76 लाख हो गई। 1921 और 1941 के बीच शहरी जनसंख्या 4 करोड़ 35 लाख हो गई। परन्तु 1941 के बाद के वर्षों में देश की शहरी जनसंख्या वृद्धि दर और बढ़ गई, जिससे शहरी आबादी में काफी वृद्धि हुई। 1981 के बाद देश की शहरी आबादी में बहुत अधिक वृद्धि हुई। 1961 में शहरी जनसंख्या 7 करोड़ 75 लाख थी, परन्तु यही जनसंख्या सन् 1981 में 10 करोड़ 96 लाख हो गई, जो दुगुनी से भी अधिक थी। यह शहरी जनसंख्या भारत की कुल जनसंख्या का 23.7 प्रतिशत है। जनगणना आकलन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत की जनसंख्या लगातार बढ़ रही है। 1971 में कुल शहरी जनसंख्या 10 करोड़ 91 लाख थी जो बढ़कर 1981 में 15 करोड़ 94 लाख 60 हज़ार हो गई और 1991 में 21 करोड़ 80 लाख हो गई। सन् 1971 से 1981 की अवधि में देश की शहरी जनसंख्या औसत वार्षिक दर 3.87 प्रतिशत के हिसाब से बढ़ी, जबकि इसकी तुलना में ग्रामीण जनसंख्या की वृद्धि दर 1.78 प्रतिशत से बढ़ी। 1991 की जनगणना में देश की कुल शहरी आबादी 21 करोड़ 71 लाख 80 हज़ार थी और 1981-91 के बीच औसत वार्षिक वृद्धि दर 3.09 प्रतिशत थी। 1988 और 2001 के अनुमानों के अनुसार भारत की शहरी आबादी लगभग दुगुनी होनी चाहिए और 2001 से 2021 तक यह फिर दुगुनी होने की संभावना है, जिसमें 60 करोड़ से अधिक शहरी आबादी शामिल होगी।

1 सितंबर 2020 को भारत की जनसंख्या 1,382,271,004 रिकार्ड की गई। आंकड़ों से संकेत मिलता है कि 65 प्रतिशत व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रों में और शेष 35 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों में दर्ज किए गए (India Population, live, *worldometers.info*)। शहरी जनसंख्या वृद्धि को, सामान्य आर्थिक विकास का एक संकेतक माना जाता है। दिल्ली भारत में सबसे अधिक शहरीकृत राज्य है, जहाँ उसकी आबादी की 97 प्रतिशत जनसंख्या शहरी है (top 10 urbanised states of India, Census 2011.co.in)। अन्य प्रमुख राज्यों में, सबसे अधिक शहरीकृत तमिलनाडु 48.4 प्रतिशत शहरी आबादी वाला है। महाराष्ट्र में अधिकतम शहरी आबादी है, लेकिन 45.2 प्रतिशत शहरी आबादी के साथ वह तीसरा सबसे अधिक शहरीकृत राज्य है। केरल 47.7 प्रतिशत शहरी आबादी वाला, दूसरा सबसे अधिक शहरीकृत राज्य है। हिमाचल प्रदेश में कम से कम शहरीकृत (अधिकांश ग्रामीण) 10 प्रतिशत राज्य हैं, उसके बाद बिहार (11.3 प्रतिशत),

असम (14.1 प्रतिशत) और उड़ीसा, अब ओडिशा (16.7 प्रतिशत) है (Ministry of Housing and Urban Affairs, Level of Urbanisation, http:// mohua.gov.in)।

भारत में रोज़गार के अवसरों की कमी के कारण, बहुत बड़ी ग्रामीण आबादी पार प्रवासन करती है, जिसे सामान्य रूप में शहरीकरण के 'दबाव' कारक के नाम से जाना जाता है। साधारणतया प्रवासी बड़े शहरों में बसना पसन्द करते हैं। इसके परिणामस्वरूप वहाँ जनसंख्या बढ़ती रहती है, और वहाँ का योजनाबद्ध आधारभूत विकास, सड़कों, जल आपूर्ति, आवासन, जल और मल निकास, परिवहन सुविधाओं से कोई तालमेल नहीं होता है। बढ़ती हुई जनसंख्या के सामने सब छोटे दिखाई देते हैं। कोलकत्ता, मुम्बई, दिल्ली आदि जैसे हमारे बड़े शहरों में स्लम जनसंख्या बहुत अधिक है, और आवश्यक नागरिक सेवाओं और सुविधाओं की इन शहरों में भारी कमी है।

यह धारणा रही है कि भारत अत्यधिक शहरीकृत राज्य बन गया है, क्योंकि कुछ वर्षों में इसकी जनसंख्या में भारी वृद्धि हुई है। यह धारणा इस आधार पर प्रस्तुत की गई है कि औद्योगीकरण और शहरीकरण के स्तरों के बीच कोई तालमेल नहीं है। शहरीकरण की प्रक्रिया बहुत मँहगी है, और आर्थिक विकास पर अतिक्रमण है। राज्य में बुनियादी सुविधाओं की स्थिति खराब है, और बढ़ते शहरी दबाव को सहन करने की स्थिति में नहीं है।

13.3 चौहत्तरवां संविधान संशोधन

दो संविधान संशोधनों से नगरपालिका और पंचायती राज संस्थाओं दोनों के लिए दूरगामी परिवर्तन की स्थिति उत्पन्न हुई। तिहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 पंचायती राज के लिए, और चौहत्तरवां/74वां संविधान संशोधन अधिनियम नगर निकायों के लिए था।

अब भारत का संविधान, शहरी स्वशासन के तीन प्रकार की संस्थाओं की व्यवस्था करता है। ये हैं: बड़े शहरी क्षेत्रों में नगर निगम, शहरी बस्तियों में नगरपालिका परिषद् और उन माध्यमिक क्षेत्रों में नगर पंचायतें, जो न तो पूरी तरह से शहरी हैं और न पूरी तरह से ग्रामीण। इसके अतिरिक्त, यह ऐसी नगरपालिकाओं के क्षेत्रों में वार्ड समिति बनाकर नगर प्रशासन के विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था प्रदान करता है, जहाँ तीन लाख से अधिक जनसंख्या है।

गठन

नगरपालिका प्राधिकरण निम्नलिखित से गठित किए जाने चाहिए:

- निर्वाचित प्रतिनिधि, जो भिन्न-भिन्न निर्वाचक वार्ड से निर्वाचित हों;
- राज्य के लोक सभा और विधान सभा के वे सदस्य, जो उन निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हों, जो पूर्णतः या अंशतः नगरपालिका क्षेत्र के अधीन आते हों; राज्य सभा और राज्य विधान परिषद् के वे सदस्य जो नगरपालिका क्षेत्र के अंतर्गत निर्वाचक के रूप में पंजीकृत किए गए हों;
- नगरपालिका प्राधिकरणों की समितियों के अध्यक्ष, और
- वे व्यक्ति, जो नगरपालिका प्रशासन (मताधिकार बिना) का विशेष ज्ञान या अनुभव रखते हों।

वार्ड समितियों में क्षेत्र के वार्डों का प्रतिनिधित्व करने वाले नगरपालिका परिषद् के सदस्य, और वार्डों से निर्वाचित प्रतिनिधियों में से एक को अध्यक्ष नियुक्त किया जाएगा। परन्तु, गठन में, राज्य सरकार को गठन के लिए निर्णय करने का विवेकाधिकार प्राप्त है।

संविधान संशोधन का एक अन्य महत्वपूर्ण प्रावधान नगरपालिका प्राधिकरणों से संबंधित है, वह है अस्तित्व का अधिकार। यह नगरपालिकाओं को पाँच वर्ष का कार्यकाल देता है, और यदि उन्हें भंग करना आवश्यक हो जाता है तो उन्हें सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए। भले ही, उन्हें किसी भी अनियमितता के कारण भंग किया जाता है तो छः महीने के भीतर नए चुनाव कराए जाने चाहिए। यह लम्बी बर्खास्तगी या वर्षों तक की घटना को रोकता है।

संविधान संशोधन में, समाज के कमज़ोर वर्गों और महिलाओं की दशा सुधारने के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं। अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के साथ-साथ महिलाओं को शक्ति प्रदान करने के लिए परिषद् में उनके लिए सीटों को आरक्षित किया गया है। इन आरक्षणों के अतिरिक्त, संविधान संशोधन में एक महत्वपूर्ण प्रावधान यह किया गया है कि महिलाओं के लिए कुल सीटों में से एक-तिहाई सीटें आरक्षित की गई हैं।

नगरपालिका चुनावों को राज्य सरकार के सीधे नियंत्रण से बाहर रखने के लिए, और नगर निकायों के लिए निष्पक्ष चुनावों को सुनिश्चित करने के लिए राज्य निर्वाचन आयोग की व्यवस्था की गई है (पंचायत चुनावों के लिए भी), जिसमें राज्यपाल द्वारा नियुक्त किए जाने वाला निर्वाचन आयुक्त होता है।

वित्तीय क्षेत्र में चौहत्तरवें संविधान संशोधन की सबसे अधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि प्रत्येक पाँच वर्ष में एक बार राज्य सरकार द्वारा वित्त आयोग का गठन करना अनिवार्य है। राज्य वित्त आयोग को राज्य करों, शुल्क आदि का राज्य सरकार और नगरपालिकाओं के बीच वितरण करने; और नगरपालिकाओं में भी उसके वितरण करने के सिद्धान्तों की सिफारिश करनी होगी। आयोग को उन्हें सौंपे जाने वाले करों और शुल्क के निर्धारण के लिए, और राज्य की संचित निधि से नगरपालिकाओं को दिए जाने वाले सहायता अनुदान के सिद्धान्तों का सुझाव भी देना होगा। उसे नगरपालिका प्राधिकरणों की वित्तीय स्थिति सुधारने के उपायों का सुझाव देने का भी अधिकार है।

इसके अतिरिक्त, नगरपालिकाओं की योजनेत्तर फंड की आवश्यकताओं पर अब केन्द्रीय वित्त आयोग द्वारा भी विचार किया जाएगा। यह ऐसा संशोधन है, जिसका दूरगामी महत्व है।

संविधान संशोधन में जिले की नगरपालिकाओं और पंचायतों द्वारा बनाई गई योजनाओं को समेकित करने; तथा समग्र रूप में जिले की विकास योजना का मसौदा तैयार करने के लिए जिला योजना समिति गठित करने का प्रावधान है। नगरपालिकाओं को इसमें प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। इस प्रकार तैयार की गई योजनाएँ समिति के अध्यक्ष द्वारा राज्य सरकार को भेजनी होगी। इसी प्रकार महानगर योजना समितियाँ उन महानगर क्षेत्रों में स्थापित की जाएंगी, जिनमें नगरपालिकाओं को प्रतिनिधित्व दिया जाएगा।

चौहत्तरवां संविधान संशोधन युगांतकारी विधायन है, पहली बार यह नगरपालिका सरकार को सांविधानिक दर्जा देता है, और स्थानीय परिषदों में अधिक व्यापक सामाजिक भागीदारी, सिविक विकास में लोगों की सहभागिता, बारहवीं अनुसूची का

समावेश कर प्रकार्यात्मक क्षेत्र की वृद्धि, नियमित चुनावों के माध्यम से निरंतरता और उच्च स्तर की सरकार से नियमित निधि प्रवाह प्रदान करता है। दूसरा, अन्य महत्वपूर्ण आयाम, जिला योजना समिति द्वारा समन्वय की गई माइक्रो स्तर योजना को सांविधानिक मान्यता है। ये संशोधन के उज्ज्वल पहलू हैं।

वहां, हालाँकि, धुंधला क्षेत्र भी है। इसने कार्यों और स्थानीय राजस्व के स्रोतों को निर्दिष्ट करने के लिए अवसर खो दिया है। इससे इन क्षेत्रों में, राज्य के अतिक्रमण को रोका जा सकता था।

13.4 शहरी स्थानीय स्वशासन

चौहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के पश्चात् भारत में शहरी स्वशासन को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है – नगर निगम, नगरपालिका परिषदें और नगर पंचायतें। हम कोलकत्ता नगर निगम, दिल्ली नगर निगम और हमारे बड़े शहरों में इसी प्रकार के अन्य निगमों के नामों से परिचित हैं। छोटे और मझोले शहरों में नगरपालिका परिषदें हैं, जिन्हें कभी-कभी म्युनिसिपल बोर्ड या नगरपालिका परिषदें कहा जाता था। जहाँ क्षेत्र न तो पूरी तरह से शहर हैं और न ही पूरी तरह से गाँव हैं, और औद्योगीकरण या बड़ी विकास परियोजनाओं के कारण शहरीकरण की प्रक्रिया से गुज़र रहा है तो वहीं अंतरिम उपाय के रूप में अधिसूचित क्षेत्र समिति (नोटिफाइड एरिया कमेटी) या नगर समिति (टाउन कमेटी) स्थापित की जाती थी। चौहत्तरवें संविधान संशोधन के अधीन इस प्रकार के 'अंतर्वर्ती' क्षेत्रों में नगर पंचायतें स्थापित की जाएँगी। वास्तव में, शहरी क्षेत्र के लिए उसके आकार को ध्यान में रखे बिना, नागरिक सेवाओं और सुविधाओं, जैसे जल आपूर्ति, कूड़ा-कचरा निकास, सड़कों का निर्माण और रखरखाव की व्यवस्था के लिए स्थानीय सरकार की आवश्यकता होती है। ये कुछ महत्वपूर्ण सेवाएँ हैं, जिन्हें क्षेत्र में नागरिक जीवन बनाए रखने के लिए शहरी सरकार को देनी पड़ती हैं। क्षेत्र के आकार के अनुसार ये सेवाएँ नगर निगम, नगरपालिका परिषद् और नगर पंचायत प्रदान करती हैं।

i) नगर निगम

शहर में नागरिकों से संबंधित मामलों का प्रशासन चुनौतीपूर्ण होता है। शहर की सबसे सुस्पष्ट विशेषता यह है कि यहाँ एक सीमित क्षेत्र में विशाल जनसंख्या का केन्द्रीकरण होता है। इसलिए नागरिक सेवाओं के प्रबंधन के लिए प्रभावशाली संगठनात्मक संरचना, समुचित वित्त और दक्ष कार्मिकों की आवश्यकता होती है। भारत में शहर की सरकार के रूप में, नगर निगम स्थानीय प्राधिकरणों में सर्वश्रेष्ठ स्थान रखती है। आम तौर पर नगर निगम बड़े नगरों में ही बनाए जाते हैं, जैसे कि मुम्बई, दिल्ली, कोलकत्ता, चेन्नई, हैदराबाद इत्यादि।

नगर निगम की स्थापना विशेष कानून के अंतर्गत की जाती है, जिसे राज्य विधान–मंडल पारित करता है। संघ शासित प्रदेशों में, संसद द्वारा पारित कानून के द्वारा इनकी स्थापना की जाती है। राज्य में ऐसे कानून किसी विशेष निगम अथवा सभी निगमों के लिए बनाए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, बम्बई और कोलकत्ता के निगमों की स्थापना अलग कानूनों के अंतर्गत की गई थी जबकि उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में, राज्य स्तर के कानूनों से ही निगमों का गठन और उनके कार्यों को नियंत्रित किया जाता रहा है। आम तौर पर, नगर निगम अन्य स्थानीय शासन निकायों

से अधिक स्वायत्त होता है। प्रायः सभी राज्यों में नगर निगम अनेक कार्य करता है जैसे– पीने का पानी, बिजली, मार्ग, यातायात सेवाएँ, स्वास्थ्य, शिक्षा, जन्म और मृत्यु का पंजीकरण, जल-निकास, सार्वजनिक उद्यानों, बगीचों, पुस्तकालयों की व्यवस्था इत्यादि। इन कार्यों को आमतौर पर अनिवार्य और विवेकाधीन के रूप मे विभाजित किया जाता है।

हरियाणा में, 10 नगर निगम हैं। क्षेत्र के संचालन के लिए, नगर निगम का गठन किया जाता है। इसमें निर्वाचित और नामांकित (पदेन) सदस्य होते हैं। राज्य के संशोधित नगरपालिका कानून के तहत, नगरपालिका निकायों के चुनाव हर पांच साल में होने चाहिए, जब तक कि एक नगरपालिका निकाय पहले भंग न हो जाए। पहले, हरियाणा में महापौर/मेयर का चुनाव निगम के सदस्य अपने बीच में से करते थे। अब, पहली बार, दिसंबर 2018 में, मतदाताओं ने सीधे मेयर का चुनाव किया। इस संदर्भ में, हिसार, रोहतक, यमुनानगर, पानीपत और करनाल में प्रत्यक्ष चुनाव में मेयर मतदाताओं द्वारा चुने गए।

महापौर/मेयर

नगर के महत्व को ध्यान में रखते हुए, नगर का प्रमुख नागरिक महापौर कहलाता है, जो एक राजनीतिक अध्यक्ष होता है। वह निगम की बैठकों की अध्यक्षता करता है, तथा प्रायः कुछ सीमा तक नगर निगम के कार्यों पर प्रशासनिक नियंत्रण रखता है। भारत में सामान्य पैटर्न यह था कि परिषद् महापौर का चुनाव करती थी। मुंबई नगर निगम के महापौर का चुनाव, चुनाव की तारीख से 2.5 वर्ष के लिए, पार्षदों द्वारा किया जाता है। आम तौर पर, महापौर औपचारिक प्रमुख होते हैं। ग्रामीण-शहरी संबंध समिति ने महापौर के लिए सत्ता में किसी भी प्रकार की वृद्धि का पक्ष नहीं लिया। यदि आंध्र प्रदेश की तरह समूचे नगर में महापौर का चुनाव सीधे ही मतदाताओं द्वारा पाँच वर्ष की अवधि के लिए किया जाएगा तो महापौर को उसके औपचारिक कार्यों के साथ एक प्रमुख के रूप में रखने की पुरानी प्रथा पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता पड़ेगी। हालांकि, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, ओडिशा, उत्तराखंड आदि में महापौर सीधे मतदाताओं द्वारा चुने जाते हैं, इस प्रकार, नगर निगम की कार्यकारी शक्तियाँ धारण करते हैं; इस शक्ति की डिग्री एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न होती है।

आयुक्त

आयुक्त के पद की स्थापना पहली बार 1888 में की गई थी। यह इस सिद्धान्त पर आधारित था कि नगरों में नीति-निर्धारण तथा नीतियों के कार्यान्वयन का कार्य अलग किया जाए। बाद में 1909 में, विकेन्द्रीकरण आयोग ने भी इसकी सिफारिश की। निगमायुक्त निगम प्रमुख कार्यकारी अधिकारी होता है। उस पर नगर के प्रशासन तथा परिषद् द्वारा निर्धारित नीतियों को लागू करने की ज़िम्मेदारी होती है। आयुक्त की नियुक्ति राज्य सरकार के द्वारा की जाती है। सामान्यतः यह भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ अधिकारी होता है। आयुक्त प्रशासनिक और वित्तीय क्षेत्र संबंधी व्यापक कार्य करता है। वह निगम और समितियों की बैठकों में भाग लेता है तथा पार्षदों द्वारा उठाए गए प्रश्नों का उत्तर देता है। वह सरकार और निगम के बीच कड़ी का कार्य करता है। उसके पास नियुक्ति तथा अनुशासन; और साथ में कार्मिकों पर पर्यवेक्षण और नियंत्रण संबंधी व्यापक शक्तियाँ होती हैं। वह वित्तीय संबंधी शक्तियों का भी प्रयोग करता है। उसके पास विवेकाधिकार और आपातकालीन शक्तियाँ भी होती है। इन सभी क्षेत्रों में एक नगर निगम से दूसरे नगर निगम में भिन्नताएँ देखने को मिलती हैं।

ii) नगरपालिका परिषद्

देश में प्रत्येक राज्य ने राज्य में नगरपालिकाओं के कार्य, ढाँचा, संसाधन और नागरिक प्रशासन में उनकी भूमिका विनिर्दिष्ट करते हुए उनके गठन के लिए कानून बनाए हैं।

छोटे शहरी क्षेत्र नगरपालिका परिषद् नाम की निर्वाचित नगर निकाय द्वारा शासित होते हैं। 3 लाख की जनसंख्या वाले किसी भी नगरपालिका क्षेत्र को, क्षेत्र के शासन में लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए वार्ड समिति बनानी चाहिए।

वार्ड समितियाँ

वार्ड समितियाँ शहर के शासन में नागरिकों की सहभागिता प्रदान करती हैं, और नगरपालिका शासन को लोगों के अधिक निकट लाती हैं। इस संबंध में, अनुच्छेद 243 में उन सभी नगरपालिकाओं में वार्ड समितियों के गठन का प्रावधान है, जिनकी जनसंख्या 3 लाख है। इस संदर्भ में, वार्ड समिति बनाने के लिए दो या अधिक वार्डों को मिलाया जा सकता है। इसका गठन, क्षेत्राधिकार और वह तरीका जिससे वार्ड समिति की सीटें भरी जानी चाहिए, राज्य विधान–मंडल पर छोड़ा गया है।

iii) नगर पंचायत

वे शहरी क्षेत्र जो परिवर्तन के दौर से गुज़र रहे हैं नगर पंचायत द्वारा शासित होते हैं, जिसके सदस्य उस क्षेत्र के निवासी नागरिकों द्वारा चुने जाते हैं।

नगरपालिकाओं का गठन

नगरपालिकाओं की सदस्यता में पार्षदों की दो श्रेणियाँ, अर्थात् प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित और मनोनीत होते हैं। निर्वाचित पार्षदों की संख्या नगर निगम, नगरपालिका परिषद् या नगर पंचायत के क्षेत्र की जनसंख्या के आकार के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। मनोनीत सदस्यों के मामले में, राज्य के कानून को ऐसे प्रतिनिधियों के मनोनयन की शर्तें और प्रक्रियाओं को विनिर्दिष्ट करना आवश्यक होता है। मनोनीत सदस्यों में, लोक सभा और राज्य की विधान सभा का वह सदस्य जो उस निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है, जो पूर्णतः या अंशतः नगरपालिका क्षेत्र के तहत आता है; राज्य सभा और राज्य की विधान परिषद् के सदस्य जो नगरपालिका क्षेत्र में निर्वाचक के रूप में पंजीकृत हैं; नगरपालिका प्राधिकरणों के अध्यक्ष; और वे व्यक्ति जिन्हें नगरपालिका प्रशासन का विशेष ज्ञान या अनुभव है, परन्तु परिषद् की बैठकों में उन्हें मताधिकार नहीं होता है, वे सभी शामिल हैं। बाद के उप-भाग में, हम पश्चिम बंगाल में मेयर-इन-काउंसिल सिस्टम का वर्णन करेंगे।

मेयर-इन-काउंसिल प्रणाली

जब वर्ष 1977 में, पश्चिम बंगाल में वामपंथी सरकार सत्ता में आई, तब नगरपालिका सुधार का कार्य गंभीरता से लिया गया। विधान–मंडल में, 1979 में कोलकत्ता नगर निगम के लिए नया विधेयक प्रस्तुत किया गया। इसमें अन्य बातों के अतिरिक्त, नए निगम में राजनीतिक कार्यकारी के रूप में मेयर-इन-काउंसिल की व्यवस्था की गई। कोलकत्ता नगर निगम अधिनियम (1980) के रूप में जाना जाने वाला नया अधिनियम तब से लागू किया गया है।

एक प्रकार से नए अधिनियम में निगम सरकार में राजनीतिक स्कंध के वर्चस्व की पुरानी डोरी ग्रहण करने का प्रयास किया गया है जो 1923 में था, जिसे सुरेन्द्र नाथ बेनर्जी ने "स्वराज" कहा था। कोलकत्ता की नगरपालिका सरकार के नये विधान ने भारत में नगरपालिका सरकार के इतिहास में नया मोड़ ला दिया था। यह परिवर्तन के साथ कदम रखने की राजनीतिक मनोदशा को प्रतिबिम्बित करता है। इसके अतिरिक्त, कोलकत्ता नगर निगम के मुख्य पदाधिकारी जैसे मेयर, डिप्टी मेयर या स्थायी समिति के सदस्य जहाँ तक वे एक वर्ष की अवधि के लिए निर्वाचित हुए, मुश्किल से ही प्रशासन की निरंतरता को सुनिश्चित कर सकते और मामलों को नौकरशाही मशीनरी पर छोड़ देते। इसे स्वशासन समितियों के लोकतंत्रीकरण की प्रवृत्ति की ओर मोड़ना भी आवश्यक है।

कोलकत्ता नगर निगम

कोलकत्ता नगर निगम अधिनियम, 1980 के अधीन तीन नगर प्राधिकरणों की व्यवस्था की गई है, जैसे (क) निगम, (ख) मेयर-इन-काउंसिल, और (ग) मेयर।

निगम ऐसा निकाय है जिसमे निर्वाचित पार्षद, कुछ पौर-मुख्य और कुछ पदेन सदस्य होते हैं। मेयर का चुनाव, निगम के निर्वाचित सदस्यों में से पाँच वर्ष के लिए होता है। उसे विशेष परिस्थितियों में, उसी निकाय द्वारा पद से हटाया जा सकता है। वह उत्तराधिकारी के कार्य ग्रहण करने तक पद पर बना रहता है।

अधिनियम में मंत्रिमंडल की भाँति मेयर-इन-काउंसिल बनाने का प्रावधान है, इसमें मेयर, डिप्टी मेयर और निगम के अधिक से अधिक दस अन्य निर्वाचित सदस्य होते हैं। मेयर, निगम के निर्वाचित सदस्यों में से, उप मेयर और परिषद् के अन्य सदस्यों को मनोनीत करता है। मेयर उन्हें भी हटा सकता है। मेयर-इन-काउंसिल सामूहिक रूप से निगम के प्रति उत्तरदायी होती है।

निगम का सभापति भी होता है। निगम के निर्वाचित सदस्य, अपने में से उसे पाँच वर्ष के लिए चुनते हैं। वह निगम की बैठक बुलाता है, और विधान-मंडल के अध्यक्ष की भांति अध्यक्षता करता है।

उसकी एक ही सांविधिक समिति अर्थात नगर निगम लेखा समिति होती है। इस समिति के अनिवार्य कार्य विधान-मंडल की लोक लेखा समिति के जैसे होते हैं। यह निगम के खातों की जाँच करती है, लेखा परीक्षक द्वारा लेखाओं पर रिपोर्ट की संवीक्षा करती है और प्रतिवर्ष निगम के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करती है।

बोरो समिति

नए अधिनियम की एक अन्य विशेषता बोरो समिति (Borough Committee) के रूप में दूसरे स्तर के प्रशासन की व्यवस्था है। यह अभिकल्पना ऐसी स्थानीय प्रशासनिक इकाइयों का सृजन करने की इच्छा से प्रस्तुत की गई, जिनसे अपनी दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं के लिए नागरिक सुविधा के साथ संपर्क कर सकते हैं।

वार्ड समिति

चौहत्तरवें संविधान संशोधन की अपेक्षिताओं के अनुरूप निगम का प्रशासन आगे अधिक विकेन्द्रीकृत किया गया, बोरो समिति के नीचे तीसरा स्तर बनाया गया, अर्थात् प्रत्येक बोर्ड या निर्वाचन क्षेत्र में वार्ड समिति बनाई गई।

अब आयुक्त निगम का प्रमुख कार्यकारी अधिकारी है। उसे मेयर के पर्यवेक्षण और नियंत्रण में कार्य करना पड़ता है।

सरकार का मेयर-इन-काउंसिल का प्रकार पश्चिम बंगाल के सभी नगर निगमों में लागू किया गया है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणीः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थानों का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) भारत में शहरीकरण की प्रवृत्ति का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

2) चौहत्तरवें संविधान संशोधन की महत्वपूर्ण विशेषताओं की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

3) भारत में शहरी स्थानीय स्वशासन की संरचना की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

13.5 शहरी विकास प्राधिकरण

शहरी विकास बहुत ही जटिल है, और तद्नुसार शहरी क्षेत्रों के विकास की कार्यनीतियाँ भी बहुआयामी हैं। आज के शहरी क्षेत्रों की एक समस्या शहरों के अंदर एवं बाहर किए जा रहे अनियोजित विकास को रोकना है। अनियोजित विकास के कारण जब कई स्थानों पर नगरपालिका क्षेत्र अपनी सीमाओं को पार कर लेता है, तो इन क्षेत्रों और इनके आसपास के क्षेत्रों में जीवन-स्तर में सुधार लाना आवश्यक हो जाता है। लेकिन नगरपालिका एजेंसियाँ क्षेत्राधिकार, कानूनी और वित्तीय सीमाओं के कारण इन समस्याओं का समाधान करने में असमर्थ हैं। इस पर नियंत्रण रखने के लिए केवल दो विकल्प हैं– नगरपालिका की सीमाओं का विस्तार किया जाए; तथा

उन्हें प्रशासनिक और वित्तीय रूप से मज़बूत बनाया जाए; या अधिक शक्ति एवं वित्त सम्पन्न अलग एजेंसी का गठन किया जाए। पाँचवी लोक सभा की आकलन समिति ने शहरों एवं तेज़ी से बढ़ रहे शहरों और मुख्य नगरों के नियोजित विकास के उद्देश्य से एक विकास प्राधिकरण की स्थापना की सिफारिश की। योजना आयोग ने भी पाँचवी पंचवर्षीय योजना के दौरान, शहरी स्थानीय सरकारों में संरचनात्मक नवजागरण की आवश्यकता की ओर संकेत किया। फलस्वरूप, विभिन्न महानगरों एवं अन्य शहरों में शहरी विकास प्राधिकरणों का गठन हुआ। सन् 1957 में, सर्वप्रथम दिल्ली विकास प्राधिकरण की स्थापना की गई। शहरी विकास प्राधिकरणों से उम्मीद की जाती है कि वे महानगरों एवं अन्य बड़े शहरों एवं उनके आसपास के क्षेत्र के विकास के लिए योजना, नियंत्रण एवं विकास कार्यक्रमों का समन्वय कार्य करें। विकास प्राधिकरणों के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

- क्षेत्र के विकास के लिए योजना बनाना, और उसे लागू करना;
- मंडलों के लिए मंडलीय विकास योजनाएँ बनाना, जिसमें विकास क्षेत्र को बाँटा जा सके;
- विभिन्न प्रयोजनों के लिए भूमि के प्रयोग पर नियंत्रण करना, एवं
- विकास कार्य करना, तथा आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराना।

मोटे तौर पर शहरी विकास प्राधिकरणों के पास नियमन, योजना-निर्माण एवं वर्द्धन के कार्य हैं। उन्हें नियमन करना; और शहरों एवं कस्बों में अनियोजित विकास को रोकना है। उन्हें मास्टर एवं ज़ोनल योजना के अनुसार भूमि का उचित एवं नियोजित उपयोग करना है। वे नगरपालिकाओं और निगमों के विकास की गतिविधियों को अनुपूरण करते हैं। इन शहरी विकास प्राधिकरणों को अपने कार्य-निष्पादन में कुछ बाधाओं का सामना भी करना पड़ता है। इनमें विकास प्राधिकरण एवं निगम या नगरपालिका के बीच समन्वय की समस्याएँ, अपर्याप्त संसाधन, तथा पर्याप्त एवं सक्षम तकनीकी कर्मचारियों का अभाव शामिल है।

13.6 प्रशासनिक ढाँचा

सार्वजनिक सेवाओं के प्रभावी प्रबंधन के लिए सक्षम कार्मिकों का होना आवश्यक है। सुयोग्य कार्मिकों की भर्ती में असफलता, को देश में नगरपालिकाओं के प्रति असक्षमता एवं अकार्यकुशलता की छवि के रूप में माना जाने के लिए एक कारण था। भारत में तीन विस्तृत प्रकार की कार्मिक प्रणालियाँ पाई जाती हैं। कभी-कभी उन्हें संयुक्त रूप से ग्रहण किया जाता है। पहला, एकीकृत सेवा जिसमें कार्मिक राज्य सरकारों से नगरपालिकाओं में विनिमय किए जा सकते हैं। इसमें राज्य सरकार और नगरपालिकाओं के समान पद के अधिकारी एक ही सेवा के भाग होते हैं और उन्हें आपस में एक से दूसरे विभाग में स्थानांतरित किया जा सकता है। दूसरी, समरूपी स्थानीय सरकार सेवा है, जिसमें नगरपालिकाओं के सभी या कुछ श्रेणियों के कार्मिक सम्पूर्ण राज्य में एक ही केरिअर सेवा संगठित करते हैं। इस सेवा के कार्मिकों को एक नगरपालिका से दूसरी नगरपालिका में स्थानांतरित किया जा सकता है। इसे राज्य स्तर की एजेंसियों द्वारा व्यवस्थित एवं नियंत्रित किया जाता है। तीसरी, पृथक कार्मिक प्रणाली, जिसमें नगरपालिका कार्मिक भर्ती और प्रशासित करती है। उन्हें स्वतः ही

दूसरी नगरपालिकाओं में स्थानांतरित नहीं किया जा सकता। यह पद्धति अधिकांश पश्चिमी देशों में विद्यमान है।

नगरपालिकाओं में कार्यरत कार्मिक, किसी एक या सभी तीनों श्रेणियों से संबंधित हो सकते हैं। इन तीन कार्मिक पद्धतियों में सुस्पष्ट दोषों के साथ-साथ कुछ गुण भी हैं। एकीकृत पद्धति का मुख्य गुण यह है कि इसमें राज्य एवं स्थानीय सेवाओं में कोई अंतर नहीं है। अतः नगरपालिकाएँ, राज्य सरकार से योग्य अधिकारियों की सेवाओं को ले सकती हैं। लेकिन ये अधिकारी राज्य कॉडर से संबंधित होने के कारण महसूस करते हैं कि वे स्थानीय निकायों से स्वतंत्र हैं, तथा नगरपालिका के साथ कोई पहचान विकसित नहीं करते हैं। एकीकृत पद्धति के अंतर्गत, नगरपालिका कार्यालयों में विशिष्टीकरण के लिए व्यापक स्थान होता है क्योंकि भर्ती विशेष रूप से नगरपालिका निकायों के लिए ही की जाती है। इनका एक नगरपालिका से दूसरी नगरपालिका में स्थानांतरण किया जाता है। इसलिए, वे अनुभव प्राप्त करते हैं। इस पद्धति की यह कहकर आलोचना की जाती है कि इससे इसके अधीन कार्यरत अधिकारियों के ऊपर नियंत्रण कमज़ोर हो जाता है।

यदि पृथक कार्मिक प्रणाली को स्थानीय निकायों की स्वायत्तता की दृष्टि से देखा जाए तो यह आदर्श लगता है। इसमें नगरपालिका, अधिकारियों के ऊपर पूर्ण नियंत्रण रख सकती है। इस पद्धति के अंतर्गत, वितरित आदर्श के लिए कोई जगह नहीं होती जो अधिकारियों एवं नगरपालिकाओं की आपसी पहचान को मज़बूत करती हैं। नगर–पालिका अधिनियम, प्रायः विभिन्न श्रेणियों के कार्मिकों की भर्ती के स्रोत निर्धारित करता है। राज्य सरकारें न केवल नगरपालिका सेवाओं के लिए कॉडर का सृजन करती है बल्कि सेवा शर्तें भी निश्चित करती है। शहरी स्थानीय निकायों में, कार्मिकों के दो अलग-अलग वर्ग हैं। पहला, प्रशासनिक घटक जिसमें आयुक्त, अधिकारी एवं अन्य प्रशासनिक कर्मचारी आते हैं। दूसरा, वर्ग अभियंताओं, स्वास्थ्य अधिकारियों, नगर योजनाकारों, वित्त-अधिकारियों आदि जैसे तकनीकी अधिकारियों का है। नगरपालिका की श्रेणी, आधारभूत स्रोत एवं माँग के आधार पर अधिकारियों की संख्या तथा उनके विशिष्टीकरण के स्तर को निर्धारित किया जाता है। प्रशासनिक एवं तकनीकी अधिकारियों की सहायता करने के लिए सफाई निरीक्षक, कर-निरीक्षक, सहायक, मल-सफाई कार्मिक इत्यादि जैसे– परिचालनात्मक कार्मिकों की बड़ी संख्या में भर्ती की गई है। संसाधनों में कमी के कारण स्थानीय निकाय सक्षम लोगों को आकर्षित करने में असमर्थ हैं। दूसरे विभागों से प्रतिनियुक्ति पर आने वाले कार्मिक खुश होने के बजाय उसे सज़ा मानते हैं। दूसरी समस्या प्रशासनिक अधिकारियों एवं सभापति तथा अन्य पार्षदों के आपसी संबंध से संबंधित हैं। जब तक इनके बीच में सौहार्दपूर्ण संबंध नहीं होते हैं, तब तक सार्वजनिक प्रशासन बुरी तरह से हानि उठाता रहेगा।

13.7 वित्त

शहरी स्थानीय निकायों को अधिनियम में निर्धारित अपने अनिवार्य और स्व-विवेकी कार्यों का उत्तरदायित्व निर्वहन करने के लिए पर्याप्त संसाधनों की आवश्यकता होती है। नगरपालिका प्राधिकरण मुख्यतया अपने ही स्रोतों से आय प्राप्त करते हैं अर्थात कर और ग़ैर-कर स्रोत, जिन्हें राज्य सरकार द्वारा सौंपा गया है और ये नगरपालिका संविधि में उल्लेखित हैं।

नगरपालिका/शहरी स्थानीय निकाय के संबंध में प्राप्तियों को मोटे तौर पर निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है :

- कर राजस्व–सम्पत्ति कर, विज्ञापन पर कर आदि;
- कर-भिन्न–किराया, रॉयल्टी, ब्याज, शुल्क और लाभ/लाभांश, जल, मल–जल निकासी आदि जैसी जनोपयोगी सेवाओं के लिए प्रयोक्ता प्रभार के रूप में आय;
- राज्य सरकार से नगरपालिका को निधियों की सुपुर्दगी;
- विकास योजनाओं के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों से अनुदान; तथा
- उधार (Second Administrative Reforms Commission, https://darpg.gov.in/sites/default/files/local_governance6.pdf, 2007, p.224)।

इस प्रकार से स्थानीय निकायों के संसाधन आंतरिक और बाह्य दोनों स्रोतों से आते हैं। शहरी स्थानीय निकायों के संसाधनों को विस्तृत रूप से समझने के लिए हम बिहार के उदाहरण के आधार पर समझेंगे। बिहार में शहरी स्थानीय निकायों के संसाधन मुख्य रूप से अपने स्वयं के राजस्व, केंद्रीय वित्त आयोग/राज्य वित्त आयोग के हस्तांतरण, और एजेंसी के कार्यों के लिए योजना स्थानान्तरण पर आधारित हैं। शहरी स्थानीय निकायों का स्वयं का राजस्व अखिल भारतीय औसत (यानी कुल राजस्व में 13.2 प्रतिशत बनाम 32 प्रतिशत) से कम है। एक राज्य वित्त आयोग, राज्य और स्थानीय स्वशासन के बीच राजस्व के बंटवारे के साथ-साथ अन्य संबंधित राजकोषीय और शासन मुद्दों की सिफारिश करता है। इस संबंध में, केवल एक उदाहरण को उद्धृत करने के लिए, बिहार के चौथे राज्य वित्त आयोग ने जून 2010 में 2010-2015 की अवधि के लिए अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है। चौथे राज्य वित्त आयोग की मुख्य सिफारिशों मेंः i) राज्य के कर राजस्व का 7.5 प्रतिशत हिस्सा स्थानीय निकायों को दिया जाएगा; ii) न्यागत राशि को पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों के बीच 70:30 प्रतिशत के अनुपात में साझा किया जाना है; iii) शहरी स्थानीय निकायों को प्रतिशत के अनुपात में 30 प्रतिशत हस्तांतरण, शहरी स्थानीय निकायों के बीच इस मापदंड के आधार पर वितरित किया जाना चाहिएः क) जनसंख्या का 60 प्रतिशत भार, ख) क्षेत्र का 20 प्रतिशत भार; और ग) 20 प्रतिशत भार बी.पी.एल. परिवारों की संख्या के लिए, iv) रु 5 करोड़ का प्रति वर्ष समेकित अनुदान, पीएमसी को, रु 1 करोड़ एक वर्ष के लिए नगर निगमों को, रु. 50 करोड़ नगरपालिका परिषदों को और रु. 20 करोड़ नगर पंचायतों के लिए; v) अनुदान पर, पहला शुल्क प्राथमिकता गतिविधियों की लागत में अंतराल को भरने पर होना हैः पानी की आपूर्ति, स्वच्छता, मैनुअल मैला ढोने की समाप्ति, पार्किंग स्थल आदि। दूसरा शुल्क स्थानीय निकाय अधिनियमों में दिए गए कार्य उद्देश्यों के अनुरूप होना चाहिए; vi) शहरी स्थानीय निकायों को अपने स्वयं के संसाधनों को बढ़ाकर, अपनी संपत्ति का लाभदायक उपयोग करके और सार्वजनिक-निजी भागीदारी को अपनाकर वित्तीय रूप से आत्मनिर्भर बनना पडेगा; vii) राज्य सरकार को करों की अधिकतम सीमा को अधिसूचित करना होगा; और viii) नियंत्रक और लेखा परीक्षक द्वारा निर्धारित लेखा प्रारूप और लेखा पुस्तिकाओं का उपयोग करना होगा। राज्य सरकार ने चौथे राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया, लेकिन केवल दिसंबर 2011 में, जिसे ठीक से लागू करने में बहुत देर हो चुकी थी। नतीजतन, सिफारिशों का समय पर कार्यान्वयन संभव नहीं था पाँचवें राज्य वित्त आयोग के अनुसार आइटम IX से XI पैरा 1.5.1 का कार्यान्वयन लंबित है (Final Report for 2015-20 of the Fifth State

Finance Commission, Volume 1, pp.3-4, http://finance.bih.nic.in/ Documents /5th-SFC-Volume-I.pdf)। बिहार के 5 वें राज्य वित्त आयोग का गठन दिसंबर 2013 में किया गया था।

नगरपालिका प्रशासन, राज्य सरकार द्वारा निर्धारित रूप और तरीके से खातों का रखरखाव करता है और लेखा संहिता का पालन करता है। आम तौर पर, लेखांकन राजस्व, बकाया और व्यय के स्रोतों को दर्शाता है। नगर निकायों का ऑडिट, प्री-ऑडिट या पोस्ट-ऑडिट के रूप में संचालित किया गया है।

13.8 मूल्यांकन

शहरी स्थानीय निकाय नगरपालिका अधिनियमों के माध्यम से राज्य सरकार द्वारा सृजित विकेंद्रीकरण के संस्थान हैं। इस संदर्भ में, 74वां संवैधानिक संशोधन शहरी स्थानीय शासन के विकास में एक मील का पत्थर है। एक संघीय ढांचे में, केंद्र, राज्य और स्थानीय स्वशासन के बीच राजकोषीय संबंध हमेशा एक विवादास्पद मुद्दा रहा है। जैसा कि हमने पहले ही इस इकाई में चर्चा की है कि इस संशोधन का मूल उद्देश्य कार्यात्मक और वित्तीय हस्तांतरण के माध्यम से शहरी स्थानीय निकायों को सशक्त बनाना है, लेकिन अध्ययनों ने यह सिद्ध किया है कि स्थानीय निकाय वांछित परिणाम प्राप्त नहीं कर सके, जिससे स्थानीय जीवंत इकाई के रूप में कार्य-निष्पादन प्रभावित हुआ है। उपरोक्त विश्लेषण 73वें और 74वें संविधान संशोधन द्वारा शुरू की गई सशक्तिकरण की पहलों के अपूर्ण एजेंडा की तरफ इंगित करता है। शहरी स्थानीय स्व-शासन की संधारणीय विकास के लिए अक्षत संसाधन आधार प्रमुख आवश्यकताओं में से एक है। इस संबंध में, विभिन्न राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय समितियों और आयोगों ने अल्प-कालिक और दीर्घ-कालिक दोनों तरह के उपायों की सिफारिश की है। हालांकि, कई राज्यों में शहरी स्थानीय निकायों के कार्यों और वित्त के बीच के इस असंतुलन को ठीक करने के लिए गंभीर प्रयास नहीं किए जा रहे हैं। इसलिए, केंद्रीय वित्त आयोग/राज्य वित्त आयोग के स्थानांतरण के बाद भी शेष रह गए संसाधन-अंतर को कम करने के लिए शहरी स्थानीय निकायों को अपने स्वयं के राजस्व (कर और ग़ैर-कर) को बढ़ाने के लिए सभी प्रयास करने होंगे। यहां तक कि, 14वें केंद्रीय वित्त आयोग ने प्रदर्शन अनुदान के लिए अपने स्वयं के राजस्व में सुधार की शर्त रखी है, जो उनकी स्वायत्तता और जवाबदेही को भी बढ़ाएगा। बिहार जैसे राज्यों के मामले में, अखिल भारतीय स्तर की सेवाओं को पूरा करने के लिए, बिहार शहरी स्थानीय निकायों को बड़ी मात्रा में धन की आवश्यकता होगी, जो राज्य के बजट, केंद्रीय वित्त आयोग/राज्य वित्त आयोग के हस्तांतरण या स्वयं के राजस्व के माध्यम से पूरी नहीं की जा सकती। यहां, राज्य में आधारित संरचना और सेवाओं के सृजन के लिए सार्वजनिक – निजी भागीदारी का बड़े पैमाने पर लाभ उठाना आवश्यक कदम होगा। इसके अतिरिक्त, शहरी स्थानीय निकायों द्वारा बाजार में उधार की संभावना भी तलाश करनी चाहिए। यहाँ तक कि वस्तु और सेवा कर (गुड्स एंड सर्विस टैक्स) का प्रभाव स्थानीय निकायों की आय पर प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है क्योंकि चुंगी कर के अपवर्ज़न के कारण उनकी आय में नुकसान हुआ है। इस संबंध में, उनके नुकसान की भरपाई या तो पिग्गी बैक कर के रूप में की जा सकती है या किसी वस्तुनिष्ठ फॉर्मूले के आधार पर मुआवज़े के रूप में की जा सकती है। यह ध्यान देने योग्य है कि राज्य और स्थानीय सरकारों के राजस्व असाइनमेंट और व्यय की ज़िम्मेदारियाँ स्वाभाविक रूप से विषम हैं। इस प्रकार, बराबरी 'हासिल करने और सरकार के तीसरे

स्तर को मज़बूत करने के लिए, प्रत्येक राज्य सरकार को राज्य वित्त आयोग द्वारा समय पर रिपोर्ट प्रस्तुत करने पर निगरानी रखनी होगी; और राज्य तथा स्थानीय स्व-शासन के बीच पर्याप्त राजस्व साझेदारी के साथ-साथ अन्य संबंधित राजकोषीय और शासन मुद्दों की कार्रवाई सुनिश्चित करनी होगी। नगरपालिका प्रशासन में दक्षता बढ़ाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों, उचित वित्तीय प्रबंधन और समय सीमा में वित्तीय वक्तव्यों की तैयारी के माध्यम से आयुक्तों का क्षमता निर्माण आवश्यक है।

अधिनियम के प्रावधान, राज्य और शहरी स्थानीय निकायों के बीच संबंधों को नियंत्रित करते हैं। इस संबंध में, आलोचकों ने स्थानीय निकायों पर राज्य सरकार के अत्यधिक नियंत्रण की आलोचना की है, जो सैद्धांतिक रूप से स्वायत्त हैं। स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण के चार कारण हैं; सबसे पहले, राज्य सरकार अधिनियम द्वारा स्थानीय निकायों का सृजन करती है। दूसरे, राज्य में सभी क्षेत्रों के सजातीय विकास की आवश्यकता है, यह राज्य द्वारा सुनिश्चित किया जा सकता है। तीसरा, राष्ट्र-निर्माण गतिविधियों में आवश्यक तकनीकी कौशल और अनुभव वाले कर्मियों को राज्य द्वारा प्रदान किया जाता है। अंत में राज्य सरकार स्थानीय निकायों को वित्तीय सहायता प्रदान करती है, जिसका तात्पर्य है कि नियंत्रण यह सुनिश्चित करने के लिए है कि धन का सही उपयोग हो रहा है। जो कुछ भी तर्क है, राज्य सरकार द्वारा नियंत्रण और पर्यवेक्षण का मुख्य उद्देश्य स्थानीय स्वशासन की इकाइयों द्वारा कार्यों के प्रदर्शन में दक्षता सुनिश्चित करना है। लेकिन जो महत्वपूर्ण है, वह यह है कि मार्गदर्शन और नियंत्रण नकारात्मक नहीं होना चाहिए। इससे उनका आत्मविश्वास मज़बूत होना चाहिए, और उन्हें अधिक ज़िम्मेदारियों को संभालने में सक्षम बनाए।

यह भावना कि स्थानीय निकायों पर राज्य सरकार का नियंत्रण बहुत अधिक है, जो स्थानीय स्वायत्तता में कटौती करता है। इस संबंध में, दो तर्क हैं: पहला, स्थानीय निकायों का संसाधन आधार सिकुड़ रहा है, और राज्य सरकारें इस संबंध में बहुत कम प्रयास कर रही हैं; दूसरा, स्थानीय निकायों के खिलाफ विघटन और हस्तांतरण की शक्ति का अंधाधुंध प्रयोग किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, 1989 में, देश के 73 नगर निगमों में से 39 पर अलग-अलग समय में अधिक्रमण किया गया था। यह स्थानीय निकायों पर राज्य में प्रयोग किए जाने वाले नियंत्रण का संकेत है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि 74वां संवैधानिक संशोधन नगरपालिकाओं को पांच वर्ष की अवधि देता है। सरकार निकायों को भंग कर सकती है, लेकिन नए चुनाव छह महीने की अवधि के भीतर होने ही हैं। अधिकांश समितियों ने संसाधन आधार और इन संस्थानों की क्षमता को मज़बूत करने के उपायों की सिफारिश की है। इन सिफारिशों की स्वीकृति और कार्यान्वयन कुशल नगरपालिका प्रशासन, प्रभावी सेवा वितरण और संधारणीय विकास के लिए राज्य सरकार और शहरी स्थानीय निकायों के बीच सहयोगी संबंधों को सुनिश्चित करेंगे।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणीः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थानों का प्रयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) शहरी विकास प्राधिकरणों की भूमिका की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

2) शहरी स्थानीय स्वशासन के आय के स्रोतों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

3) ''74वां संवैधानिक संशोधन शहरी स्थानीय शासन के उद्भव और विकास में एक मील का पत्थर है''। जाँच कीजिए।

....

....

....

....

....

13.9 निष्कर्ष

शहरीकरण देश में महत्वपूर्ण और जटिल प्रक्रिया है, जिस पर उचित ध्यान दिए जाने की ज़रूरत है। शहरी विकास की बढ़ती हुई समस्याओं से निपटने के लिए कई कार्यनीतियाँ और प्रवृत्तियाँ विकसित की गई, परन्तु अब तक ये अस्थायी आधार पर ही रही हैं। देश में शहरी स्थानीय निकायों की शक्ति और कार्य, संसाधन आधार, कार्मिकों के प्रतिमान और प्रभावशीलता में व्यापक विभिन्नताएँ हैं। इस संबंध में नगरपालिकाओं के कार्यों के अनुसार सुदृढ़ संसाधन आधार प्रदान करने के प्रयास किए जा रहे हैं। इस इकाई में, हमने स्थानीय स्वशासन के महत्वपूर्ण पहलुओं, जैसे शहरीकरण, चौहत्तरवें संविधान संशोधन, नगर निगम, नगरपालिका परिषद् और नगर पंचायतों पर चर्चा की है। इसके अतिरिक्त, शहरी विकास प्राधिकरण, नगरपालिका कार्मिकों, वित्त और हाल के विकास कार्यों का विवेचन किया है। यह स्पष्ट है कि शहरी स्थानीय स्वशासन के सुचारू कामकाज के लिए राज्य और नगरपालिकाओं के बीच सहयोगी और सौहार्दपूर्ण संबंध आवश्यक हैं, इसलिए अगली इकाई में हम उनके संबंधों के बारे में चर्चा करेंगे।

13.10 शब्दावली

लाभ उठाना : वित्तीय मामलों में, यह एक अनुबंधित रूप से निर्धारित रिटर्न के साथ उधार लिए गए धन का उपयोग है, जो कि एक उच्चतर निवेश और अर्जित करने की क्षमता पर संभावना को बढ़ाता है, लेकिन उच्च जोखिम पर। यह तब तक बहुत अच्छा है, जब

तक कि निवेश में कुछ गड़बड़ न हो जाए और किसी को कर्ज़ नहीं चुकाना पड़े।

प्री-ऑडिट : इस तरह के ऑडिट में, ऑडिटर यह जाँचते हैं कि भुगतान के मामले में किया जाने वाला व्यय वैध है या नहीं।

पोस्ट-ऑडिट : यह पूंजीगत बजट निवेश के परिणाम के विश्लेषण को संदर्भित करता है। यह व्यय किए जाने के बाद आयोजित किया जाता है।

स्थानिक योजना : यह परिस्थितियों, समय और दूरी का ध्यान रखता है, जिससे परिधि के अधिक आगे के क्षेत्र अपेक्षित न रह जाएँ।

13.11 संदर्भ लेख

Arora, R. K. & Goyal R. (2013). *Indian Public Administration: Institutions and Issues*. New Delhi, India: New Age International Publishers.

Final Report for 2015-20 of the Fifth State Finance Commission Bihar, Volume 1 (January, 2016). Retrieved from http://finance.bih.nic.in/Documents/5th-SFC-Volume-I.pdf

Government of India. (2007). Second Administrative Reforms Commission (Sixth Report). *Local Governance: An inspiring journey into the future.* Retrieved from https://darpg.gov.in/sites/default/files/local_governance6.pdf

India Population (Live). Retrieved from https://www.worldometers.info/world-population/india-population

Jha, S.N. & Mathur, P.C. (Eds.). (1999). *Decentralization and Local Politics*. New Delhi: Sage Publications.

Maheshwari, S.R. (2001). *Indian Administration*. New Delhi: Orinet Blackswan Private Ltd.

Ministry of Housing and Urban Affairs, Level of Urbanisation. Retrieved from http://mohua.gov.in/cms/level-of-urbanisation

Mishra, S.N, Mishra, A.D. & Mishra, S. (Eds.). (2003). *Public Governance and Decentralisation*. New Delhi: Mittal Publications.

Nandini, D. (2005). Relationship between Political Leaders and Administrators. New Delhi: Uppal Publishing House.

The Constitution of India. Retrieved from https://www. india.gov.in/my-government/constitution-india/constitution-india-full-text

13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

   - शहरी जनसंख्या की वृद्धि में बदलती हुई प्रवृत्ति।
   - 1941 के बाद शहरी जनसंख्या की वृद्धि दर में बढ़ोत्तरी।
   - 1981 में शहरी जनसंख्या दुगुनी हो गई (1961 की तुलना में), अब यह भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 23.7 प्रतिशत है।
   - कुछ शहरों में जनसंख्या का अत्यधिक संकेन्द्रण।

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

   - नगरपालिका सरकार को सांविधानिक दर्जा।
   - नगर निगम, नगरपालिका परिषद् और नगर पंचायत।
   - पाँच वर्ष का कार्यकाल।
   - समाज के कमज़ोर वर्ग का सशक्तिकरण।
   - राज्य निर्वाचन आयोग।
   - राज्य वित्त आयोग।
   - जिला योजना समिति।

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

   - नगर निगम,
   - नगरपालिका परिषद्, तथा
   - नगर पंचायत।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

   - शहरी क्षेत्रों में रहन-सहन की दशाओं के लिए आवश्यकता, अधिक शक्ति और वित्त के साथ पृथक एजेंसी स्थापित करना बाध्य करती है।
   - वे क्षेत्र के विकास के लिए मास्टर प्लान और आँचलों के लिए आंचलिक विकास योजना तैयार करते हैं, जिनमें विकास क्षेत्र विभाजित किए जाते हैं।
   - उन्हें योजनाओं के अनुसार भूमि का व्यवस्थित और योजनाबद्ध उपयोग सुनिश्चित करना होता है।
   - प्राधिकरणों के विकास कार्य।

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

   - स्वयं का राजस्व

     – कर

  – ग़ैर-कर;

- ऋण / उधार; तथा
- सरकार से हस्तांतरण।

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए:

- भाग 13.8 देखिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY